नाना साहब

[श्रीमन्त नाना धोंडो पन्त का जीवन-वृत्तान्त]

लेखक

डा० मोतीलाल भार्गव

प्रकाशन शाखा

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रकाशक
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश
लखनऊ

मूल्य ५.५० नये पैसे

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्राक्कथन

१८५७ की क्रान्ति में नाना साहब ने क्या भाग लिया, अथवा उसका कहां तक नेतृत्व किया, यह गत सौ वर्षों में एक विवादास्पद विषय रहा है। पेशवा द्वारा दत्तक पुत्र स्वीकार होने के पश्चात् यदि ईस्ट इंडिया कम्पनी के भारतीय शासन द्वारा उन्हें पेशवा के उत्तराधिकारी के रूप में मान्यता मिल जाती व पेन्शन भी उपलब्ध हो जाती तो नाना साहब का क्या जीवनक्रम होता, यह कहना कठिन है। संभवतः वह भी अन्य राजा-रजवाड़ों की भांति पेशवाई वैभव में सुख-शान्ति से रहते।

अभी तक नाना साहब सम्बन्धी सामग्री अंग्रेज अधिकारियों द्वारा प्रदत्त तथा उनके द्वारा संकलित प्रपत्रों के आधार पर अधिकांशतः उन्हीं के द्वारा लिखित वृतान्तों तक ही सीमित थी, गत चार वर्षों में उत्तर प्रदेश स्वतंत्रता संग्राम समिति द्वारा जो आधार सामग्री प्रकाशित हुई है उससे क्रान्ति के विषय में अनेक सर्वमान्य धारणाएं बदलनी पड़ी हैं। स्वयं नाना साहब के विषय में जो कानपुर की घटनाओं इत्यादि के आधार पर दोषारोपण हुए हैं, उनके विषय में भी पर्याप्त नवीन सामग्री प्रकाश में आयी है, इस नवीन सामग्री में उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों के 'म्यूटिनी बस्ती' से क्रान्ति में भाग लेने वालों के व्यक्तिगत कथन महत्वपूर्ण हैं। इनमें नाना साहब के अनेक सह-कार्यकर्ताओं के बयान भी सम्मिलित हैं।

नाना साहब के १८५९ ई० के मेजर रिजर्डसन के पत्र-व्यवहार के विषय में अनेक मन्तव्य प्रकाशित किये गये हैं। परन्तु १८५९ ई० के पश्चात् के उनके आवास अथवा अज्ञातवास के सम्बन्ध में अभी तक जानकारी नहीं के बराबर थी। डा० भार्गव ने प्रस्तुत पुस्तक में नाना साहब के तराई निवास, उनकी मृत्युपर्यन्त खोज, तथा उनके तथाकथित वंशजों के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री संकलित की है। सन् १८७९ ई० के रहस्यमय पत्र की नेशनल आरकाईव्ज से प्राप्ति, जिसकी फोटोस्टाट पुस्तक में प्रकाशित हो रही है, अवश्य विचारणीय है। पत्र के अन्तिम पृष्ठ के संबोधन एवं अंग्रेजी में नाना साहब के हस्ताक्षर अत्यन्त रहस्यमय हैं। यदाकदा अन्य पृष्ठों पर दृष्टि डालने से भी विभिन्न वातों के रहस्यों पर प्रकाश पड़ता है। जैसा कि स्वयं डा० भार्गव ने लिखा है कि नाना साहब तथा पत्र में वर्णित सुरजुजा

से उनका क्या सम्बन्ध था, यह अभी रहस्यमय है। संभवतः अग्रिम शोधकार्य से इस विषय में और प्रकाश पड़े।

नाना साहब की जीवनी सर्वप्रथम १८५७ की क्रान्ति-विषयक शताब्दी समारोह के अवसर पर १० मई १९५७ को प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन से प्रकाशित हुई थी। उसमें नाना साहब के अतिरिक्त मौलवी अहमद उल्लाह शाह, तात्याटोपे, नवाब खानबहादुरखां, बाबू कुंवरसिंह, महारानी लक्ष्मी बाई तथा राना बेनीमाधोसिंह के जीवन-वृतान्त थे। इनमें से नाना साहब व लक्ष्मी बाई की जीवनियां स्वयं डा० भार्गव ने, जो उस समय स्वतंत्रता संग्राम-समिति के शोध-अधिकारी थे, लिखी थी। पुस्तक इतनी लोकप्रिय हुई कि १९५८ ई० में उसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। यह हर्ष का विषय है कि अब नाना साहब पर एक स्वतंत्र जीवन-वृतान्त भी प्रकाशित हो रहा है। साधारण इतिहास से जीवनी की रचना करना अवश्य ही कठिन कार्य होता है। किसी भी व्यक्ति-विशेष के जीवन के सम्बन्ध में, विस्तृत जानकारी प्राप्त करना तथा उसके प्रमाणित आधार ढूंढ निकालना सराहनीय कार्य है। प्रथम संस्करण में प्रकाशित नाना साहब की जीवनी में पाठकों को उनके जीवन-कार्य के विषय में जो जिज्ञासा उत्पन्न हुई होगी वह प्रस्तुत पुस्तक से दूर हो सकती है।

ऐतिहासिक जीवनी को प्रमाणित रूप से लिखते हुए भी डा० भार्गव ने उसे रोचक शैली में प्रस्तुत किया है। जीवन-कथाएं आपमें तो रोचक होती ही हैं, परन्तु वर्णन-शैली उन्हें और भी लोकप्रिय बना देती है। डा० भार्गव ने पुस्तक में आधार-भूत सामग्री का संकेत भी साथ ही साथ दिया है और अन्त में परिशिष्ट, पुस्तक सूची एवं अनुक्रमणिका देकर पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ा दी है। पुस्तक में चित्रों के अतिरिक्त युद्धस्थल सम्बन्धी रेखाचित्र व मानचित्र भी संलग्न हैं। सन् १८७९ ई० के रहस्यमय पत्र की फोटोस्टाट प्रतियां प्रकाशित करके पाठकों की जिज्ञासा जागृत की है। पत्र के आवश्यक उद्धरणों का हिन्दी रूपान्तर, पुस्तक में दिया गया है। आशा है लेखक के परिश्रम से प्रेरित होकर अन्य शोधकर्ता इस विषय में पग बढ़ायेंगे। विशेषतः नेपाल अभिलेख-कक्ष में छिपे पड़े हुए प्रपत्रों के प्रकाश में आने की सभी पाठकगण व इतिहास-प्रेमी प्रतीक्षा करेंगे।

लखनऊ
२३-२-१९६१

—रामप्रसाद त्रिपाठी

विषय-प्रवेश

१० मई १९५७ ई० के पहले लगातार सौ वर्षों तक अधिकतर इतिहासकारों का यही मन्तब्य रहा कि १८५७ ई० की अमर क्रान्ति केवल ईस्ट इंडिया कम्पनी की बंगाल सेना के असंतुष्ट सैनिकों का विद्रोह-मात्र था और उस क्रान्ति में, सामन्तों एवं राजाओं ने बाध्य होकर निज स्वार्थवश, भाग लिया था। विशेषत: पेशवा के दत्तक पुत्र तथा उत्तराधिकारी श्रीमन्त नाना धोंडो पन्त के सम्बन्ध में यह प्रचलित किया गया कि वह तो केवल पेशवाई पेन्शन बन्द होने के कारण क्रान्ति में कूद पड़े थे। तत्कालीन अंग्रेज अधिकारियों द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों में बढ़ा-चढ़ा कर नाना साहब को दोषी, विद्रोही तथा हत्यारा बताने का प्रयत्न किया गया था। उन्हीं के आधार पर कुछ इतिहासकारों ने सौ वर्ष पश्चात् भी, अंग्रेजी शासन की बौद्धिक विजय के दुष्परिणामस्वरूप वास्तविकता की ओर दृष्टिपात करने से इन्कार करते हुए संघर्षकालीन नेताओं को केवल विद्रोही ही माना है।

शतवर्षीय जयन्ती के अवसर पर तथा उसके पश्चात् प्रकाशित ग्रन्थों ने सर्वप्रथम १८५७ की क्रान्ति का विशिष्ट रूप जनसाधारण के सम्मुख रखने का प्रयास किया। उत्तर प्रदेश की स्वतंत्रता-संग्राम इतिहास समिति द्वारा प्रकाशित "संघर्षकालीन नेताओं की जीवनियाँ—भाग १" तथा अंग्रेजी में "फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश"—खण्ड १ से ५ के सम्मुख आने से इतिहासकारों को क्रान्ति का सही मूल्यांकन करने का अवसर मिला है। उनसे जनसाधारण को आभास मिला कि क्रान्ति के नेताओं ने जन-जीवन में कितनी चेतना पैदा की थी तथा अपना किस प्रकार सर्वस्व त्याग किया था। जीवनियों से उन भावनाओं पर प्रकाश पड़ा जिनसे तत्कालीन जनता प्रेरित एवं उद्वेलित हो रही थी। नेताओं के घोषणा-पत्रों तथा उनके आपसी पत्र-व्यवहार से क्रान्ति की वास्तविकता की झाँकी पाठकों के सम्मुख प्रदर्शित हुई है। जनसाधारण ने तथा दैनिक समाचार-पत्रों एवं सिद्ध इतिहासकारों ने जो प्रकाशित सामग्री का स्वागत किया उससे क्रान्ति विषयक लेखकों को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है।

उपर्युक्त प्रोत्साहन से प्रेरित होकर "नाना साहब के जीवन वृतान्त" का परिवर्द्धित तथा स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में रचना करने का प्रयास किया गया है। इसमें नवीन आधारभूत सामग्री के अतिरिक्त अन्य इतिहासकारों द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों से

भी लाभ उठाया गया है। इंगलैण्ड में भी क्रान्ति के महत्त्व को समझने का प्रयत्न करते हुए कुछ इतिहासकारों ने तत्कालीन सेनानायकों के संबंधियों के पास से पत्रादि प्राप्त करके कई नये ग्रन्थ प्रस्तुत किये हैं। अन्य ने लन्दन में अभिलेख-कक्षों में उपलब्ध सामग्री पर कुछ पुस्तकों की रचना की है। परन्तु क्रान्ति-विषयक सामग्री अभी भी प्रचुर मात्रा में अभिलेख-कक्षों में दबी पड़ी हुई है। विशेषतः १८५९ ई० के पश्चात् जो अनेक क्रान्तिकारियों ने दर-दर भटक कर अज्ञातवास किया अथवा कालेपानी में अपने अमूल्य जीवन का अन्तिम भाग व्यतीत किया, उस युग की सामग्री अप्रकाशित है। प्रस्तुत जीवन-वृतान्त में १८५९ ई० से १८७९ ई० तक की इसी प्रकार की नाना साहब विषयक सामग्री प्रकाश में लायी गयी है। यह सामग्री नेशनल आर्काइव्ज, नई दिल्ली के कक्षों में फारेन डिपार्टमेन्ट के सीक्रेट कन्सल्टेशन्स तथा प्रोसीडिंग्स में उपलब्ध है। इससे भी अधिक अन्य नेताओं के संबंध की सामग्री पोर्ट-ब्लेयर प्रोसीडिंग्स में छिपी हुई है। संभवतः इसी प्रकार की सामग्री विदेशों में स्थित अंग्रेजी दूतावासों के अभिलेखों में भी उपलब्ध हो। विशेषतः पड़ोसी देश नैपाल के अभिलेख-कक्ष से हिमालय की तराई में आवास करने वाले अथवा काठमाण्डू में शरण पाने वाले क्रान्तिकारियों तथा उनके संबंधियों के विषय में अवश्य कुछ जानकारी प्राप्त होगी।

सन् १८७९ ई० में नाना साहब द्वारा लिखित रहस्यमय पत्र की प्राप्ति के पश्चात् इस प्रकार की अन्य सामग्री के उपलब्ध होने की आशा अधिक हो गयी है। इस पत्र में ३२ पृष्ठ हैं जो दोनों ओर लिखे होने के कारण पढ़ने में सरलता से नहीं आते। उसका अन्तिम पृष्ठ जिसमें "नाना साहब बिठूर" अंग्रेजी में खचित हैं, अत्यन्त रहस्यमय है, व उसका विचित्र अन्तिम संबोधन मर्मस्पर्शी है। प्रपत्र की संबंधित नस्ती संख्या तथा उस पर की टीपों की मूल प्रति की फोटोस्टाट प्रति का चित्र पुस्तक में संलग्न है। पाठक वर्ग स्वयं उसकी वास्तविकता आँक सकते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक की रचना में मुझे जो विभिन्न स्रोतों से सहायता मिली उसके लिए मैं सब का आभारी हूँ। विशेषतः डा० रामप्रसाद त्रिपाठी जी ने जो समय-समय पर अपना अमूल्य परामर्श देकर तथा इसकी प्रस्तावना लिख कर मेरे ऊपर कृपा की है, उसके लिए मैं सदैव उनका कृतज्ञ रहूँगा। इस संबंध में स्वतन्त्रता-संग्राम इतिहास समिति, उत्तर प्रदेश के रिसर्च एसिस्टेन्ट्स ने जो आधार-भूत सामग्री के संकलन कराने में मेरी सहायता की उसके लिए वह धन्यवाद के पात्र रहेंगे। नेशनल आरकाईव्ज के निदेशक तथा अन्य अधिकारियों का सामग्री उपलब्ध कराने के लिए मैं आभारी रहूँगा।

—मोतीलाल भार्गव

विषय-सूची

अध्याय १

बिठूर में पेशवा

महाराष्ट्र में 'स्वराज्य' की स्थापना एवं मराठा साम्राज्य की नींव डालने का श्रेय छत्रपति महाराज शिवाजी को था। उनकी मृत्यु के पश्चात् औरंगजेब ने उनके पुत्र संभाजी का वध करा दिया और उनके पौत्र शाहू को कारागार में डाल दिया। येसूबाई शाहू के साथ कैद हो गयी, परन्तु उसके लिखने पर शिवाजी के द्वितीय पुत्र राजाराम ने राजमुकुट धारण किया। १७०० ई० तक मुगलों से बराबर युद्ध हुआ, परन्तु राजाराम की मृत्यु के पश्चात् स्वतन्त्रता युद्ध को धक्का पहुँचा। मुगलों ने महाराष्ट्र के प्रमुख गढ़ों को छीनने का प्रयास किया। राजाराम की स्त्री ताराबाई ने साम्राज्य की बागडोर सँभाली। अपने नन्हे बच्चे को गद्दी पर बिठाया। स्वयं औरंगजेब मैदान में आया परन्तु वृद्धावस्था के कारण मराठों का कुछ बिगाड़ न सका। उसकी मृत्यु से यह संघर्ष समाप्त हो गया।

औरंगजेब की मृत्यु के तुरन्त बाद ही शाहू छूट आया व महाराष्ट्र पहुँचा। वहाँ ताराबाई व उसके बेटे ने उसे नकली शाहू बताया। फलतः गृह-युद्ध आरंभ हो गया। महाराष्ट्र को एक शासक की आवश्यकता हुई। ताराबाई के पुत्र शिवाजी को १७१२ ई० में उसी के साथ बंदी बना लिया गया। शाहू को बालाजी ने सहायता दी और इसके फलस्वरूप १७१३ ई० में उसने बालाजी को अपना पेशवा बनाया। उनकी मृत्यु के बाद शाहू ने उनके बेटे बाजीराव को पेशवा बनाया। बाजीराव ने महाराष्ट्र में 'स्वराज्य' के स्थान पर 'साम्राज्य' की नींव डाली। उसका ध्येय मुगल साम्राज्य को मृतप्राय मान कर उत्तरी भारत में भी अपना आधिपत्य जमाने का था। अगले ७५ वर्ष तक यह नीति रही। मुगल सम्राट नाम-मात्र को बना रहा, परन्तु शासन-सत्ता मराठों के हाथ में आ गयी। इधर शाहू तथा उनके वंशजों ने सतारा को अपना गढ़ बना कर समस्त शासन-सत्ता पेशवा के हाथों में सौंप दी। इस प्रकार १७२० ई० से १७६१ तक पेशवाओं की शक्ति चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी। बालाजीराव पेशवा ने उत्तरी भारत तथा दक्षिण के दिग्विजय की चेष्टा की, मुगल सम्राट मराठों की शक्ति पर पूर्णतः निर्भर था, राजस्थान, पंजाब तक में मराठों का बोलबाला था, परन्तु

सहसा १७६१ ई० में पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों को पराजय से बहुत धक्का पहुँचा।

बालाजीराव पानीपत की हार सहन न कर सके और २३ जून १७६१ ई० को उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनका दूसरा बेटा माधवराव १६ वर्ष की अवस्था में पेशवा बना और राघोबा उनके नाम पर शासन करने लगा। दूरस्थ स्थित मराठा सरदारों और राजपूत राजाओं ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। पेशवा को अब गृहयुद्ध, सामन्तों को विद्रोह तथा अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति का सामना करना पड़ा। इस काल में यद्यपि मराठा साम्राज्य की स्थापना का पुनः प्रयत्न हुआ परन्तु अंग्रेजों से झगड़ा बढ़ता गया। यहाँ तक कि १९वीं शताब्दी के आरम्भ में पेशवा का नियंत्रण शिथिल हो गया, मुगल सम्राट अंग्रेजों के अधीन हो चला तथा होल्कर, सिन्धिया, गायकवाड, सभी स्वतन्त्र हो गये। अंग्रेजों ने अब पेशवा की शक्ति पर चोट की। ठेठ महाराष्ट्र के सरदार अंग्रेजों के रक्षित बन गये; पेशवा की गृह-नीति में अंग्रेजों का हस्तक्षेप बढ़ता गया। पूना में ही उसका विरोध होने लगा। महादाजी शिंदे तथा नाना फड़नवीस के रहते हुए अंग्रेजों को हस्तक्षेप करने का अवसर कम मिला। परन्तु इन दोनों महापुरुषों के हटते ही गड़बड़ी मच गयी, पेशवा स्वयं अंग्रेजों से अलग संधि करने पर बाध्य हो गया, अस्तु उसका मराठा-मंडल का नेतृत्व समाप्त हो गया। १८०५ ई० तक सिंधिया, होल्कर, भोसले आदि सभी ने अंग्रेजों की सहायक सन्धि स्वीकार कर ली। अंग्रेजों ने अब स्वयं पेशवा की सत्ता को समाप्त करने का निश्चय किया। इसके लिए उन्होंने कूटनीति का आश्रय लिया। इस कार्य में उन्हें सतारा के राजा प्रताप सिंह से सहायता मिली। **जिस राज घराने से पेशवा को पेशवाई मिली थी, उसी के वंशजों के प्रयत्नों द्वारा उसका अन्त हुआ।**

तृतीय अंग्रेज-मराठा युद्ध

मध्य प्रदेश के आसपास के क्षेत्रों में पिंडारियों के विरुद्ध अंग्रेजों ने १९ वीं शताब्दी के आरंभ में कार्यवाही की। पिंडारियों के साथ ही साथ अंग्रेज मराठों की बची-खुची शक्ति का भी नाश करना चाहते थे। सन् १८१५ ई० में निज़ाम की आश्रित सेना के अंग्रेज अधिकारी ने सिन्धिया के क्षेत्र के पिंडारियों पर आक्रमण कर दिया। इसी बीच में रघुजी भोंसले की मृत्यु हो गयी और उसके उत्तराधिकारी अप्पा साहब भोंसले ने अंग्रेजों का संरक्षण स्वीकार किया। (१८१६ ई०) इस प्रकार नागपुर में अंग्रेज छावनी पड़ जाने के कारण पेशवा व सिन्धिया में एक दीवार खड़ी हो गयी। गायकवाड़ बड़ौदा से पेशवा की पहले ही अनबन थी। समझौता

करने के लिए गंगाधर शास्त्री पूना भेजा गया। परन्तु उसके उद्दण्ड व्यवहार के कारण पंढ़रपुर में उसकी हत्या हो गयी। इस पर अंग्रेजों व पेशवा में झगड़ा हो गया।

सतारा के राजा प्रतापसिंह ने पहले ही पेशवा के विरुद्ध अंग्रेजों को भड़काया था। १३ जून १८१७ ई० को पूना में स्थित अंग्रेज रेजीडेन्ट एल्फिस्टन ने पेशवा को प्राणघातक सन्धि स्वीकार करने पर बाध्य किया। इस सन्धि[1] की १४वीं धारा के अनुसार निश्चय हुआ कि "माननीय राव पंडित प्रधान बहादुर अपने तथा अपने उत्तराधिकारियों के मालवा में उन सब अधिकारों एवं भू-खण्डों का जो उन्हें सन्धि की ११वीं धारा के अन्तर्गत प्राप्त हुए थे, तथा हर प्रकार के अधिकार एवं महत्व जो उन्हें नर्वदा नदी के उत्तर के प्रदेश में प्राप्त हों, का माननीन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पक्ष में परित्याग करते हैं।" इस सन्धि द्वारा पेशवा ने अंग्रेजी शासन के पक्ष में ३४ लाख रुपये वार्षिक की मालगुजारी (राजस्व) वाले भू-खण्डों का परित्याग किया।

बिठूर में

इसी समय पेशवा के सेनापति बापू गोखले ने एल्फिस्टन की मुम्बई तथा सिरूर छावनी में स्थित सेना की टुकड़ी पर आक्रमण कर दिया। परन्तु मराठों की खिरकी पर हार हुई और पेशवा पूना छोड़ सेना के साथ भाग निकला। पुनः कोरेगाँव और आष्ठी की लड़ाइयाँ हुईं। एल्फिस्टन ने सतारा के राजा प्रतापसिंह द्वारा पेशवा के विरुद्ध एक घोषणा-पत्र निकलवाया। नागपुर में भी अप्पासाहब से अंग्रेजों का झगड़ा हुआ। परन्तु अप्प साहब व पेशवा का संयोग होने के डर से अंग्रेजों ने पेशवा को ८ लाख रुपया वार्षिक पेन्शन के रूप में देना स्वीकार किया। पेशवा ने उनका विश्वास करके आत्म-समर्पण कर दिया। १ जून १८१८ ई० की सन्धि के अन्तर्गत पेशवा को पूना छोड़ना पड़ा। उन्हें उत्तर प्रदेश के कानपुर जिले में बिठूर-ब्रह्मावर्त (गंगा-तट पर तीर्थ-स्थान) में रहने को एक जागीर दी गयी। पेशवा के राज्य का कुछ अंश सतारा के राजा को देकर शेष कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया। अंग्रेजों के राज्य को एक लम्बी वार्षिक आय प्राप्त हुई। ३४ लाख की वार्षिक आय के एवज में उन्हें केवल ८ लाख रुपये पेशवा व उसके परिवार के भरण-पोषण के लिए देना पड़ा। पेशवा ने सभी अपेक्षित शर्तों का पालन किया और अपने राज्य

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड १, पृ० १६–१७, नाना साहब का कोर्ट आव डाइरेक्टर्स के नाम प्रार्थना-पत्र परिशिष्ट–५।

का कम्पनी के पक्ष में परित्याग कर दिया तथा स्वयं को एवं अपने परिवार को उनके हाथों में सौंप दिया। कम्पनी ने लार्ड हेस्टिंग्स द्वारा निर्धारित वैधस्तर पर उनका जीवनपर्यन्त पोषण कर अपने वचन का केवल आंशिक पालन ही किया और परिवार सम्बन्धी भाग की उपेक्षा की।

कर्वी में पेशवा

बाजीराव की भाँति अंग्रेजों ने उनके दत्तक भ्राता अमृतराव से भी सन्धि की और उन्हें पेन्शन देकर उत्तर प्रदेश में कर्वी चित्रकूट तीर्थस्थान में रहने को स्थान दिया। उसने भी एक लघु धन राशि की पेन्शन लेकर पेशवाई से अपने अधिकार का परित्याग कर दिया। वहाँ उसकी सेना की टुकड़ी के लिए एक छावनी भी दी गयी जिस पर कम्पनी राज्य के विनियम लागू न थे व महाराजा अमृत राव बहादुर की सत्ता सर्वमान्य थी। अमृतराव की १८५३ ई० में मृत्यु हो गयी और विनायक राव उसका उत्तराधिकारी बना। विनायक राव ने प्रथम नारायण राव को दत्तक पुत्र बनाया फिर उसको अधिकार-च्युत कर दिया व बंदीगृह में डाल दिया। तत्पश्चात् माधव राव अल्पवयस्क को अपना उत्तराधिकारी बनाया। सम्पत्ति एवं छावनी के प्रबन्ध के लिए बाबू हरी चन्द (वाराणसी के एक लेनदेन कर्त्ता), व उनके भतीजे बाबू राधेगोविन्द तथा मुकुन्द राव जमादार, माधव राव अल्पवयस्क के संरक्षक एवं सह-कार्य निष्पादक (Co-executor) नियुक्त हुए।

काशी में

अमृतराव की भाँति पेशवा के द्वितीय भ्राता चिमना जी अप्पा पेन्शन लेकर काशी आकर रहने लगे थे। इनकी १८३२ ई० में काशी में मृत्यु हो गयी थी। किंवदन्ती है कि इन्हीं के आश्रय में रानी लक्ष्मी बाई के पिता मोरोपन्त ताम्बे काशी आकर रहने लगे थे और वहीं लक्ष्मीबाई का जन्म हुआ था। चिमना जी के देहान्त के पश्चात् मोरोपन्त ताम्बे ने पेशवा बाजीराव का बिठूर में आश्रय ग्रहण किया। इसी सम्बन्ध से नाना साहब व लक्ष्मीबाई का सम्पर्क स्थापित हुआ। लक्ष्मीबाई का बाल्यकाल बिठूर में ही व्यतीत हुआ और वहीं उनका "मैना छबीली", "छबीली बहिन" नाम पड़ा। बाजीराव पेशवा ने लक्ष्मीबाई का बड़े लाड़-प्यार से पालन-पोषण किया। वह उसकी दक्षता एवं चपलता व रणचातुर्य से बहुत प्रभावित थे। नाना, बाला और छबीली सभी एक दृष्टि से देखे जाने लगे। लक्ष्मीबाई के विवाह कराने में भी पेशवा का बड़ा हाथ था। इस प्रकार पूना से निष्कासित होने पर बाजीराव व उनके आश्रितों ने बिठूर में शरण ली। इन्हीं में नाना साहब व उनके भाई भी थे।

अध्याय २

जन्म तथा बाल्य-काल

१० मई १९५७ ई० को प्रकाशित ग्रन्थ "१८५७" में डा० सुरेन्द्रनाथ सेन ने लिखा था कि नाना साहब के बाल्यकाल तथा प्रशिक्षण के बारे में वह कुछ नहीं जानते।[1] परन्तु सौभाग्यवश उत्तर प्रदेश सचिवालय के अभिलेख-कक्ष में उपलब्ध रिकार्डों से तथा कानपुर कलक्टरी रिकार्डों से नाना साहब के जीवन के बारे में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो गयी है। नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता में भी तत्कालीन समाचार पत्रों में नाना साहब के जीवन के विषय में सामग्री उपलब्ध है। अस्तु, इसके आधार पर ज्ञात होता है कि नाना साहब के पिता महादेव अथवा माधो नारायण राव महाराष्ट्र में मथेराँ पहाड़ियों की तलहटी के नस्रपुर तालुका के वेणु ग्राम के रहने वाले थे।[2] इनकी माता का नाम श्रीमती गंगा बाई था।

नाना साहब का जन्म, विक्रमी संवत् १८८१, अर्थात् सन १८२४ ई० में कोंकण ब्राह्मण कुल में हुआ था।[3] इसके अनुसार १८५७ ई० में नाना साहब ३३ वर्ष के थे। परन्तु उत्तर प्रदेश सचिवालय अभिलेख कक्ष में उपलब्ध "डिस्क्रिपटिव रोल" के अनुसार नानाराव (नाना साहब) की आयु १८५८ ई० में, जबकि वह प्रकाशित हुआ था, ३६ वर्ष थी।

१. डा० सुरेन्द्रनाथ सेन : "सनसत्तावन"—पृ० सं० १२३-कानपुर।

२. कलकत्ता से प्रकाशित समाचार-पत्र (दैनिक)—"इंग्लिशमैन"; शनिवार २९ अगस्त १८५७ ई० तथा "बम्बई गजट" अगस्त १३, १८५७ ई०: नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।

३. "नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज प्रोसीडिंग्ज"—पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट, जनवरी से जून १८६४ ई०, भाग १, पृष्ठ १९ : संकेत संख्या १७ : आख्या संख्या ७२, जुलाई १८६३-नानाराव, उनके परिवार तथा सेवकों के हुलिये (डिस्क्रिपटिव रोल)। सचिवालय अभिलेख-कक्ष। परिशिष्ट १ तथा २ संलग्न।

माधो नारायण तथा पेशवा बाजीराव द्वितीय गोत्र-भाई थे। बाजीराव तो १ जून १८१८ ई० की सन्धि के पश्चात् सहस्रों आश्रितों के साथ विठूर (ब्रह्मावर्त्त) चले आये। यहाँ उन्हें कम्पनी के शासन ने एक जागीर दी। उन्हें ८ लाख रुपये की वार्षिक पेन्शन अपने व परिवार के भरण-पोषण के लिए मिली तथा उन्हें उत्तर-पश्चिमी प्रान्तीय शासन तथा अदालतों की सीमा से बाहर रखा गया। उनसे सम्पर्क स्थापित रखने के लिए शासन ने बिठूर में ही एक "विशेष कमिश्नर" नियुक्त किया, जिसका कि कानपुर के जिला अधिकारियों से कोई सम्बन्ध न था। इन सब सुविधाओं को प्राप्त करके पेशवा, तथा उनके आश्रितों व सिपहसालारों ने बिठूर में विशाल भवन, मन्दिर व घर बनवाये। इनके अवशेष अब भी विद्यमान हैं। पेशवाई महल तो १८५७ ई० में ही धराशायी कर दिया गया था। उस भूमि पर हल चलवा दिया गया था। परन्तु तात्याटोपे के महल के अवशेष अभी भी विद्यमान हैं और उसी भूमि पर उनके वंशज अभी भी कुटिया बना कर वहीं रहते हैं।

पेशवा के बिठूर चले आने के पश्चात् भी नानाराव के माता-पिता कुछ दिन तक तो महाराष्ट्र में ही रहे। परन्तु पेशवा के भाई अमृतराव तथा चिमनाजी अप्पा के चित्रकूट (कर्वी) व काशी चले आने के पश्चात् उन्होंने भी बिठूर आने व स्थायी रूप से वहीं रहने का विचार किया। आर्थिक संकट ने भी उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य किया। बिठूर आने के समय नानाराव की आयु तीन वर्ष की थी। इनके चार भाई थे—दो श्रीमती गंगा बाई की कोख से और दो इनके पिता की दूसरी व तीसरी स्त्रियों से।[1] इनके निजी भाइयों के नाम बाबा भट्ट (आना भट्ट) तथा गंगा धर एवं बाला साहब थे। बाबा भट्ट का देहान्त १८५७ ई० से बहुत पहले हो गया था। इनके सौतेले भाई सदाशिव (दादा साहब) की पत्नी ने नाना साहब के सबसे छोटे सौतेले भाई राव साहब को दत्तक पुत्र बना लिया था।[2]

पेशवा के दत्तक पुत्र—बाजीराव पेशवा की दो रानियाँ थीं—मैना बाई तथा सई बाई। उनके दो कन्याएँ हुईं जिनके नाम थे—जोगा बाई और कुसुमा बाई। एक पुत्र का भी जन्म हुआ था, परन्तु वह बाल्यावस्था में ही मर गया था। पेशवा को अपनी वंश परम्परा, अपनी धन-सम्पत्ति परिवार तथा आश्रितों की देखभाल व पेशवाई गद्दी सूनी हो जाने की बहुत चिन्ता थी। अस्तु श्रीमन्त

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड ३, परिशिष्ट IV, पृष्ठ संख्या ६९८।

२. वही—परिशिष्ट I, पृष्ठ संख्या ६९५।

माधो नारायण राव के बिठूर आजाने के पश्चात् पेशवा का उनके पुत्रों पर बहुत स्नेह हो गया था। सन १८२७ ई० में बाजीराव ने ३ वर्ष के होनहार बालक नानाराव को अपना दत्तक पुत्र बनाया। साथ ही साथ स्वयं पेशवा तथा अन्य रानियों द्वारा अन्य बालकों को भी दत्तक पुत्र बनाने की अनुमति मिल गयी। फलतः नानाराव, गंगाधर राव तथा सदाशिव पंत दादा साहब को पुत्र के रूप में और रावसाहब पांडुरंगराव को पौत्र रूप में गोद लिया गया।[1] नानाराव को ज्येष्ठ पुत्र स्वीकार करके पेशवाई गद्दी का अधिकारी घोषित किया गया। पेशवा को पिण्डदान देने का उत्तरदायित्व केवल उन्हीं पर था।

दत्तक पुत्र के बनाने के पश्चात् बाजीराव पेशवा ने उत्तराधिकारी पत्र द्वारा स्थिति को निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट कर दिया था[2]—

"यह कि धोंडो पंत मेरे ज्येष्ठ पुत्र तथा गंगाधर राव मेरे कनिष्ठतम एवं तृतीय पुत्र तथा सदाशिव पंत दादा, मेरे द्वितीय पुत्र पांडुरंग राव के पुत्र मेरे पौत्र हैं; यह तीनों मेरे पुत्र तथा पौत्र हैं।" इस पत्र में यह स्पष्ट कर दिया गया कि बाजीराव पेशवा के पश्चात्, उनके ज्येष्ठ पुत्र धोंडोपन्त नाना, मुख्य प्रधान उत्तराधिकारी होंगे तथा पेशवा की गद्दी, राज्य, सम्पदा, देशमुखी आदि कौटुम्बिक सम्पत्ति, कोष एवं पेशवा की समस्त वास्तविक एवं निजी सम्पत्ति के एकमात्र अधिकारी होंगे। अन्य कनिष्ठ भ्राताओं को अवलम्बन एवं पोषण पाने का अधिकार दिया गया। इस अधिकार-पत्र के विषय में अंग्रेज इतिहासकारों व अधिकारियों ने बड़ा विवाद खड़ा कर दिया था।[3] कारण केवल इतना था कि अधिकार-पत्र लिखे जाने की तिथि ४थी शव्वाल, मिती अगहन बदी ५, शाके १७६१ तदनुसार ११ दिसम्बर १८३९ दी गयी थी परन्तु उस पर गवाहों के हस्ताक्षर अप्रैल के ३०वें दिवस १८४१ को हुए। जिन गवाहों ने पत्र पर हस्ताक्षर किये उनके नाम यह थे—बापूजी सुखाराम, गुरबोले, विनायक बल्लड गोकट, रामचन्द्र जेमनिश भेर्चे; तथा रामचन्द्र वेंकटेश

१. "नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज प्रोसीडिंग्ज"—सन् १८६४ ई०: सचिवालय अभिलेख कक्ष, लखनऊ।

२. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड १, पृष्ठ १३–१४, देखिए—हर्डिकर श्रीनिवास बालाजी, अठारह सौ सत्तावन, पृष्ठ संख्या ३३–३४।

३. मैलेसन : रेड पैम्फलेट अथवा दी म्युटिनी आव दी बंगाल आर्मी लन्दन १८५७। गुप्ता—"दि लास्ट पेशवा एण्ड इंग्लिश कमिश्नर्स", पृष्ठ १०५–१०७।

सूबादार और कर्नल जेम्स मैनसन[1] प्रकाशित अभिलेखों विशेषरूप से सन् १८४० ई० के कमिश्नर के १२ नवम्बर के शासकीय प्रपत्र, जिससे केन्द्रीय शासन को उत्तराधिकार-पत्र को सूचना दी गयी, तथा नानाराव के १८५१ के प्रार्थना-पत्र एवं स्मृति-पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि "उत्तराधिकार-पत्र" को जाली बताने आदि की बातें असत्य हैं।

प्रारम्भिक शिक्षा

दत्तक पुत्र बनाये जाने के पश्चात् नानाराव का नाम नानाराव अथवा धोंडोपन्त रखा गया। उनकी प्रारंभिक शिक्षा, हाथी-घोड़े की सवारी, तलवार चलाने, बन्दूक चलाने, मल्लयुद्ध (कुश्ती) करने आदि तक ही सीमित थी। उन्हें कई भाषाओं का ज्ञान कराया गया। उन्हें उर्दू व फारसी का भी पर्याप्त ज्ञान हो गया था। उन्हें बचपन से ही कसरत करने का शौक था।[2] कुश्ती (मल्ल युद्ध) देखने में भी बड़ी दिलचस्पी थी। सन् १८७४ ई० में मुरार (ग्वालियर) में बंदी बनाये गये संदिग्ध नानासाहब—'हनवन्ता' के अभियोग में लिये गये—सदैक राम पहलवान—बिठूर, के बयान (कथन) से मालूम होता है कि नाना साहब ५ फुट ९ इंच ऊँचाई के थे। बलिष्ठ, गरिष्ठ एवं गोल चेहरा था। विशाल गोल नेत्र थे। रंग न तो साँवला और न ही गोरा था। छोटी-छोटी मूँछें थीं जो ऊपर की ओर मुड़ी रहती थीं। सदैक राम पहलवान ने लगभग ६ वर्ष तक बाजीराव पेशवा की सेवा की थी, और उस अवधि में नाना साहब को समय-समय पर देखा था।

नाना साहब की आकृति

नाना राव धोंडोपन्त की आकृति व हुलिए का सबसे विश्वस्त वर्णन शासकीय शारीरिक विवरण-'हुलिए'–१८५८–से प्राप्त है। उसके अनुसार नाना राव का रंग गोरा, कद ५ फुट ८ इंच लम्बा, शारीरिक बनावट शक्तिशाली एवं बलिष्ठ,

१. बाजीराव पेशवा का उत्तराधिकार-पत्र : देखिए परिशिष्ट ४।

२. जुडीशल (क्रिमिनल) प्रोसीडिंग्ज—विभाग १३, १८७०–७१, फाईल संख्या ७३५–७४३। ट्रायल प्रोसीडिंग्ज—हरजी भाई—संदिग्ध नानासाहब। गवाह संख्या १८ विलियम मैन्सफील्ड मलबरी का ५ दिसम्बर १८६१ का बयान :—"That he was a tall powerful, man, and a gymnast."

पेशवा बाजीराव द्वितीय

पेशवाई मुहर

श्री राजा शाह नरपती हर्षनीधान माधव राव
नारायण मुख्य प्रधान

चेहरे का आकार चपटा और गोल, नासिका सीधी और सुडौल, नेत्रों का आकार विशाल, गोल नेत्र, दाँत सम, वक्षस्थल बालों से ढका, चेहरे पर कोई चिन्ह नहीं, केशों का रंग काला व कानों में बालियाँ पहने हुए। उनमें मराठी विशेषताएँ स्पष्टतया विद्यमान थीं।[1]

इसके अतिरिक्त जान लैंग के अनुसार[2] जो नानाराव का आतिथ्य स्वीकार कर चुका था,—"नाना साहब कोई विशेष विद्वता नहीं रखते थे और न ही मूर्ख थे। वह स्वार्थी थे; परन्तु कौन देशीय जन नहीं होता? धर्मके मामलों में वह कट्टर-पंथी से कहीं दूर था।" माँब्रे थामसन के अनुसार नाना साहब अत्यन्त भारीपन व स्थूल शरीर वाला था, रंग गेहुँआ था, बीच का कद, और चेहरा सुडौल तथा अन्य मराठों की भाँति सिर व चेहरा मुँड़ा हुआ था। और वह अंग्रेजी नहीं बोलता था।" वैसे तो माँब्रे थामसन जो स्वयं क्रान्ति के समय कानपुर में उपस्थित था, की बात माननीय होनी चाहिए परन्तु १८७५ ई० में संदिग्ध नाना साहब जमुना दास के विषय में जो जाँच हुई उसमें वह स्पष्टत: नाना साहब की आकृति बयान नहीं कर पाया था। उसने कानपुर रहते हुए भी नानाराव को केवल दो बार देखा था। वह १८६२ ई० में भी उसका स्मरण अधिक नहीं रख सका। इसलिए १८७५ ई० में उसने गवाही देने से इंकार कर दिया।

माँब्रे थामसन के अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बयान डा० ए० एच० चेके का था, जो कानपुर के सिविल सर्जन के पद पर रहते हुए कई वर्षों तक (१८४९-५३) बिठूर में नाना राव की डाक्टरी परीक्षा व इलाज इत्यादि के लिए जाया करते थे। १८६३ ई० में उन्होंने वाराणसी से आकर बयान दिया। उसके अनुसार नानाराव संदिग्ध नाना साहब—अप्पाराम से कम से कम २५ वर्ष कम आयु के थे और उनका रंग कहीं साफ था। इसी बयान की पुष्टि तत्कालीन कानपुर के सिविल सर्जन डा० फ्यूर्स ने भी की। नानाराव के साफ रंग के होने का अनुमोदन कानपुर होटल के विख्यात नूर मुहम्मद ने भी किया।

१. उत्तर प्रदेश सचिवालय अभिलेख-कक्ष में सुरक्षित एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स्—पोलिटिकल डिपार्टमेंट—जनवरी से जून १८६४ तक, जनवरी १८६४ भाग १, पोलिटिकल डिपार्टमेंट—ए० पृ० १९। इंडेक्स नं० १७, प्रोसीडिंग्स नं० ७२ दिनांक जुलाई १८६३।

२. जानलैंग—"वान्डरिंग्स इन इंडिया एण्ड अदर स्केचेज आव लाईफ इन हिन्दुस्तान" पृ० ११६।

१८७५ ई० में संदिग्ध नाना साहब जमुना दास के परीक्षण के संबंध में २७ गवाहों के बयान हुए जिसके आधार पर मजिस्ट्रेट इस परिणाम पर पहुँचा कि नाना राव की आयु १८७५ ई० में ५० वर्ष से कम होनी चाहिए। १८२४ ई० में जन्म होने की तिथि से उनकी आयु उस समय ५१ वर्ष की आती है तथा नाना साहब कानों में भिक-बाली अवश्य पहनते थे। और किसी बीमारी के कारण नाना साहब के शरीर के बाल उड़ गये थे।

उपर्युक्त अभियोग संबंधी परीक्षणों में सभी गवाहों ने नाना साहब की एक आँख के नीचे एक चिन्ह बताया। अन्य बयानों से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :—

१. **मार्टिन मुरनर**—द्वारा १८६१ में दिये गये बयान से पता चलता है कि नानाराव नीली पोशाक पहने कभी-कभी जेनेरल ह्वीलर के बंगले के अहाते में जाया करते थे। वह लम्बी दाढ़ी बढ़ाये थे जो छाती तक लटकती थी। उसके बाल घुंघराले थे।

२. **मनोहर बोहरा**—द्वारा दिये गये ५ दिसम्बर १८६१ के बयान से पता चलता है कि नाना साहब लगभग ३५ वर्ष के थे और मनोहर बोहरा नाना के यहाँ से मिठाई पाया करते थे। वह बिठूर से कानपुर घोड़े पर चढ़कर अपने नाते रिश्तेदारों के साथ व अन्य सवारों को लेकर आया करते थे। वह अक्सर ४ व ५ बजे के बीच में हवाखोरी के लिए जाया करते थे।

३. **क्लेयर फोटोग्राफर**—मेरठ में रहनेवाला—४ नवम्बर १८७४ के बयान से पता चलता है कि १८५४ ई० में नानाराव उसे ४० वर्ष के प्रतीत हुए; गोरा रंग, बीच का कद, आँख के नीचे एक चिह्न था।

४. **जोवनसिंह आत्मज बालमुकुन्द रमिया**—बरेली के आलमगिरी गंज के निवासी ने बताया कि वह नाना राव को क्रान्ति से पाँच वर्ष पहले अक्सर बग्घी में सैर करते पाता था।

५. **अदला गणिका**—जो नानाराव की सेविका के रूप में कार्य करती थी। वह एक सुन्दर व्यक्ति था, न बहुत गोरा और न काला। चेहरा गोल व चिकना था। शरीर बलिष्ठ था—परन्तु चेचक के चिन्ह नहीं थे। उसके मूंछें थीं जो ऊपर को चढ़ी रहती थीं। उसकी छाती व शरीर पर बहुत कम बाल थे। कान के ऊपरी भाग में "भिकबाली" पहनते थे।

१. १८७४–७५ में संदिग्ध नानासाहब, 'हनवन्ता' के संबंध में लिये गये बयान।

६. **बिठूर निवासी नाना नारायणराव के बयान**—से पता चलता है कि नानासाहब का विशाल मस्तक था परन्तु अधिक उँचा नहीं। कुछ-कुछ हकलाया करता था। रंग गोरा था शरीर गठा हुआ और गरिष्ठ था। दायीं आँख के नीचे गाल पर एक तिल था।

७. **नन्दी—गंगापुत्र का बयान**—अच्छे खासे शरीर से सम्पन्न—विशाल वक्षस्थल—चौड़ी छाती वाला व्यक्ति नानाराव था। उसकी जाँघों व बाहुओं पर भी बाल कम थे। उन्हें गंगा-स्नान करने व दान-दक्षिणा देने का बहुत शौक था। प्रत्येक त्योहार को वह सेवकों सहित स्नान करने जाते थे। कानों में बालियाँ पहनते थे।

८. **केशोराव वैद्य**—के कथनानुसार नानाराव का शरीर बलिष्ठ था, रंग साफ, व चेहरे पर झुर्रियाँ नहीं थीं। वह नानाराव को दवाइयाँ दिया करता था। उनकी मूंछें ऊपर को चढ़ी रहती थीं। उनकी जाँघें व पिण्ड़लियाँ मोटी थीं।

९. **सुराशद शास्त्री** के अनुसार नानाराव बात करते समय हकलाते थे।

१०. **हारमुज जी रुस्तम मोदी**—बिठूर में नानाराव से १८५५ ई० में उनके प्रार्थना-पत्र सम्बन्धी मामले (केस) में मिले थे। उनके कथनानुसार नानाराव अच्छे बलिष्ठ मनुष्य थे, चेहरा भरा हुआ, विशाल नेत्र; अच्छे; चेहरे पर कोई चिह्न नहीं—चेचक के निशान भी नहीं थे। कानों में बाली पहनते थे। छोटी मूंछें रखते थे। अंग्रेजी नहीं जानते थे।

उपर्युक्त बयान ४ नवम्बर १८७४ ई० में लिये गये थे। इनसे नाना साहब की आकृति-हुलिए, आचरण आदि का पर्याप्त ज्ञान मिलता है।

नाना साहब द्वारा अतिथि-सत्कार

नाना साहब के आचार-व्यवहार, शिष्टता एवं मैत्री भावना की सभी विदेशी आगन्तुकों व अधिकारियों ने प्रशंसा की है विशेषतः उन्होंने जिन्हें कानपुर आने का अवसर मिला था। ऐसा प्रतीत होता है कि नानासाहब कानपुर में आने वाले विदेशी यात्रियों को बिठूर अवश्य आमंत्रित करते थे। एक समकालीन विदेशी संवाददाता लिखता है :—

"मैं नानासाहब को भलीभाँति जानता था। उनको उत्तरी प्रान्तों में सर्वोत्तम और उच्चकोटि का सत्कार-कर्त्ता भारतीय नागरिक समझता था। अमानुषिक अत्याचार करने का विचार उनका कभी भी नहीं हो सकता था। नानासाहब को अंग्रेजों से मिलने पर राजनीति की बातें करने का बड़ा उत्साह था।"

"....नाना ने मुझसे कई प्रश्न किये, उनमें से यह याद हैं :—

१. लार्ड डलहौजी क्या अवध के नवाब से मिलना पसन्द नहीं करेंगे। लार्ड हार्डिज ने तो ऐसा अवश्य किया था?

२. क्या आप सोचते हैं कि कर्नल स्लीमैन, लार्ड डलहौजी को अवध हड़पने के लिए राज़ी कर लेगा? वह गवर्नर जनरल के शिविर में इस आशय से गया अवश्य है।"[1]

दूसरा संवाददाता नाना साहब के पारिवारिक जीवन पर प्रकाश डालते हुए लिखता है :—

"सन् १८५३ ई० में एक अंग्रेज आगन्तुक की मेम साहबा नाना साहब के परिवार की स्त्रियों से मिलने गयी। नानासाहब के भाई बाला भट्ट ने उन्हें अन्तःपुर में पहुँचा दिया। वहाँ पेशवा बाजीराव की विधवा रानियों से तथा पेशवा के चचेरे पौत्र की अल्पवयस्क वधू से, जो सब अति बहुमूल्य आभूषणों से लदी हुई थीं, भेंट हुई। स्त्रियों में पर्दा प्रथा तथा बच्चों पर कुछ बातचीत हुई। आगन्तुक स्त्रियों का खूब आदर-सत्कार हुआ। इस प्रकार स्त्री तथा पुरुष सभी अतिथियों की महीने भर तक बिठूर में आवभगत तथा सत्कार होता रहा।"[2]

नाना साहब की सहृदयता व दानशीलता एवं धन-लोलुपता न होने के अनेक उदाहरण दिये गये है। एक किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि नाना साहब के पास एक अमूल्य बग्घी (घोड़ागाड़ी) थी जिसमें वह कानपुर से बिठूर आते-जाते थे। अकस्मात् इसमें अतिथियों (विदेशी) के बिठूर आते समय एक बच्चा मर गया। बग्घी अपवित्र हो गयी और नानासाहब तथा उनके परिवार के उपयोग युक्त नहीं रह गयी। फलतः नाना साहब ने उसे जलवा दिया। उसे बेचना उनकी मान-मर्यादा के अनुकूल न था। किसी अन्य पुरुष को मुसलमान अथवा ईसाई को दे देने से, जिस अंग्रेज का बच्चा उसमें मर गया था यदि उसे मालूम होता तो शोक होता; इसलिए नाना साहब ने उसके मूल्य की चिन्ता न करके जलवा दिया।[3]

१. चार्ल्सबाल : हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी—खण्ड १, पृष्ठ ३०४, सन् १८५१ ई० की घटना का वर्णन।

२. चार्ल्सबाल : "हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी"—पृ० ३०६, खण्ड १।

३. वही : खण्ड १, सं० ३०६।

अध्याय ३

पेशवाई पेंशन

बिठूर स्थित अंग्रेज कमिश्नर पेशवा पर कड़ी देखरेख रखता था। बिठूर से बाहर जाने के लिए, विशेषतः पूना तथा महाराष्ट्र जाने के लिए उसकी व शासन की अनुमति की आवश्यकता पड़ती थी। सन् १८४० ई० में कमिश्नर ने, पेशवा की अस्वस्थता को ध्यान में रखते हुए, शासकीय प्रपत्र द्वारा केन्द्रीय शासन से आदेश प्राप्त किया कि पेशवा की असामयिक मृत्यु हो जाने पर क्या कार्यवाही की जायगी।[1] परन्तु पेशवा ने सन् १८५१ ई० तक आयु पायी और ऐसी परिस्थिति नहीं आयी।

सन् १८३९ ई० दिनांक ११ दिसम्बर को लिखे गये उत्तराधिकार पत्र (वसीयत) द्वारा बाजीराव पेशवा ने, अपने ज्येष्ठ दत्तक पुत्र नानाराव धोंडोपन्त को पेशवाई गद्दी तथा अतुल धन-सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बना दिया था।[2] इस पत्र के अनुसार सन् १८५० ई० में २५ वर्ष के हो जाने के कारण, नानाराव पूर्ण रूप से उत्तराधिकारी बन गये थे। नानाराव के दत्तक पुत्र बनाये जाने एवं उत्तराधिकारी मनोनीत होने की सूचना बाजीराव पेशवा ने अंग्रेजी शासन को बिठूर स्थित कमिश्नर द्वारा १८४४ ई० में दे दी थी। बाजीराव का विश्वास था कि इस प्रकार सूचित करने से व सहमति प्राप्त होने से उनकी मृत्युपर्यन्त पेन्शन, पदवियों, विशेषाधिकारों तथा सुविधाओं का भोग उनके दत्तक पुत्र कर सकेंगे। इसके उत्तर में सर्वोच्च शासन ने उन्हें सूचित किया कि यथासमय उनकी इस प्रार्थना पर विचार होगा।[3] इस प्रस्ताव को कोर्ट आव डाईरेक्टर्स ने भी स्वीकार कर लिया था। स्वभावतः पेशवा को अंग्रेजों के आश्वासन पर विश्वास हो गया और वह आशा करने लगे थे कि १८१८ ई०

१. 'आगरा नैरेटिव'—सन् १८५० ई०

२. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड १, पृ० १३ व १४।

३. वही : पृष्ठ संख्या २६।

की सन्धि के अनुसार उनके दत्तक पुत्रों का भरण-पोषण हो सकेगा। लेफ्टिनेंट मैन्सन को भी शासन का उत्तर मिला कि "उत्तराधिकारी के निश्चित हो जाने के कारण, पेशवा की मृत्यु हो जाने पर भी शान्ति भंग होने की कोई संभावना नहीं है, दत्तक पुत्र सम्पत्ति का अधिकारी होगा। केवल देखना यह है कि अन्य आश्रितों को भी उचित सहायता मिलती रहे।"[1]

पेशवा की मृत्यु

विक्रमी संवत् १९०८ अथवा २८ जनवरी १८५१ ई० को पेशवा बाजीराव का स्वर्गवास हो गया। ३१ जनवरी को मैन्सन ने शासन को सूचना दी कि पेशवा बाजीराव का दाहसंस्कार विधिपूर्वक शान्ति के साथ सम्पन्न हो गया। शासन ने मैन्सन को यह आदेश दिया कि वह शीघ्रातिशीघ्र सूचित करें कि पेशवा बाजीराव ने कितनी धन-सम्पत्ति छोड़ी तथा कितने आश्रितों का भार उनके ऊपर था। इसी समय पेशवा के दूसरे सूबेदार रामचन्द्र पन्त ने अंग्रेजी शासन को एक प्रार्थना-पत्र प्रेषित किया। अंग्रेजों ने उसे पूर्ण तथा विस्तृत विवरण देने तथा आश्रितों की एक सूची संलग्न करने का आदेश दिया। कम्पनी के शासन-कर्त्ताओं ने बिठूर स्थित कमिश्नर को यह भी आज्ञा दी कि वह नानाराव को सूचित कर दे कि शासन ने उन्हें केवल धन-सम्पत्ति का ही उत्तराधिकारी स्वीकाद किया है, पेशवा की उपाधि, राजनैतिक अधिकार तथा विशेष व्यक्तिगत सुविधाओं का नहीं। इस-लिए उन्हें पेशवाई गद्दी प्राप्त करने के सम्बन्ध में कोई समारोह अथवा प्रदर्शन नहीं करना चाहिए।[2]

नानाराव को यह भी सूचना दे दी गयी कि बिठूर की जागीर भी पेशवा बाजीराव के जीवन-काल तक ही अनेक सुविधाओं से सम्बद्ध थी। पेशवा तथा उनके परिवार के स्त्री पुरुषों को न्यायालय के अधिकार क्षेत्र (jurisdiction) से मुक्ति केवल पेशवा के जीवनकाल तक ही थी।

उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों के गवर्नर तथा कानपुर के मजिस्ट्रेट एवं कलेक्टर श्री मोरलैण्ड के मध्य जो पत्र-व्यवहार हुआ था उसमें जनवरी १८५० ई० में ही यह तय हो गया था कि बिठूर में प्रदत्त जागीर नानाराव को, यदि वह वहीं रहें,

१. "आगरा नैरेटिव"—सन् १८५० ई०—शासकीय आज्ञा पत्र—७ जनवरी १८५० ई०।

२ वही : ७ जनवरी १८५० ई०, पैरा ९।

तो बिना राजस्व के बनी रहे, परन्तु उस जागीर की सीमा में रहनेवाले सभी नागरिकों को साधारण दीवानी और फौजदारी न्यायालयों के नियंत्रण के अधीन कर दिया। अस्तु, उसने संस्तुति की कि १८३२ का १ला विनियम (रेग्युलेशन–१) तुरन्त निरस्त कर दिया जाये।[१]

उपर्युक्त पत्र-व्यवहार तथा संबंधी अभिलेख देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि बिठूर स्थित कमिश्नर लेफ्टीनेन्ट कर्नल मैन्सन तो नानाराव की परिस्थिति से अवगत था और सहानुभूतिपूर्वक समस्या को सुलझाना चाहता था, परन्तु उसकी अस्वस्थता के कारण मेडिकल सर्टिफिकेट पर अवकाश प्राप्त करते ही कानपुर के कलेक्टर एवं मजिस्ट्रेट मोरलैण्ड ने नाना साहब के विरुद्ध लेफ्टीनेन्ट गवर्नर को भड़काना आरम्भ किया। फलस्वरूप नानाराव एवं जिला अधिकारियों में आपसी विरोध होने लगा। मोरलैण्ड ने अपनी विस्तृत आख्या के साथ बाजीराव पेशवा के आश्रितों की तथा उसकी सम्पत्ति की सूचियाँ शासन को प्रेषित कीं। इस आख्या में मोरलैण्ड ने बताया कि पंडितों को छोड़कर जिन्हें कभी निश्चित वेतन या शुल्क नहीं मिलता था, ३०१ ऐसे व्यक्ति बाजीराव की सेवा में थे जिनके लिए भरण-पोषण का कोई प्रबन्ध न रह जायेगा। इनकी मासिक वेतन की दर २७०६) थी। इनके अतिरिक्त पेशवा घराने से सम्बन्धित २६ ऐसी विधवाएँ थीं जिनका पालन-पोषण सदैव बाजीराव पेशवा द्वारा होता था।

बाजीराव पेशवा के आश्रित सम्बन्धियों में निम्नलिखित प्रमुख थे :—

(अ) गंगाधर राव—द्वितीय दत्तक पुत्र,
(ब) राड़ूरंग राव (पांडुरंगराव)—पौत्र,
(स) मैनाबाई—प्रथम विधवा रानी,
(द) साईबाई—द्वितीय विधवा रानी,
(क) योगाबाई—प्रथम पुत्री,
(ख) कुसमाबाई—द्वितीय पुत्री,
(ग) चिम्माजी अप्पा—चचेरा पौत्र।[२]

उपर्युक्त सभी वंशज पृथक् गृहस्थी रखते थे। परन्तु पेशवाई पेंशन बंद होने से

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड १, पृष्ठ ३५, अनुच्छेद १९। आगरा नैरेटिव विदेशी विभाग १८४४–५२, सचिवालय अभिलेख-कक्ष, उ० प्र०, लखनऊ।

२. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड १, पृष्ठ संख्या ३४ व ३७।

उनके पालन-पोषण का भार केवल संचित धन-राशि से हो सकता था, किन्तु वह भी कब तक। नानाराव ऐसी असह्य व दुर्दम्य शक्ति को देखकर घबड़ा गये। शासन ने भी पेशवा की मृत्यु के तुरन्त बाद ही, जिस पेशवा का स्थान भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में उस समय सर्वमान्य था, उनकी विधवा रानियों को कलकत्ता के उच्चतम न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) में उपस्थित होने के लिए 'सम्मन' प्रेषित किया। यह नानाराव तथा पेशवा परिवार के लिए असह्य तथा लज्जाजनक था।[१]

नानाराव की महत्त्वाकांक्षा

पेशवाई गद्दी सँभालने के पश्चात् नानाराव ने अपनी स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया। समस्त पेशवाई सम्पत्ति को अपने हाथ में ले लिया तथा पेशवाई शस्त्रागार इत्यादि पर भी कड़ी देखरेख रखी। पेशवा के जीवनकाल में सूबेदार रामचन्द्र पन्त ही सर्वेसर्वा था, तथा रानियाँ अतुल धन-सम्पत्ति पर अधिकार किये हुए थीं। पेंशन का कोई भरोसा न होने पर नानाराव केवल धन-सम्पत्ति द्वारा ही अपना तथा अपने आश्रितों का पालन-पोषण कर सकते थे। इसलिए उन्होंने सम्पत्ति पर एकाधिकार स्थापित कर लिया। यह विधवा रानियों को आपत्तिजनक प्रतीत होने लगा।[२] फलतः नानाराव के पेशवा परिवार में से ही बहुत से प्रतिद्वन्द्वी तथा विरोधी खड़े हो गये। पेशवा की विधवा रानियों ने बिठूर-स्थित कमिश्नर से शिकायत की कि नानाराव उनके हीरे-जवाहरात तथा आभूषण भी अपने अधिकार में करना चाहते हैं। परन्तु कमिश्नर ने इन शिकायतों की जाँच करने पर ज्ञात किया कि उनमें कोई तथ्य नहीं था। फलतः शासन की ओर से प्रतिद्वन्द्वियों तथा नानाराव के अन्य विरोधियों को सूचना दे दी गयी कि श्रीमन्त धोंडोपन्त, पेशवा के नियमानुकूल उत्तराधिकारी हैं तथा अंग्रेजी शासन ने उनको अतुल धन-सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया है। इसलिए पेशवा-परिवार के सब सदस्यों को नानाराव के सम्बन्धियों तथा आश्रितों को नाना धोंडोपन्त का यथोचित सम्मान करना चाहिए।[३] स्थानापन्न कमिश्नर ग्रेटहेड ने

१. चार्ल्सबाल—'हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी'—पृष्ठ ३०२–३०३।

२. "आगरा नैरेटिव"—सन् १८५१ ई० द्वितीय चतुर्थांश—अप्रैल, मई-जून; १८५२ से १८६० ई० तक।

३. वही : सन् १८५१ ई०।

विधवा रानियों को सूचना देते हुए समझाया कि नाना धोंडोपन्त को पूर्ण रूप से उत्तराधिकारी समझने में ही उनकी भलाई है। आगरा प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ने भी ग्रेटहेड के मन्तव्य को ही स्वीकार किया। साथ ही साथ यह भी आदेश दिया गया कि बिठूर में पृथक् कमिश्नर के कार्यालय की अब कोई आवश्यकता नहीं; शासन, नाना धोंड़ोपन्त से कानपुर के कलेक्टर द्वारा पत्र-व्यवहार कर लिया करेगा।

उपाधि-ग्रहण

नाना धोंडोपन्त ने उपर्युक्त बातों की चिन्ता न करके पेशवाई गद्दी पर बैठते ही, पेशवा महाराज की समस्त उपाधियाँ ग्रहण कर लीं। उन्होंने तुरन्त ही अंग्रेजी शासन को एक प्रार्थना-पत्र लिखवाया व उसमें पेशवाई पेंशन के बारे में पूँछताँछ की। इस प्रार्थना-पत्र के साथ एक पत्र आपने पीराजी राव भोंसले नामक वकील द्वारा भिजवाया जिसमें कि अपने को महाराजा शब्द से सम्बोधित किया। इस पर केन्द्रीय शासन ने आपत्ति की। नानाराव ने अपने द्वितीय एजेन्ट (वकील) ज्वल प्रसद (ज्वालाप्रसाद) द्वारा एक प्रार्थना-पत्र भेजवाया जिसमें पहली उपाधि के प्रयोग का स्पष्टीकरण कराया। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट किया कि पेशवा ने शासन-सत्ता अधिकार न अंग्रेजी शासन से प्राप्त किया था, और न ही दिल्ली के बादशाह से, जिससे कि ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सत्ता ग्रहण की, बल्कि उन्होंने अपने बाहुबल एवं प्रयास से साम्राज्य बनाया था। इसलिए उन्हें तथा उनके वंशजों को उपाधि धारण करने का पूर्ण अधिकार था। यह सब स्पष्टीकरण करके नाना साहब ने यह आशा प्रकट की कि गवर्नर जनरल को ऐसी प्रार्थना मानने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए जिसमें उनका कुछ व्यय न हो।[१]

कानपुर के कलक्टर को जैसे ही उपाधियाँ ग्रहण करने की बात मालूम हुई तो उसने जाँच-पड़ताल आरम्भ की। नानासाहब द्वारा उसका समर्थन प्राप्त होते ही कलक्टर ने शासन से प्राप्त खरीता तथा प्रार्थना-पत्र नानाराव को इस आशय से वापिस कर दिये कि कोई भी ऐसा प्रार्थना-पत्र या पत्र न स्वीकार किया जायेगा जिनमें इस प्रकार की उपाधियाँ होंगी। यदि इस विषय में उन्हें कुछ कहना था

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड १, फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशंस १६ दिसम्बर १८५३, संख्या १०६ नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

तो वह उपाधियों तथा पेंशन के बारे में आगरा प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर द्वारा ब्रिटिश शासन को अपना प्रार्थना-पत्र प्रेषित कर सकते थे।[१]

पेशवाई सम्पत्ति

इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूना से बिठूर आने के समय बाजीराव पेशवा अपनी अतुल धन-सम्पत्ति साथ लेते आये थे। शासकीय अनुमानों से पेशवा की जागीर तथा सम्पत्ति १६ लाख रुपये की थी, जिससे ८०,००० रु० वार्षिक आय थी। हीरे, जवाहरात तथा आभूषण इनके अतिरिक्त थे, जिनका मूल्य लगभग ११ लाख था।[२] इस स्थिति को देखकर स्थानापन्न कमिश्नर बिठूर ने शासन को संस्तुति दी कि श्रीमन्त नाना धोंडोपन्त को बाजीराव पेशवा की ८ लाख वार्षिक पेंशन का कुछ भाग अवश्य दिया जाय जिससे आश्रित परिवारों का भरण-पोषण होता रहे। यह धन-राशि धीरे-धीरे भले ही कम कर दी जाय। परन्तु प्रांतीय गवर्नर ने इसके विरुद्ध अपनी संस्तुति दी। उसके विचार से संचित धन-सम्पत्ति पेशवा-परिवार तथा आश्रितों के लिए पर्याप्त थी। लेफ्टिनेन्ट गवर्नर ने यह भी विचार प्रकट किया कि क्योंकि बाजीराव पेशवा ने केवल दत्तक पुत्र छोड़े हैं इसलिए उनके पालन-पोषण का शासन के ऊपर कोई उत्तरदायित्व नहीं है। उसके अनुसार नानाराव द्वारा दिया हुआ आभूषणों का मूल्य त्रुटिपूर्ण था, क्योंकि बिठूर में रहते हुए उदार पेंशन के पाने से पेशवा ने कहीं ज्यादा सम्पत्ति जुटाई थी। वास्तविक स्थिति भी ऐसी ही थी, क्योंकि नेपाल तराई में दो वर्ष पश्चात् भी नाना साहब तथा बेगम हजरत महल ने अपने खजाने का मूल्य ३½ करोड़ रुपया आँका था। यह कहना कठिन है कि बिठूर में पेशवा तथा पेशवा-परिवार के पास की अतुल धन-सम्पत्ति कितनी थी।

डलहौजी का निर्णय

नानाराव के प्रार्थना-पत्र तथा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की संस्तुति को विचार में रखकर लार्ड डलहौज़ी ने १५ सितम्बर १८५१ ई० को गवर्नर जनरल की हैसियत से एक प्रपत्र अंकित किया जिसकी मुख्य-मुख्य बातें यह थीं—

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड १, पृष्ठ ३९–४०, आगरा नैरेटिव फारेन डिपार्टमेन्ट १८४४–१८५२, सचिवालय अभिलेख-कक्ष, उ० प्र०, लखनऊ।

२. वही : पृ० सं०-३५-अनुच्छेद-१५।

बाजीराव पेशवा का परिवार—(१) उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों के गवर्नर ने मुझको एक विवरण प्रेषित किया है, जिसमें स्वर्गीय पेशवा बाजीराव के व्यक्तिगत मामलों एवं तत्संबंधी पत्र-व्यवहार संलग्न थे।

स्थानापन्न कमिश्नर ने संस्तुति की है कि ८ लाख रुपये वाली पेंशन में से, जो पेशवा को प्रदत्त थी, कुछ भाग उनके उत्तराधिकारियों को भी दिया जाय। लेफ्टिनेन्ट गवर्नर स्वयं इस संस्तुति का समर्थन नहीं करते।

(२) मेरे विचार से स्थानापन्न कमिश्नर की संस्तुति असंगत व अवांछनीय है।

जागीर के राजस्व के अतिरिक्त तीस वर्ष पक पेशवा ८०,००० वार्षिक का निर्विवाद शुल्क पाते रहे। इस अवधि में उन्होंने २०½ लाख पौंड से अधिक की धन-राशि प्राप्त की। उनके ऊपर कुछ व्यय का भार नहीं था; वह अपनी संतान कोई नहीं छोड़ गये। और अपने परिवार को २८ लाख की धन-सम्पत्ति सौंप गये।

जो उत्तराधिकारी जीवित रह गये थे उनका अंग्रेजी शासन पर कोई उत्तर-दायित्व नहीं था। उनकी शेष आय उनके भरण-पोषण के लिए पर्याप्त होनी चाहिए थी। उनका अंग्रेजी शासन की दानशीलता पर कोई दावा (अधिकार) नहीं। यदि यह पर्याप्त नहीं था तो पेशवा को अपनी असीमित राजस्व आय से उनका प्रबन्ध करना चाहिए था; और सम्भावना तो यह थी कि जो सम्पत्ति पेशवा छोड़ गये थे, वह कहीं अधिक थी। क्योंकि पेशवा-परिवार का शासन पर किसी भी रूप में अधिकार नहीं हो सकता था इसलिए मैं सार्वजनिक राजस्व में अंश भर भी देने की अनुमति नहीं दे सकता। मेरी प्रार्थना है कि भारतीय शासन का यह संकल्प एवं निर्णय पेशवा-परिवार को स्पष्टतः अविलम्ब घोषित कर दिया जाये।

(३) लेफ्टिनेन्ट गवर्नर द्वारा प्रस्तावित छोटे-मोटे प्रबन्ध तुरन्त स्वीकृत किये जाते हैं।

हस्ताक्षरित : डलहौजी

दिनांक १५ सितम्बर १८५१ ई०

[यथार्थ प्रतिलिपि : हस्ताक्षरित : ई० सी० बेयली[1] अणु सचिव—भारतीय शासन—गवर्नर जनरल से सम्बद्ध]

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड—१, पृ० सं० १२–१३, फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स्, दिनांक ३ अक्तूबर १८५१, संख्या ८–११ नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

डलहौज़ी के निर्णय के पश्चात्

जैसा कि स्वाभाविक ही था नाना साहब तथा अन्य आश्रित जन इस निर्णय से बहुत असन्तुष्ट हुए। नानाराव ने तुरन्त अनेक वकीलों की सलाह ली। इनमें हारमुज जी रुस्तम मोदी सबसे प्रमुख थे। इनके अतिरिक्त २९ दिसम्बर १८५२ ई० को कलकत्ता के शामबाजार में, बाबू इसीचन्द पाल चौधरी के सामने रहने वाले एक वकील ने नानाराव की ओर से भारतीय शासन को एक पत्र भेजा जिसमें गवर्नर जनरल से ईस्ट इंडिया कम्पनी लन्दन स्थित कोर्ट आव डाइरेक्टर्स, को प्रार्थना-पत्र भेजने की अनुमति माँगी। तत्पश्चात् नाना साहब ने लन्दनस्थित अधिकारियों पर प्रभाव डालने का प्रयत्न किया। उन्होंने एक विस्तृत प्रार्थना पत्र, जिसके साथ १९ जुलाई १८५१ को मोरलैण्ड को प्रेषित यादाश्त, एवं गवर्नर जनरल को भेजे हुए प्रार्थना-पत्र की प्रतिलिपि भी संलग्न थी, भेजा।[१]

नाना साहब का प्रार्थना-पत्र

इस प्रार्थना-पत्र में नाना साहब ने बाजीराव पेशवा के देहावसान के उपरान्त उत्पन्न हुई परिस्थिति का वर्णन करने के पश्चात् ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माननीय डायरेक्टरों का ध्यान १ जून १८१८ ई० की पवित्र संधि की ओर आकृष्ट किया। उन्होंने कहा कि पेंशन पर प्रतिबन्ध लगाने का निश्चय कम्पनी द्वारा दिये गये आश्वासनों पर उचित विचार किये बिना ही लिया गया था। संधियों के नियमों (शर्तों) में से एक धारा के विशेष अर्थ निकालना तथा अन्य के प्रति सहृदयतापूर्ण अर्थ निकाल कर कार्यान्वित करना अब तक हुई सब संधियों के तात्पर्य के विरुद्ध होगा। इस प्रकार १३ जून १८१७ ई० की संधि की १४वीं धारा के अनुसार माननीय राव पंडित प्रधान बहादुर अपने तथा अपने उत्तराधिकारियों के मालवा में उन सब अधिकारों एवं भू-खण्डों का जो उन्हें सन्धि की ११वीं धारा के अन्तर्गत प्राप्त हुए थे, तथा हर प्रकार के अधिकार एवं महत्त्व, जो उन्हें नर्बदा नदी के उत्तर के देश में प्राप्त हों, का माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पक्ष में परित्याग करते हैं। इस सन्धि द्वारा उन्होंने अंग्रेजी शासन के पक्ष में ३४ लाख रुपये वार्षिक की मालगुजारी वाले भू-खण्डों का परित्याग किया। परन्तु इसके बदले में कम्पनी

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड १, पृ० १६–३१, फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स, १६ दिसम्बर १८५३, संख्या १०६, नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

के शासकों ने बाजीराव पेशवा को अधिकार-स्वरूप या समझौते के अन्तर्गत प्रदत्त पेंशन नाना साहब तथा अन्य आश्रितों को देने से मना कर दिया। यह कम्पनी के शासकों का बाजीराव पेशवा के उत्तराधिकारियों के प्रति सरासर अत्याचार था। कम्पनी ने इस निर्णय को लेकर लार्ड हेस्टिंग्स द्वारा निर्धारित वैधस्तर पर उनका जीवनपर्यन्त पोषण कर अपने वचन का केवल आंशिक पालन ही किया, परन्तु उनके परिवार सम्बन्धी भाग की उपेक्षा की।

इसके अतिरिक्त नाना साहब ने प्रार्थना-पत्र में कम्पनी के डायरेक्टरों को बताया कि कम्पनी का अन्य राजाओं के वंशजों के प्रति व्यवहार तथा पेशवा के परिवार द्वारा अनुभव किये गये व्यवहार के अन्तर को समझने में असमर्थ है। मैसूर के शासक का उदाहरण देते हुए बताया कि उन्होंने कम्पनी के प्रति गहन शत्रुता दर्शायी तथा पेशवा उन राजाओं में से एक था जिसकी सहायता की याचना कम्पनी ने उस निर्दय शत्रु को कुचलने के लिए की थी। जब उस नायक की मृत्यु हाथ में तलवार लिये ही हो गयी तो कम्पनी ने उसकी सन्तानों को उनके भाग्य पर छोड़ने की कौन कहे, उसके वंशजों को शरण एवं सहृदय सहायता एक से अधिक पुश्तों तक बिना वैध अथवा अवैध में अन्तर किये हुए दी। ईसी प्रकार कम्पनी ने दिल्ली के पदच्युत सम्राट को कठोर कारावास से मुक्त कराया, राजसत्ता के चिह्नों से पुनः विभूषित किया एवं पर्याप्त मालगुजारी (राजस्व) वाला भू-खंड प्रदान किया जो कि आज तक उसके वंशजों के पास चला आता है। यह पृथक्-पृथक् बर्त्ताव क्यों किया गया? इसका कारण नाना साहब की समझ में नहीं आया।

साथ ही साथ नाना साहब के कथनानुसार पेशवा ने भारतीय अंग्रेजी शासन के साथ वर्षों की मित्रता के पश्चात् झगड़ा हो जाने के कारण युद्ध किया और अपने राजसिंहासन को संकट में डाल दिया। परन्तु शीघ्र ही उन्होंने अंग्रेजी सेनाध्यक्ष की शर्तों को मानकर आधे करोड़ रुपये की आयवाला भू-खण्ड कम्पनी के पक्ष में परित्याग कर दिया था। अब जब कि कम्पनी उनकी पैतृक सम्पत्ति की आय से लाभ उठा रही है तो उनके वंशज किस सिद्धान्त के आधार पर उन शर्तों में सम्मिलित पेंशन एवं राजसत्ता के चिह्नों से वंचित किये जा रहे हैं? नाना साहब की यह समझ में नहीं आया कि उनके परिवार का कम्पनी की कृपादृष्टि एवं आश्रय पर अधिकार विजित मैसूर राज्य वालों अथवा बन्दी मुगल शासक से किन अंशों में कम है?

दत्तक पुत्र शास्त्रोक्त

यह स्पष्ट है कि बाजीराव पेशवा ने हिन्दू विधि के अनुसार तीन पुत्रों को गोद

लिया था, जिसमें से नाना साहब ज्येष्ठ थे। स्थानीय शासन ने जो संस्तुति की उससे ज्ञात होता है कि वह हिन्दू विधि के अनुसार दत्तक एवं आत्मज पुत्र में तनिक भी अन्तर नहीं होने को बिल्कुल भी नहीं जानते। इसकी पुष्टि में नाना साहब ने मिस्टर सदरलैंड का प्रमाण प्रस्तुत करने की अनुमति चाही। उनका कथन है कि हिन्दुओं की धार्मिक मर्यादा के अनुसार किसी व्यक्ति की अन्त्येष्टि तथा अन्य क्रियाओं हेतु उसके एक पुत्र का होना नितान्त आवश्यक है। परिणामस्वरूप, वैध पुत्र के अभाव में प्रमाणित नियमों के अनुसार किसी सम्बन्धी अथवा किसी अन्य को गोद लिया जाता है तथा इस प्रकार विधिवत् गोद लिया हुआ पुत्र, आत्मज पुत्र के सब इहलौकिक अधिकारों का अधिकारी होता है। हिन्दू विधि के एक अन्य विशिष्ट ज्ञाता सर विलियम मैकनाटन के शब्दों में "दत्तक पुत्र सर्वथा गोद लेने वाले पिता के परिवार का सदस्य होता है, तथा वह उसकी (गोद लेने वाले पिता की) सपिण्डक तथा पैतृक संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है।"

अपने कथन की पुष्टि में नाना साहब ने उदाहरण देते हुए बताया कि स्वर्गीय पेशवा के दत्तक भ्राता अमृतराव बहादुर के साथ हुई सन्धि द्वारा कम्पनी ने उनके तथा उनके पश्चात् उनके दत्तक पुत्र के लिए पोषण का वचन दिया था, और कम्पनी ने उस दत्तक पुत्र को आत्मज पुत्र की भाँति माना था। इसकी पुष्टि में अनेक राजाओं के दत्तक पुत्रों को उपर्युक्त के उचित उत्तराधिकारी माने जाने से होती है जिनमें से कुछ, जो कि कम्पनी की सहमति से अब तक शासन कर रहे हैं, इस प्रकार है:—

हिन्दुस्तान (उत्तरी भारत में)

ग्वालियर के राजा जयाजी राव सिन्धिया
इन्दौर के जसवन्त राव होल्कर
धौलपुर के भगवन्त बहादुर सिंह
दतिया के राजा विजै (विजय) बहादुर सिंह
नागपुर के रग्घूजी भोंसले
भरतपुर के सवाई बलवन्त सिंह बहादुर

दक्षिण में—

क्षौर के पंत पिरथी निधी
भोर के सुचीकू पंत
शलटन के नायक साहब नैंनहालकर

जीन के दुफला

राव साहब पटवर्धन, जानाखण्डी

नाना साहब ने प्रार्थना-पत्र में आगे बताया कि यही स्थिति समस्त भारतवर्ष में कम्पनी के न्यायालयों की दिनचर्या में दृष्टिगोचर होती है जो कि राजाओं, भूमि-पतियों तथा प्रत्येक श्रेणी के नागरिकों के दत्तक पुत्रों को उन लोगों के रक्त द्वारा सम्बन्धित उत्तराधिकारियों के विरुद्ध उनकी सम्पत्ति प्राप्त करने का आदेश देते हैं, स्पष्ट होती है। वास्तव में जब तक अंग्रेजी भारतीय शासन पवित्र हिन्दू विधि की अवहेलना करने एवं हिन्दू-धर्म की परम्परा का उल्लंघन करने को, जिन दोनों का दत्तक पुत्र बनाना प्रमुख अंग है, तत्पर नहीं है, तब तक नाना साहब की समझ में नहीं आया कि किस आधार पर स्वर्गीय पेशवा की पेंशन से उसे केवल उनका दत्तक पुत्र होने के कारण ही वंचित रखा जा सकता था।

उत्तराधिकारी पत्र की सत्यता

दत्तक पुत्र बनाये जाने व उत्तराधिकारी घोषित होने की सूचना भारतीय अंग्रेजी शासन को कलकत्ता में ही श्री मैन्सन, कमिश्नर द्वारा १८४४ ई० में ही दे दी गयी थी। इस विषय में अंग्रेज अधिकारियों द्वारा मिथ्यारोपण तथा सन्देहात्मक जाँच इत्यादि पेशवा के परिवार तथा उत्तराधिकारियों के प्रति अन्याय था।

साथ ही साथ नाना साहब ने इस बात का भी खण्डन किया कि स्वर्गीय पेशवा ने अपने परिवार के पोषण हेतु पर्याप्त धन-सम्पत्ति छोड़ी थी। उनके विचार से शासन को इस बात से कोई मतलब नहीं था कि आठ लाख रुपये की वार्षिक पेंशन में से, स्वर्गीय पेशवा ने वास्तव में कौन-सा भाग व्यय किया और कितना बचाया। नाना साहब का यह कहना सत्य था कि उक्त पेंशन के अंश को न व्यय करने का अथवा उस व्यय का शासन को ब्यौरा देने की कोई शर्त सन्धि में नहीं थी। उनके कथनानुसार इस धरती पर किसी को भी इस पेंशन के व्यय पर नियंत्रण करने का अधिकार नहीं था। एक व्यक्तिविशेष की पेंशन के संबंध में भी यह अधिकार सिवाय व्यक्ति के और किसी को नहीं होता। पेशवा का तो कहना ही क्या? मुगल सम्राट आदि से भी शासन ने कभी पेंशन के व्यय का स्पष्टीकरण नहीं माँगा। डलहौज़ी का यह लांछन सर्वथा असंगत एवं अन्यायपूर्ण था।

पेशवा के अपने ही भरण-पोषण का प्रश्न नहीं था वरन् उन स्वामिभक्त अनुचरों के विशाल दल के लालन-पालन का भी प्रश्न था, जिन्होंने भूतपूर्व पेशवा के ऐच्छिक निर्वास में उनका अनुगमन करना ही पसन्द किया था। उनकी विशाल

संख्या, जो कि अंग्रेजी शासन को ज्ञात है, माननीय पेशवा के अल्प साधनों पर कुछ कम भार न थी। पेशवा ने अपनी बचत का अधिकांश 'पब्लिक सिक्योरिटीज' में ही लगाया, जिससे उनकी मृत्यु के समय ८० सहस्र रुपये की आय थी। इस प्रकार की दूरदर्शिता एवं मितव्ययिता को एक अपराध समझा जाना तथा पेशवा के उत्तराधिकारियों को दण्डस्वरूप उससे वंचित करना कहाँ तक युक्तिसंगत था।

जागीर की आय अपर्याप्त

नाना साहब को २४ जून १८५१ ई० के स्मृति-पत्र के उत्तर में यह बताया गया कि लेफ्टिनेन्ट गवर्नर इस बात पर दृढ़ थे कि पेंशन पुनः आरम्भ नहीं की जा सकती थी परन्तु नाना साहब बिठूर में दी हुई जागीर का, बिना राजस्व कर दिये, जीवन-पर्यन्त, भोग कर सकते थे। इसके उत्तर में नाना साहब ने बताया कि वह लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के आदेशों की अधीनता स्वीकार नहीं करते, उनका संबंध तो पेशवाई के नाते सीधे केन्द्रीय शासन से था। यदि जागीर देने की स्वीकृति भारतीय शासन ने दी थी तो पेंशन की आज्ञा भी अवश्य होनी चाहिए। उनका कथन था कि यदि उनके दावे- (अधिकार) स्वीकार होने योग्य नहीं थे तो केवल जागीर का उपभोग करने की आज्ञा देना ठीक नहीं था। कानून की दृष्टि में तो यह सर्वथा अन्यायपूर्ण तथा अवैध था, आर्थिक दृष्टि से यह बिल्कुल महत्त्वपूर्ण नहीं था। विशेषतः १८३२ के विनियम[१] के निरस्त होने के पश्चात् तो और भी नहीं।

अन्त में नाना साहब ने प्रार्थना-पत्र में स्पष्ट कर दिया कि समुचित भत्ते (पेंशन) के अभाव में वह अपने परिवार की प्रतिष्ठा तथा उन लोगों का, जो पूर्ण रूप से उन पर आश्रित हैं, पोषण करने में पूर्णतः असमर्थ हैं। और अत्यन्त विनीत शब्दों में प्रार्थना की कि वह अंग्रेजी शासन से अपने दावों के सम्बन्ध में किसी भी न्यायपूर्ण निर्णय के इच्छुक हैं। इस कार्य के सम्पादन के लिए वह माननीय कोर्ट आव डाइरेक्टर्स की सेवा में, स्थानीय शासन द्वारा उनके प्रति अपनायी गयी नीति के कारण उत्पन्न आर्थिक दुश्चिन्ताओं से विवश होकर अपने दीवान को, अपना प्रार्थनापत्र स्वयं देने का अधिकार देते हैं।

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश, खण्ड १, पृष्ठ १६–२३, फारेन पोलिटकल कन्सल्टेशन्सन, १६ दिसम्बर १८५३, संख्या १०६, नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

नाना साहब के दीवान

भारत में अंग्रेजी शासन से कोर्ट आव डाइरेक्टर्स को प्रार्थना-पत्र भेजने व एक दीवान को व्यक्तिगत रूप से प्रयास करने के लिए, नाना साहब ने लार्ड डलहौजी से पत्र-व्यवहार किया। इनका मुख्य ध्येय पेशवाई पेंशन पुनः प्राप्त करना था। परन्तु गवर्नर-जनरल ने ऐसा करने से साफ मना कर दिया और कोर्ट आव डाइ-रेक्टर्स को भी इसका विरोध करने व अस्वीकार करने के लिए संस्तुति की। अन्त में हताश होकर नाना साहब ने निश्चय किया कि अजीमुल्ला खाँ को अपना वकील बनाकर महारानी विक्टोरिया के पास विलायत भेजा जाये। अन्य भारतीय राजा, जो डलहौज़ी की अपहरण नीति से आक्रान्त थे, इसी मार्ग का अनुसरण कर रहे थे। फलतः अज़ीमउल्ला खाँ १८५४ ई० में विलायत पहुँचे।

लन्दन में अजीमउल्ला सतारा के राजा द्वारा भेजे हुए श्रीमन्त रंगो जी बापू से मिले। दोनों लन्दन के होटलों में, पार्कों में, विचार-विनिमय करने लगे। जिस ध्येय से अजीमउल्ला लन्दन भेजे गये थे वह पूर्ण न हुआ। क्योंकि उनके पहुँचने से पहले ही कोर्ट आव डाइरेक्टर्स ने नाना साहब का प्रार्थना-पत्र अस्वीकार कर दिया था। अजीमउल्ला खाँ ने बहुत हाथ-पैर मारे। वह महारानी विक्टो-रिया से भी मिले, परन्तु कोर्ट आव डाइरेक्टर्स पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह पेशवाई पेंशन बन्द करने के निश्चय पर दृढ़ थे।

हताश होकर अजीमउल्ला खाँ ने लन्दन की अन्य क्रियाओं में भाग लिया। उन्होंने शीघ्र ही एक 'भारतीय राजकुमार' (शहज़ादे) के रूप में प्रसिद्धि पायी। अंग्रेजी तथा फ्रेन्च भाषा का कुछ ज्ञान होने के कारण अजीमउल्ला खाँ लन्दन के सभ्य समाज में, विशेषतः महिलाओं में बहुत घुल-मिल गये। लन्दन के फैशनेबल समाज की टोलियों में उनकी खूब प्रसिद्धि हुई। इसी के फलस्वरूप उनके कानपुर लौटने के वर्षों बाद भी अनेक चंचल व चपल महिलाओं के प्रेमपत्र उनके पास आते रहे।[1]

ठीक इसी समय यूरोप में क्रीमिया-युद्ध (१८५४–५६) आरम्भ हो गया। अंग्रेजी व फ्रान्सीसी सेनाओं ने रूसी सैनिकों से टक्कर ली। अजीमउल्ला खाँ ने भारत लौटने के साथ ही साथ, फ्रान्स, इटली एवं रूस की यात्रा का निश्चय किया। क्रीमिया-युद्ध के मोर्चे तक पहुँचने के लिए अजीमउल्ला को श्री डोयन तथा डब्लू० एच० रसैल से वड़ी सहायता मिली। रसैल उस समय 'लन्दन टाईम्स' दैनिक

१. लार्ड राबर्ट्स : "लेटर्स रिटन ड्यूरिंग दी इंडियन म्यूटिनी"।

समाचार-पत्र के विशेष संवाददाता थे। उन्हीं की कृपा से आज अजीमउल्ला की विदेश यात्रा का विश्वस्त वर्णन उपलब्ध है जो उन्होंने अपनी "मेरी डायरी" में लिख कर छोड़ा था।[१] रसेल की अजीमउल्ला से सर्वप्रथम भेंट कुस्तुनतुनिया में हुई थी। यह वह समय था जब कि १८ जून १८५५ ई० के पश्चात् अंग्रेजी व फ्रान्सीसी सेनाओं की पराजय हो गयी थी। अजीमउल्ला खाँ को उन रूसी रुस्तमों को देखने की बड़ी लालसा थी, जिन्होंने अंग्रेजों को परास्त कर दिया था। फलतः वह रसेल की सहायता से क्रीमिया में बालाकलावा की उन खाइयों तक पहुँच गये जहाँ से रूसी तोपों की गोलाबारी दिखायी दे सकती थी। अजीमउल्ला रसेल के खेमे (शिविर) में केवल एक रात्रि ठहरे व उनके आतिथ्य सत्कार का लाभ उठाकर शीघ्र ही भारत को कूच कर गए। भारत लौटने पर अजीमउल्ला खाँ ने नाना साहब को अपने प्रयासों, विफलताओं तथा साहसी यात्राओं का विवरण दिया। इस विदेश यात्रा द्वारा अजीमउल्ला को अंग्रेजों की वास्तविक परिस्थिति, ढोल की पोल, तथा उनके स्वतन्त्र जीवन का आभास मिला। इससे स्वभावतः भारतीय क्रान्ति की पृष्ठभूमि प्रस्तुत हुई।

१. रसेल, डब्लू० एच०: 'लन्दन टाइम्स दैनिक समाचार-पत्र के संवाददाता द्वारा लिखित—"माई डायरी इन इंन्डिया"—भाग १। १८५७ की क्रान्ति के समय भारत में रसेल आये थे और यहां लार्ड कैनिंग, गवर्नर जनरल से भी उन्होंने अजीमउल्ला खाँ से अपनी "सिबैस्टोपोल" में हुई भेंट की चर्चा की थी। पृ० १६७–१६९।

अध्याय ४

क्रान्ति की तैयारियां

अंग्रेज इतिहासकारों तथा उनके पदचिह्नों में चलने वाले भारतीय इतिहासकारों के मतानुसार १८५७ का विस्फोट केवल एक सहसा-प्रारम्भ हुआ सिपाहियों का विद्रोह था। और नाना साहब तथा अन्य नेतागण उस विद्रोह में स्वार्थवश एवं अपनी ओर से प्रतिक्रिया हेतु मैदान में आये थे। क्रान्ति के पश्चात् कानपुर में विशेष आयक्तों (कमिश्नरों) द्वारा जो जाँच करायी गयी उसमें केवल यही प्रमाणित करने का प्रयास किया गया कि क्रान्ति के पहले कोई तैयारी नहीं थी और नाना साहब इत्यादि का उसमें कोई हाथ नहीं था।

भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों व राज्यों में जो जाँच हुई उसमें मैसूर में १८ जनवरी १८५८ ई० को एच० बी० देवीरू जुडिशल कमिश्नर, मैसूर के सम्मुख सीताराम बावा ने अपने कथन (बयान)[१] में बताया कि नानासाहब ने क्रान्ति की तैयारी में क्या-क्या भाग लिया। उसके कथनानुसार दस्सा बाबा के आदेशानुसार नाना साहब ने क्रान्ति की योजना बनाना आरम्भ किया। सर्वप्रथम सिन्धिया राजमाता बैजाबाई से सम्पर्क स्थापित किया गया, तत्पश्चात् होल्कर, सिन्धिया तथा जयपुर, जोधपुर, झालावार, रीवाँ, बड़ौदा, हैदराबाद, कोल्हापुर, सतारा, इन्दौर इत्यादि के राजाओं से पत्र-व्यवहार किया गया। सीताराम बावा के अनुसार ये पत्र १८५५ ई० में लिखे गये। अवध के अपहरण के पश्चात् सेना में व अवध में असन्तोष की आग भड़क उठी। साथ ही साथ कई योजनाएँ बनने लगीं। मुसलमानों में मुल्लाओं एवं फकीरों ने जिहाद का नारा लगाया; और हिन्दुओं ने धर्म-रक्षा का, नाना साहब एवं मुगल सम्राट बहादुरशाह में भी सम्पर्क स्थापित हुआ। अब तक इतिहासकारों को इस सम्पर्क का ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिला था, परन्तु बम्बई राज्य द्वारा प्रकाशित आधारभूत सामग्री के खण्ड १ में नाना साहब के एक घोषणापत्र का प्रकाशन हुआ है जिसमें नाना साहब ने उसे "आलीशान"

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड १, पृ० सं० ३७२–३७६।

"बन्दीगान" "आली हजूर" दिल्ली के शाहनशाह मुगल सम्राट की आज्ञा से प्रकाशित बताया।[१] यह पेशवा व मुगल सम्राट के सहयोग का जीता-जागता प्रतीक है।

सीताराम बावा के अनुसार अवध के अपहरण के उपरान्त नाना साहब की योजनाएँ सफल होने लगीं। जम्मू के राजा गुलाबसिंह तथा अन्य देशी राजाओं ने नाना साहब के पत्रों का उत्तर दिया। जाँच के मध्य में सीताराम ने इस तथ्य को पुनः दोहराया। उसके कथनानुसार दस्सा बाबा ने नानासाहब को बहुत भड़काया, उसने पेशवा की जन्मपत्री देखकर यह घोषित किया कि वह एक महान् सम्राट होगा। नानासाहब ने प्रसन्न होकर उसे बहुत धन प्रदान किया। दस्सा बाबा फिर नेपाल चले गये। जनसाधारण में यह प्रचलित था और अब तक है कि १८५७ की क्रान्ति में महान सेनानियों ने अपनी अपनी शक्ति के अनुसार, मध्यकालीन ढंगों से योजनाएँ बनायीं। उनकी आधुनिक क्रान्तियों एवं आन्दोलनों से तुलना करना व्यर्थ है। १८५७ की क्रान्ति मध्यकालीन क्रान्ति थी और उसको उसी स्तर से आँकना चाहिए। इतना तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि समस्त तैयारियाँ, गुप्त संघटन, ऐसे ढंग से हुआ कि भारत में स्थित अंग्रेज अधिकारियों को उसका लेशमात्र भी पता न चल सका। केवल यही एक क्रान्ति का पहलू यह सिद्ध करने को पर्याप्त है कि उसमें जनसाधारण का कितना सहयोग था और उन्होंने इसका सन्देश घर-घर कैसे पहुँचाया? यहाँ तो केवल इतना देखना है कि इन तैयारियों में नाना साहब का कितना हाथ था।

इतना तो निश्चय था कि देशी राज्यों की शक्तिहीनता, राजवंशों की पंगुता एवं मुगल सम्राट की असहायता को देखते हुए कोई भी क्रान्ति केवल सेनानियों के विद्रोह से आरम्भ हो सकती थी। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन के अन्तर्गत भारतीय सेना तीन भागों में बटी हुई थी, बंगाल आर्मी; बम्बई एवं मद्रास प्रेसीडेन्ट आर्मीज़। बंगाल सेना का क्षेत्र सबसे अधिक व्यापक था, कलकत्ता से लेकर पेशावर तक तथा अम्बाला से म्हाऊ तक। १८५७ की क्रान्ति इसी क्षेत्र में व्यापक रही। सेनानियों के असन्तोष का सबसे बड़ा कारण बंदूकों में ऐसे कारतूसों का प्रयोग था जिनमें ऊपरी कोनों पर गाय अथवा सुअर की चर्बी लगी रहती थी और उसे चलाने (फायर करने) से पहले दाँतों से काटना पड़ता था। यह हिन्दू व मुसलमान सेनानियों के लिए असह्य था। बूढ़े मुगल सम्राट बहादुरशाह ने अपने शायराना शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया था:—

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड ४, पृष्ठ ५८९–५९०।

"न ईरान ने किया, न शाह रूस ने।
अंग्रेज को तबाह किया कारतूस ने॥"

सेना में गुप्त रूप से संगठन व प्रचार करने का सबसे विश्वस्त प्रमाण १७वीं रेजीमेन्ट के सूबेदार बून्दूसिंह की अभियोग-पत्रावलियों से उपलब्ध हुआ है।[१] इस प्रपत्र से स्पष्ट ज्ञात होता है कि १७वीं रेजीमेंट १८५३-५४ में जब दिल्ली में स्थित थी, तब सेनानियों ने बहादुरशाह को सम्मान प्रकट किया व भेंट की। १८५४–५५ वह सेना लखनऊ में रही और अवध के अपहरण के समय उसने नवाब अवध को अपनी सेवाएँ अर्पित कीं। जुलाई १८५६ से अक्टूबर १८५६ तक यह प्रसिद्ध रेजीमेन्ट कानपुर में रही, व १२ फरवरी १८५७ को वह पुनः आजमगढ़ पहुँच गयी जहाँ उसने विद्रोह किया। क्रान्ति के समय कानपुर की घटनाओं में विशेषतः सतीचौरा घाट की दुर्घटना के उपरान्त सूबेदार बून्दूसिंह नानासाहब के दाहिने हाथ व विश्वासपात्र बन गये व नेपाल की तराई तक साथ रहे। इनके सम्बन्ध से ज्ञात होता है कि नाना साहब व सेनानियों के नेतागणों के बीच में क्या सम्बन्ध था।

भारतीय सेनानियों में असन्तोष

सैनिक मुख्यावास के सेवाओं के मुख्याधिष्ठाता के गोपनीय संदेशवाहक विभाग द्वारा संकलित प्रपत्रों के आधार पर यही बताया गया कि नानासाहब, फैजाबाद के मौलवी अहमदउल्ला शाह जैसे नेताओं ने सेनानियों में असन्तोष से लाभ उठाकर उन्हें क्रान्ति के लिए प्रोत्साहन दिया।[२] इतना तो निश्चय है कि बंगाल सेना के सेनानी अंग्रेजों की नीति से आक्रान्त थे और केवल एक नेता की खोज में थे। कलकत्ता से प्रकाशित दैनिक समाचार "हिन्दू पैट्रियट"[३]

१. लखनऊ कलक्टरी : म्युटिनी बस्ता संख्या ७ : बवोज द्वारा प्रेषित स्मृति-पत्र संख्या १३३ : जो विशेष अभियोग आयोग, अवध के सम्मुख लखनऊ में सूबेदार बून्दूसिंह के अभियोग के प्रसंग में दिया गया था। फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड १, पृष्ठ संख्या ३४२–३४९।

२. दी रिवोल्ट इन सैन्ट्रल इन्डिया १८५७–५९, फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड १, ३२१–३२५।

३. कलकत्ता समाचार-पत्र—बंगाल हरकारू कर्नल ह्वीलर के विरुद्ध कार्यवाही तथा लार्ड कैनिंग की ९ अप्रैल १८५७ की आख्या। बृहस्पतिवार मई २८, १८५७ ई० "फ्रेण्ड आव इंडिया" अप्रैल १७, १८५७ ई० पृ० ३६३।

के अनुसार सैनिकों को एक नेता की आवश्यकता थी वह उन्हें नाना साहब में मिला।

राजनैतिक नेताओं, राजाओं तथा नवाबों में असन्तोष तो था ही, भारतीय सेना में भी व्यापक रूप से विद्रोहाग्नि फैल गयी। कम वेतन, अधिकारियों द्वारा दुर्व्यवहार, कर्नल ह्वीलर जैसे अधिकारियों द्वारा खुल्लमखुल्ला ईसाई धर्म का प्रचार, नई पोशाक (वर्दी) विषयक नियम, विदेशों को भारतीय सेना भेजने का नियम[1] तथा नये कारतूसों का आना, भारतीय सैनिकों को अपने 'दीन' तथा धर्म की रक्षा के लिए लड़ मरने पर उद्यत करने के लिए पर्याप्त थे। उन्हें नेतृत्व की आवश्यकता थी। वह राजनैतिक असन्तोष से प्राप्त हो गयी। नाना साहब तथा बाबू कुँवर सिंह ने उत्तर प्रदेश तथा बिहार में, अली नक्की खाँ द्वारा बंगाल में तथा मुगल बादशाह के दूतों द्वारा मेरठ, दिल्ली तथा अम्बाला में भारतीय छावनियों में सैनिकों से सम्पर्क स्थापित किया। सब जगह यही आवाज थी कि मेरठ में विद्रोह होते ही सब उठ खड़े होंगे। मेरठ छावनी उत्तरी भारत में मुख्य समझी जाती थी, वहीं भारतीय सेना की बंगाल टुकड़ी के ऐडजुटेण्ट जनरल भी रहते थे। वहाँ अंग्रेजों की तीन कम्पनियाँ थीं। फलतः योजना के अनुसार मेरठ से ही क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ।

नाना साहब की तीर्थ-यात्रा

"लन्दन टाईम्स" दैनिक समाचार-पत्र के संवाददाता, डब्लू० एच० रसेल ने **"माई डायरी इन इन्डिया"**—भाग १, पृ० १७० में इस अनोखी यात्रा का उल्लेख किया है। उसने आश्चर्य प्रकट किया कि एक मुसलमान व हिन्दू का साथ-साथ ऐसी यात्रा करना कितनी अनोखी बात थी। यह यात्रा अजीमउल्लाह खाँ के विलायत से लौट आने के बाद सम्पन्न हुई। तीर्थस्थानों के साथ ही साथ इस यात्रा में उत्तरी भारत की प्रमुख सैनिक छावनियों जैसे मेरठ, अम्बाला तथा लखनऊ का दौरा करने का विचार था। उस समय लार्ड डलहौजी द्वारा यात्री-कर (पिल्ग्रिम टैक्स) लगाये जाने से बड़ा असन्तोष था। बड़े-बड़े राजा-रजवाड़े अपने ३००, ४०० साथियों के साथ यात्रा करते व इस कर से मुक्ति प्राप्त करते थे। परन्तु नाना साहब का ध्येय धार्मिक न होकर राजनैतिक था।

१. 'कलकत्ता इंग्लिशमैन'—शुक्रवार १६ अक्तूबर १८५७ तथा 'नैवेल एण्ड मिलिट्री गज़ेट" १५ अगस्त १८५७। "जनरल एन्लिस्टमेण्ट ऐक्ट" १८५६।

नाना साहब के मेरठ पहुँचने व सेनानियों के सम्पर्क का में आने कोई लिखित प्रमाणपत्र उपलब्ध नहीं। केवल अप्पाराम नामक संदिग्ध नाना साहब के अभियोग के संबधी प्रपत्रों में[1] एक कथन में मेजर चार्ल्स ने अपने कथन में बताया :—

"जब मैं मेरठ में कार्य करता था, तो मैंने नाना साहब को लगातार देखा। और अक्सर उनसे बात की।" .....इसके अतिरिक्त उसने बताया कि १४वीं ड्रागून्स के कप्तान चैम्बरलेन को नाना साहब के घोड़ों पर चढ़ने की आदत थी तथा, मेरठ में नाना साहब ने एक अंग्रेजी महिला को अपने आश्रय में लिया था। इस कथन का तत्कालीन अजमेर के डिप्टी कमिश्नर डेविडसन ने अनुमोदन किया।

नाना साहब की यात्राओं का ध्येय गोपनीय बना रहा। परन्तु उनकी लखनऊ-यात्रा के सम्बन्ध में भंडाफोड़ हो गया। इससे पहले वह काल्पी, दिल्ली, ग्वालियर, मेरठ, अम्बाला इत्यादि स्थानों की यात्रा कर आये थे। १८५७ अप्रैल माह में वह लखनऊ गये और वहाँ चीफ कमिश्नर लारेन्स से मिले।[2] लखनऊ नगर में उनका भव्य स्वागत हुआ। हाथी पर उनका जुलूस भी निकाला गया। सारे नगर को सजाया गया। ऐसे स्वागत से अंग्रेजों में कानाफूसी होने लगी। यद्यपि नाना साहब कानपुर से एक पहले जज कप्तान हेयन का परिचय पत्र लाये थे, परन्तु उनके शानशौकत व गर्वीले व्यवहार से गब्बिन्स इत्यादि अंग्रेज अधिकारी सहम गये। उनके साथ दीवान अजीमउल्ला खाँ भी थे। नाना साहब के छोटे भाई का बर्ताव अधिक शिष्ट था। गब्बिन्स द्वारा नाना साहब का चीफ कमिश्नर से परिचय हुआ, उन्होंने उनका आदर किया और नगर अधिकारियों को नाना के प्रति सत्कार प्रकट करने की आज्ञा दी। नाना ने लखनऊ छोड़ने के पहले एक बार पुनः बुधवार को मिलने का वायदा किया था। परन्तु सोमवार को ही सहसा कानपुर में आवश्यक कार्य बताकर वह लौट गये, इस बर्त्ताव से लारेन्स व गब्बिन्स सभी को सन्देह हो गया व उन्होंने कानपुर स्थित अधिकारी सर ह्यूह्वीलर को उनसे सतर्क कर दिया।

१. कानपुर कलक्टरी रिकार्डस्ः फायल संख्या ७३८ सार्जेन्ट मेजर चार्ल्स विल्किन्स का कथनः जो नसीराबाद में १८६१ में चौथी रायल आरटिलरी ब्रीगेड में कार्य करता था और पहले मेरठ में १४वीं लाईट ड्रागून्स में कार्य करता था।

२. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड १, पृष्ठ ३७६-३७७।

गुप्त तैयारियाँ

विशेष सूत्रों से यह पता चलता है कि सन् १८५७ के मई माह तक, प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की रूपरेखा निश्चित हो चुकी थी। आरम्भ में बारकपुर में कारतूस संबंधी विद्रोह एवं मंगल पाण्डे के शहीद होने के दिन से सेनानियों में बड़ी द्रुतगति से गुप्त संगठन आरम्भ हुआ। इसका मुख्य राजनैतिक केन्द्र अवश्य ही ब्रह्मावर्त का पेशवाई राजमहल बनाया गया, जहाँ नाना साहब तथा दीवान अजीमउल्ला खाँ, तात्या टोपे इत्यादि के साथ योजना बनाने लगे। पेशवा के समर्थकों ने समर्थ गुरु रामदास का मंत्र पूर्ण स्मरण किया और उसका प्रचार किया :—

"धर्मासाठी मरावें। मरोनि अवध्यांस मारावें।
मारितां मारितां ध्यावें। राज्य आपु ले।" अर्थात् हिन्दी में :—
"धर्म के लिए मरें।
मरते सभी को मारे।
मारते-मारते ले ले, राज्य अपना ॥

इसी मंत्र का जाप करते-करते नाना साहब के समर्थक स्वराज्य के स्वप्न देखने लगे।

देखते ही देखते समस्त उत्तरी-भारत में क्रान्ति के इन रक्त-कमल द्वारा छावनियों में संदेश पहुँचने लगे। एक सेनानी के हाथ से दूसरे के हाथ में यह जाता और सब एक स्वर से कह उठते —"सब कुछ लाल हो जायेगा।" क्रान्ति की सूचना कमल के अतिरिक्त चपातियों द्वारा भी एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजी गयी। चपातियाँ गांव के चौकीदार के हाथ भेजी जाती थीं। वह एक चपाती का एक अंश स्वयं खाता और शेष चपातियां गांव के निवासियों के बीच भेज देता। फिर उतनी ही चपातियां बनकर तैयार हो जातीं और दूसरे निकटवर्ती गाँव में पहुँचा दी जातीं। कई स्थानों पर अंग्रेजी अधिकारियों के हाथ में यह चपातियाँ पड़ गयीं[1] परन्तु वह इसका रहस्य समझ न सके। फलतः अवध में, पंजाब में गुड़गाँव जिले में, मेरठ, आगरा तथा मध्यप्रदेश के प्रमुख नगरों में चपाती द्वारा क्रान्ति का संदेश फैल गया।

मुगल सम्राट अध्यक्ष के रूप में

बम्बई शासन द्वारा प्रकाशित आधारभूत सामग्री में नानासाहब के घोषणा-पत्र प्राप्त होने से यह प्रमाणित हो गया है कि नाना साहब मुगल सम्राट का आधि-

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड १, पृष्ठ ३९३–३९५।

पत्य मानने के लिए प्रस्तुत थे। इसमें कोई असंगत बात भी नहीं थी; क्योंकि मुगल सम्राट बूढ़ा व असहाय था और अपने पूर्वजों की भाँति समस्त राजशक्ति पेशवा नाना साहब को सौंपने में संकोच नहीं करता। दूसरी ओर मुगल सम्राट को अध्यक्ष स्वीकार करने से मुसलमानों का सहयोग मिलता तथा पंजाब आदि प्रदेशों में क्रान्ति का प्रचार सरल हो जाता। अवध के निष्कासित नवाब तथा मन्त्री पहले से ही कलकत्ता में आक्रान्त थे। परन्तु ऐसी योजना में कठिनाइयाँ कम न थीं। मुगल सम्राट के विरोध में सिक्खों एवं राजपूतों का सहयोग प्राप्त करना भी कठिन था। चारों ओर क्रान्ति की चिनगारियाँ सुलग रही थीं, बस विस्फोट होने भर की देर थी। कलकत्ता में गार्डन रीच के भवन में नवाब वाजिदअली शाह, अली नकी खाँ तथा दीवान टिकैतराय, बिहार में बाबू कुँवरसिंह, लखनऊ में बेगम हजरत महल, फैजाबाद के कारावास में मौलवी अहमदउल्ला शाह, झाँसी में रानी लक्ष्मी-बाई, अन्य केन्द्रों पर स्थानीय क्रान्तिकारी नेता, क्रान्ति के आरम्भ होने की शुभ घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे।[१]

क्रान्ति का असामयिक विस्फोट : १० मई १८५७

योजना के अनुसार क्रान्ति का श्रीगणेश ३१ मई १८५७ रविवार को होना था। परन्तु अप्रैल के माह में मेरठ में तीसरी घुड़सवारों की चपल रेजीमेंट में असन्तोष की आग भड़क गयी। कारण नये कारतूसों का प्रयोग था। २३ अप्रैल को परेड पर ५ व्यक्तियों को छोड़ कर समस्त सेनानियों ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया। इस पर जाँच हुई, सेनानियों पर अभियोग लगाया गया और उन्हें सजा देने का निश्चय किया गया। २५ सेनानियों को परेड पर ही पद-च्युत कर दिया गया, शेष को जेल में ठूँस दिया गया। ९ मई को पुनः छावनी में खबरें फैल गयीं कि अंग्रेजी सेना तोप व तोपखाना अपने अधिकार में लेने वाली है। दस मई को सायंकाल के समय छावनी में हलचल मची और तीसरी घुड़सवार सेना ने जेल जाकर अपने साथियों को छुड़ा लिया और ११वीं व २०वीं सेना की टुकड़ियों के साथ क्रान्ति का सिंहनाद किया। जिन अधिकारियों ने उन्हें परेड पर आकर शान्त करने का प्रयत्न किया उन्हें गोली से मार दिया गया। साथ ही साथ मेरठ की जेल से १,००० कैदियों को रिहा कर दिया

१. 'रेड पैम्फलेट'—अथवा 'दि म्यूटिनी आव दि बंगाल आर्मी'-पृ० १६-१७ तथा कलकत्ता सुप्रीम कोर्ट में नवाब अवध, टिकैतराय आदि की ओर से "हैबियस कारपस" का प्रार्थना-पत्र तथा उस पर निर्णय।

गया। १० मई की रात्रि को छावनी व नगर में लूटमार, मारकाट आरंभ हो गयी, सेनानियों ने सर्वप्रथम दिल्ली व मेरठ की सड़कों पर अपना अधिकार जमा लिया और दिल्ली की ओर कूच किया। रास्ते में मेरठ व हापुड़ के गांवों से निवासियों ने सेनानियों का साथ दिया। चारों ओर अंग्रेजों पर हमला बोल दिया गया, "हर हर महादेव"! "दीन दीन"--"मारो फिरंगी को!" आदि नारों से मेरठ का वायु-मंडल गूंज उठा। मेरठ में स्थित गोरा पल्टनें असहाय हो गयीं--अंग्रेज घबड़ा उठे। वह क्रान्ति की लहर को रोक न सके। भौचक्के रह गये। क्रान्तिकारी सेनानी मेरठ से दिल्ली पहुँच गये।

प्रश्न उठता है कि जब ३१ मई को क्रान्ति का श्रीगणेश निश्चित था तो मेरठ में सेनानियों ने क्यों शीघ्रता की? इसका उत्तर ८५ सेनानियों की बेड़ियाँ देती हैं! उनको ६ वर्ष से १० वर्ष तक के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया था। उनकी वरदी उतार ली गयी। उनके शस्त्र छीन लिये गये। इस पर उसी दिन सायंकाल को छावनी में सैनिकों को स्त्रियों ने धिक्कारा, जिसके फलस्वरूप सैनिक भड़क उठे। उनको यह आभास हो गया कि अब देर नहीं करनी चाहिए। फलतः क्रान्ति का आरम्भ असामयिक अवश्य हुआ, परन्तु मुगल सम्राट बहादुरशाह तथा नाना साहब इत्यादि ने उसे निभाने का पूर्ण प्रयत्न किया। यह दिल्ली में क्रान्ति की घटनाओं से स्पष्ट हो जाता है।

मेरठ के क्रान्तिकारी सेनानी "दिल्ली चलो" का सिंहनाद करते हुए दिल्ली पहुँच गये। वहाँ पर क्या हुआ इसके अनेक विस्तृत वर्णन उपलब्ध हैं। परन्तु यहाँ केवल इतना देखना है कि ११ मई को स्वतन्त्रता की घोषणा होने के पश्चात् जो कुछ दिल्ली में हुआ उसमें नाना साहब का कुछ हाथ था अथवा नहीं? यह निम्नलिखित दिल्ली के घोषणा-पत्र से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है—

दिल्ली का घोषणापत्र[1]

यह घोषणा-पत्र सर्वप्रथम ८ जून १८५७ ई० को कलकत्ता के मुस्लिम समाचार-

१. कलकत्ता का समाचार-पत्र : "बंगाल हरकारू तथा इंडिया गजट"— दिनांक: जून १३, १८५७ ई०। (शनिवार की प्रति में प्रकाशित—पृ० ५५८। सम्पादक के नाम 'एच' की ओर से- दिनांक १२ जून १८५७ ई०।) इसी घोषणापत्र की पूर्ण प्रति मार्ब्रे थाम्पसन ने अपनी पुस्तक "कानपुर" में प्रकाशित की है, तथा चार्ल्स बाल की पुस्तक—"हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी" में भी दी हुई है। पृ० ४५९।

पत्र "दूरबीन" में प्रकाशित हुआ था, तथा दूसरे समाचार-पत्र "सुल्तान-उल-अखबार" ने उसकी नकल १० जून को प्रकाशित की थी। यह घोषणा-पत्र ८ जून से २ सप्ताह पहले अर्थात् २५ मई तक गवर्नर-जनरल की अन्तरंग सभा (एक्जीक्यूटिव कौंसिल) के एक सदस्य के हाथ में पहुँच चुकी थी। दिल्ली से कलकत्ता तक उस समय में पहुँचने में कम से कम १० दिन तक का समय लगता था। अस्तु, यह घोषणा-पत्र ११ मई और १५ मई की अवधि में मेरठ व दिल्ली के सेनानियों द्वारा प्रकाशित हो गया होगा। इसकी वास्तविक तिथि का आभास इसके शब्दों से भी प्रदर्शित होता है :—

घोषणा-पत्र

"समस्त हिन्दू व मुसलमानों को, जो इस समय दिल्ली तथा मेरठ की अंग्रेजी सेनाओं के भूतपूर्व अधिकारियों के साथ हैं यह विदित हो कि सब यूरोप निवासी इस बात पर एक मत हैं कि :—

"प्रथम सेना का धर्म-भ्रष्ट किया जाये तत्पश्चात् कड़े अनुशासन से समस्त प्रजा को ईसाई बनाया जाये। वास्तव में गवर्नर-जनरल की निर्विवाद आज्ञाएँ हैं कि सुअर तथा गाय की चर्बी से बने हुए कारतूस सैनिकों को दिये जायँ, यदि वह १०,००० हों और इसका विरोध करें तो उन्हें तोप से उड़ा दिया जाय, यदि ५०,००० हों तो निशस्त्र कर दिया जाये।

"इस कारण से धर्म की रक्षा के लिए हमने सब प्रजा के साथ उपाय निकाला है; और यहाँ एक भी काफिर को जीवित नहीं छोड़ा है। दिल्ली के बादशाह को इस शर्त पर सिंहासनारूढ़ किया है कि जो सैनिक अपने यूरोपियन अधिकारियों की हत्या करेंगे तथा बादशाह (मुगल सम्राट) को स्वीकार करेंगे उन्हें सदैव दुगुना वेतन मिलेगा। हमारे हाथ में सैकड़ों तोपें आ गयी हैं; अतुल धनराशि भी प्राप्त हुई है; इसीलिए यह आवश्यक है कि जो भी ईसाई धर्म न स्वीकार करना चाहें, वह हमारे साथ मिल जायें, साहस से काम लें तथा उन काफिरों का कहीं पर भी चिह्न न छोड़ें।

"प्रजा में जो भी सेना को सामग्री देने में व्यय करेगा, वह अधिकारियों से रसीद लेकर अपने पास रखे, उसके लिए उसे बादशाह से दूनी कीमत मिलेगी। इस समय जो भी कायरपन दिखायेगा और अंग्रेजों की धोखा देने वाली बातों में आ जायेगा तथा उन पर विश्वास करेगा, वह उसका फल भी भोगेगा जैसे कि लखनऊ के नबाब ने भोगा।

"इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि हिन्दू तथा मुसलमान इस संघर्ष में

एक हो जायँ; भले आदमियों के आदेश मानते हुए अपने को सुरक्षित रखें तथा शान्ति स्थापित रखें, गरीबों को सन्तुष्ट रखा जाय। उन लोगों को स्वयं उच्च पद तथा आदर-सत्कार मिलेगा।

"जहाँ तक सम्भव हो इस घोषणा-पत्र की प्रतियाँ बाँटी जायँ, सब जगह भेजी जायें तथा मुख्य स्थानों पर चिपकायी जायँ (चतुराई से जिसमें कोई भेद न ले सके) जिससे समस्त हिन्दू व मुसलमान इससे परिचित हो जायँ। सब सतर्क रहें तथा इसके प्रचार को तलवार के वार के समान समझें।

"दिल्ली में अश्वारोही का प्रथम वेतन ३०) मासिक होगा, १०) मासिक पदातियों का। लगभग १ लाख सैनिक तैयार हैं। भूतपूर्व अंग्रेजी सेनाओं की १३ पताकाएँ हमारे अधीन आ गयी हैं, तथा १४ अन्य पताकाएँ दूसरे स्थानों से आकर मिल गयी हैं।

"यह सब धर्म की रक्षा, ईश्वर के लिए तथा विजेता के लिए ऊँची उठी हैं —

समूल विच्छेदन कर दिया जाय और **कानपुर का भी यही मन्तव्य है** कि शैतान का चिह्न तक भी मिटा दिया जाय। यही यहाँ की सेना भी चाहती है।"[1]

इस घोषणा-पत्र में स्पष्ट लिखा गया है कि जो नीति दिल्ली में सेनानी प्रयोग में ला रहे थे वह वही थी जो कानपुर से निर्धारित थी। इसके यह शब्द "कानपुर का भी वही मन्तव्य है" बहुत ही रहस्यमय है। विशेषतः जब हम इस बात को ध्यान में रखें कि यह घोषणा-पत्र १५ मई १८५७ तक प्रकाशित हो गया था और यह कानपुर में क्रान्ति के विस्फोट से अर्थात् ४ जून १८५७ से २० दिन पहले घोषित हो गया था। इससे बड़ा एवं विश्वस्त प्रमाण नाना साहब व बहादुरशाह तथा सेनानियों के पूर्व सम्बन्ध का क्या मिल सकता है? सौभाग्य से इस घोषणा-पत्र की मूल प्रति भी उपलब्ध हो गयी है और प्रकाशित हो गयी है। इसलिए इतिहासकार स्वयं उसका महत्त्वपूर्ण मूल्य आँक सकते हैं।

उपर्युक्त घोषणा-पत्र से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि नाना साहब, बहादुरशाह, जीनतमहल अजीमउल्ला आदि नेताओं के मन्तव्य के अनुसार ३१ मई का दिन क्रान्ति के प्रथम शंखनाद के लिए निश्चित हुआ था। परन्तु मेरठ में असामयिक विस्फोट से कार्यक्रम विकृत हो गया। फलस्वरूप क्रान्ति तीन विभिन्न

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड १, पृ० ४३८–३९। इस घोषणा पत्र की मूल प्रति भी नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली से उपलब्ध हो गयी है और उपर्युक्त ग्रन्थ की प्लेट संख्या १७ में प्रकाशित है।

तिथियों में स्थान-स्थान पर आरंभ हुई। प्रथम लहर १० व ११ मई को मेरठ-दिल्ली तथा आसपास की छावनियों में फैल गयी; द्वितीय क्रान्ति की लहर निश्चित तिथि ३१ को फैली। अवध व रुहेलखण्ड में यही तिथि मानी गयी। इसीलिए वहाँ क्रान्तिकारियों का स्वतन्त्र-शासन लम्बी अवधि तक रहा। तृतीय अवधि ४ से ६ जून थी इसमें कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, आजमगढ़, झाँसी इत्यादि केन्द्र सम्मिलित हुए। परन्तु सभी स्थानों में कानपुर का मन्तव्य ही सर्वमान्य था। अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए यह समय सर्वोत्तम भी था। उनको इस देश की गरमी बहुत सताती थी। चारों ओर के रास्ते वर्षा ऋतु में बन्द हो जाते, ऐसे समय में सेनाओं का संचालन कठिन हो जाता। यदि योजना के अनुसार क्रान्ति हो पाती, तो २३ जून १८५७ तक भारतीय सेनाएँ कलकत्ता पहुँचकर प्लासी की लड़ाई का शतवर्षीय बदला लेतीं।

अध्याय ५

कानपुर में विप्लव

क्रान्ति से पहले कानपुर भारतीय सैनिकों का महत्वपूर्ण अड्डा था। सन् १७७५ ई० में यातायात की सुरक्षा एवं अवध के नवाब पर दृष्टि रखने के लिए अंग्रेजों ने यहाँ अपना एक सैनिक अड्डा बनाया। नगर पर अधिकार १८०१ ई० से हुआ। बिठूर में १८१७ ई० में पेशवा तथा उनके परिवार के आ जाने के पश्चात् कानपुर का राजनतिक महत्व बढ़ गया। इस पर केन्द्र तथा उत्तर-पश्चिमी प्रान्त दोनों की ही कड़ी देख-रेख रहती थी। इंगलैण्ड तथा योरप से यात्री भी कानपुर आने का कार्यक्रम बना लेते थे। १८५६ ई० में अवध के अपहरण के समय कानपुर का महत्व दुगना हो गया। यह अवध में घुसने का प्रवेशद्वार हो गया। लखनऊ से कलकत्ता जाने का यही मार्ग था। सन् १८५७ तक कानपुर की छावनी भारत की प्रसिद्ध छावनियों में हो गयी थी। यहाँ पहली ५३वीं, ५६वीं नम्बर की पदाती सेना तथा घुड़सवारों की "द्वितीय लाइट कैवलरी" एवं ६१ अंग्रेज तोपची स्थित थे। वहाँ पर ६ तोपें थीं। सेना का नायकत्व ह्यू मेसी ह्वीलर के पास था।

यद्यपि नाना साहब की लखनऊ यात्रा के पश्चात् ही लारेन्स ने सतर्क कर दिया था परन्तु कानपुर स्थित पदाधिकारियों को नाना साहब पर इतना विश्वास था कि उन्होंने चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। मेरठ व दिल्ली में क्रान्ति का विस्फोट होने के पश्चात् ह्वीलर ने विशेष तैयारियाँ आरम्भ कीं। अवध से एक घुड़सवारों की टुकड़ी बुलायी गयी। सेना के अधिकारियों को आज्ञा दी गयी कि वह छावनी में सैनिकों की पंक्ति में ही रात्रि को सोयें। इसके अतिरिक्त बिठूर के राजा श्रीमन्त नाना धोंडोपन्त से सहायता मांगी गयी। उन्होंने सहर्ष २०० घुड़सवार, ४०० पदाती तथा २ तोप अंग्रेजों की सहायता व खजाने की सुरक्षा के लिए भेज दीं। कुछ दिनों में अवध से आये हुए घुड़सवारों को विश्वस्त न समझ कर लखनऊ से ३२वीं रेजीमेन्ट बुलायी गयी।[1]

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड ४, पृ० ५१७–५१९, एच० जी० वीलाफास का कथन।

इसी प्रकार कानपुर के कलक्टर ने जब नानासाहब से प्राप्त हाथियों द्वारा खजाने को गुप्त-स्थान में ले जाना चाहा तो उसके सुरक्षा सैनिकों ने विरोध किया। खजाने पर अंग्रेज सैनिक तैनात करने की धमकी पर भी सैनिकों ने रोष प्रकट किया। कलक्टर को जब सैनिकों के विद्रोही ढंग दिखायी दिये तो वह हताश होकर नाना साहब की शरण में आया। नाना साहब द्वारा दिये गये सैनिकों को खजाने की सुरक्षा का भार सुपुर्द किया गया। नाना साहब ने भी राजनीति के दाँव-पेंच में इस अवसर से लाभ उठाने का निश्चय किया। इस अवसर से क्रान्ति के पहले ही नाना साहब को बिठूर से सैनिक लाने व खजाने पर अधिकार जमाने की स्वर्णिम घड़ी मिल गयी।

नाना साहब के शिष्ट व्यवहार के कारण अंग्रेजों को उन पर कितना भरोसा था यह कानपुर के कलक्टर हिलर्सडन की पत्नी के इंगलैण्ड में रहने वाले अपने एक निकट संबंधी को लिखे पत्र से पता चल जायगा :—

"यहाँ विद्रोह होने की पूरी संभावना है। ऐसा होने पर मैं यहाँ से ६ मील दूर बिठूर चली जाऊँगी। वहाँ पेशवा रहते हैं, जो साहब के मित्र हैं। बहुत धन-वान भी हैं। उन्होंने आश्वासन दिया है कि मैं निश्चिततापूर्वक वहाँ रहूँ। पहले मैं छावनी में रहना चाहती थी, पर मेरे पति ने मुझे बिठूर में रहने की ही सलाह दी है।"

बैरकों में डेरा[1]

आनेवाले संकट से रक्षा करने का प्रबंध आरंभ करने के लिए सबसे पहले अंग्रेजों ने एक स्थान निश्चित किया। सिपाहियों की बैरकों के पास ही एक अस्पताल था। इसमें दो लंबी बैरकें थीं। एक पक्की थी और दूसरी कच्ची। इनके चारों ओर बरामदे थे। ह्वीलर ने इसी को अपना गढ़ बनाने का निश्चय किया। इन बैरकों के चारों ओर ४ फुट उँची कच्ची दीवार का एक घेरा बनाया गया। इस गढ़ में आवश्यक सामग्री जमा की जाने लगी। दुगुनी मजदूरी देकर मजदूरों द्वारा समस्त कार्य को ४ दिन में सम्पन्न कराया गया। अन्त में २०० यूरोपियन सैनिकों, औरतों और बच्चों ने इस गढ़ में शरण ली। साथ में लगभग १ लाख रुपया भी साथ लिया।

तात्या टोपे के यथाकथित कथन के अनुसार कलक्टर के निमन्त्रण पर वह नाना

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश, खण्ड ४, पृ० ४९९। बिलास राय का कथन : यह डेरा "जूही मैदान" में स्थित था।

साहब के साथ १०० सिपाही, ३०० बन्दूकची तथा २ तोप लेकर कलक्टर के मकान पर पहुँचे, परन्तु वह उस समय बैरकों में था।[1] उसकी सूचना प्राप्त होने पर यह लोग उसी के मकान पर रात्रि को रहे। कलक्टर ने सबेरे आकर अपने मकान पर स्वयं ही नाना साहब के रहने का प्रबन्ध किया। वह वहाँ चार दिन रहे और इस बीच में कलक्टर ने उनके सैनिकों के वेतन के भुगतान के लिए आगरा से स्वीकृति माँगी।

अंग्रेजों का क्रान्ति की खबरें सुनकर कानपुर खाली करने का विचार था परन्तु ह्वीलर के आश्वासन देने पर उन्होंने बैरकों को अपना गढ़ बनाया। वहाँ पर आटा, दाल, घी, नमक, चावल, चाय, शक्कर, कच्ची शराब, इत्यादि १,००० व्यक्तियों के लिए ३० दिन का सामान भर लिया गया। कलक्टर का विचार समस्त खजाना वहीं पर जमा करने का था परन्तु सैनिकों ने यह न होने दिया। कलक्टर के कहने पर खजाने की सुरक्षा का भार नाना साहब ने स्वयं ग्रहण किया। अपने सैनिकों को बल देने के लिए २,००० अन्य सैनिक भर्ती करना शुरू किया। खजाने से १ लाख रुपया निकाल लेने के बाद ८॥ लाख रुपया खजाने में शेष था। सेना में वितरण हेतु नकदी को भी जो ३४,०००) थी ३ ता० को बैरकों के गढ़ में पहुँचा दिया गया। अंग्रेज स्त्रियाँ और बच्चे २२ मई १८५७ से ही घेरे में पहुँच चुके थे। गढ़ की दशा का वर्णन फ्लेचर हेईज़ द्वारा निम्नलिखित शब्दों में किया गया :—

"जब मैं कोट (गढ़) में गया तो मैंने बग्घियों, पालकियों और गाड़ियों पर लिपिकों, व्यापारियों तथा अन्य लोगों को सामान लादकर आते देखा। प्रत्येक व्यक्ति काल्पनिक शत्रु से थर्रा रहा था। बैरक में पड़े हुए भोजन की भद्दी मेज़ के निकट महिलाएँ बैठी हुई थीं। दुधमुंहे बच्चों के साथ स्त्रियाँ, दाइयाँ, बच्चे और अफसर चारों ओर फैले हुए थे। ऐसी स्थिति में अगर विद्रोह होता है तो इसके लिए हमारे सिवा और कोई दोषी नहीं होगा। हमने हिंदुस्तानियों को दिखा दिया है कि हम कितनी जल्दी डर जाते हैं और डर जाने पर कितने असहाय हो जाते हैं।"

कोट में आश्रय पाने के पश्चात् भी अंग्रेज २४ मई से ३१ मई तक प्रत्येक पल क्रान्ति के आरम्भ होने की संभावना से आतंकित रहे। कहीं आग लगने अथवा कहीं स्त्रियों के भयभीत होने की अफवाहें फैल जाती थीं। एक दिन अजीमउल्ला खाँ अंग्रेजों की किलेबन्दी देखने गये—साथ में लेफ्टिनेंट डेनियल भी था। अजीमउल्ला ने प्रश्न किया:—

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड ४, पृ० ५१०–५११।

"आप लोग यह किलेबंदी खड़ी कर रहे हैं, उसका नाम क्या होगा ?"

डेनियल ने कहा :—"हम लोगों ने इस पर विचार नहीं किया है"। अज़ीमउल्ला ने कहा :—"इसका नाम तो निराशा का दुर्ग होना चाहिए।" इसपर डेनियल बोला :—"नहीं, इसका नाम "विजयदुर्ग" होगा।" अजीमउल्ला ने बड़े जोर से अट्टहास किया।

१ जून तक जब कोई विशेष घटना नहीं घटी तो जनरल ह्वीलर ने सर हेनरी लारेंस को लिखा :—

"मेरा विश्वास है कि अब कानपुर का संकट शीघ्र ही दूर हो जायेगा। फिर मैं आपको भी सहायता भेज सकूंगा।" २ जून को सैनिकों की एक कम्पनी लखनऊ को रवाना हो गयी। ३ जून को फतेहगढ़ में क्रान्ति के दमन के लिए कुछ सैनिक भेजे गये परन्तु वह रास्ते ही से लौट आये। ह्वीलर को अब पूर्ण विश्वास हो गया था कि सेना विद्रोह नहीं करेगी।

क्रान्ति का श्रीगणेश

कानपुर के एक महाजन कन्हैया प्रसाद के कथनानुसार[1] नाना साहब ने दूसरी घुड़सवार पल्टन को सर्वप्रथम अपने साथ मिलाया। इस कार्य में उन्हें रहीम खाँ, जो बिठूर के पास के एक गाँव बिशनपुर का निवासी था और बाँदा के रहने वाले मदद अली खाँ से सहायता मिली। नाना साहब के कानपुर आ जाने के पश्चात् सूबेदार शीबा सिंह और सवार शमशुद्दीन खाँ उनके पास अक्सर आया करते थे। पहली या दूसरी जून को यह दोनों आदमी दूसरी घुड़सवार पल्टन के हवील्दार-मेजर गोपाल सिंह के साथ शूकामुल्ला घाट पर गंगा किनारे एकत्र हुए। वहाँ नाना साहब, बालाराव तथा अजीमउल्ला खाँ से सायंकाल के समय गाँव पर बैठे हुए भेंट हुई। दो घण्टे के विचार विमर्श के पश्चात् सब अपने-अपने स्थान को चले गये। इस बैठक की चर्चा मैजिस्ट्रेट तक पहुँची। नाना साहब से पूंछताँछ हुई परन्तु उन्होंने विश्वास दिलाया कि यह बैठक दूसरी घुड़सवार पल्टन को शान्त रखने के लिए की गयी थी। इस गुप्त बैठक में शमशुद्दीन खाँ तथा गणिका अजीजन ने प्रमुख भाग लिया था। शमशुद्दीन ने उसी रात्रि को नशे में अजीजन को आश्वासन

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर-प्रदेश खण्ड ४, पृ० ५२२–५२४, म्यूटिनी नैरेटिव, उत्तर-पश्चिमी प्रान्त, आगरा : कानपुर जिला कानपुर में लिए गये कथन, क्रमसंख्या १६, पृ० ४०–४१।

दिया कि दो ही तीन दिन में पेशवा का राज्य हो जायेगा और वह अजीजन का घर स्वर्ण मुद्राओं से भर देगा।

हुलास सिंह आत्मज रामसिंह के कथनानुसार मालूम होता है कि दूसरी घुड़सवार पल्टन का साथ सर्वप्रथम प्रथम रेजीमेन्ट ने दिया। इससे यह भी ज्ञात होता है कि दूसरी घुड़सवार पल्टन के सवार नाना साहब के यहाँ हाज़री बजाया करते थे। अंग्रेज इतिहासकार कर्नल मैलेसन व सर जान के ने भी उपर्युक्त वर्णित गुप्त बैठकों का वर्णन किया है।[१]

अधिकांश सूत्रों से यह ज्ञात होता है कि कानपुर में क्रान्ति का आरम्भ ४ जून को रात्रि में २ बजे हुआ। सर्वप्रथम पदाती सेना (रेजीमेन्ट) तथा द्वितीय घुड़सवार पल्टन ने सशस्त्र छावनी से बाहर पग रखा; बंगलों को आग लगा दी; और बारूदखाने व खजाने पर अधिकार जमाया। खजाने में उस समय लगभग १३ लाख रुपये थे। एक आँखों-देखे वृतान्त से ज्ञात होता है कि खजाने पर पहुंचने पर उसके आरक्षक सैनिकों ने उस समय तक खजाने को हाथ नहीं लगाने दिया जब तक कि उनकी स्वयं की सेना वहाँ नहीं आ गयी। इस प्रकार ४ ता० को प्रातः ९ बजे सब लोग खजाने पर पहुँच गये व उसे लूट लिया। इसी बीच में क्रान्तिकारियों ने कचहरी तक पहुँचने से पहले जेल के द्वार खोल दिये और बंदियों को रिहा कर दिया। हाथीखाने पहुँच कर ३६ हाथी अपने साथ लिये और खजाने पहुँचे। यहाँ नाना साहब द्वारा नियुक्त सैनिक आरक्षक उनसे मिल गये और समस्त खजाने को लूटकर, हाथियों व बैलगाड़ियों पर लाद कर क्रान्तिकारी सैनिक कल्याणपुर की ओर कूच कर गये। रात्रि भर में कानपुर नगर में कोलाहल मच गया परन्तु कहीं पर भी स्त्रियों व बच्चों को कोई हानि नहीं पहुँचायी गयी।[२] प्रातःकाल तक बारूदखाने, तोपखाने, हाथीखाने तथा खजाने पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया था। अंग्रेज अपने कोट (गढ़) में अगले संकट की प्रतीक्षा करने लगे। चारों ओर से गढ़ को घेर लिया गया। क्रान्तिकारियों ने मुहम्मदी हरी पताका फहरायी। कल्याणपुर जो कानपुर से ३ या चार मील दूर है वहाँ सबने एकत्र हो कर अगले कदम उठाने के लिए विचार-विमर्श किया।

१. के तथा मेलेसन : "हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी"—पृ० सं० ; २५४

२. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड—४, पृ० ५०१, जहाँगीर खाँ का कथन।

३. "रेड पैम्फलेट"—पृ० १३१–१३२।

इस समय कानपुर में क्रान्ति का नेतृत्व सूबेदार टीका सिंह ने किया। और कल्याणपुर में यह विचार हुआ कि क्रान्तिकारी सेना पहले दिल्ली जाये अथवा कानपुर में मोर्चा ले।

कल्याणपुर में नाना साहब

खजाने तथा तोपखाने के ऊपर पूर्ण अधिकार हो जाने के पश्चात् उत्कट आवेश में क्रान्तिकारी सैनिकों ने दिल्ली की ओर कूच करने के नारे लगाये। परन्तु कानपुर से दिल्ली की दूरी कम नहीं थी। इसलिए सब कल्याणपुर में इस प्रश्न पर विचार करने के लिए रुके। अंग्रेज इतिहासकारों ने अपना यह मत प्रकट किया है कि सैनिक दिल्ली जाने पर तुले हुए थे। परन्तु वास्तविकता ऐसी प्रतीत नहीं होती। यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है यदि हम इस बात को दृष्टि में रखें कि नाना साहव का सम्पर्क पल्टन के सवारों से पहले से ही था। इससे स्थिति का ज्ञान सही होगा। कई इतिहासकारों का यह मत है कि नाना साहब ने अपनी इच्छा के विरुद्ध विद्रोहियों का नेतृत्व स्वीकार किया। वह क्रान्ति के झगड़ों में पड़ना नहीं चाहता था और केवल कुछ मजबूरियों के कारण उनका साथ दिया। अंग्रेज इतिहासकारों ने जो कहा वह तो क्षम्य है परन्तु डा० सुरेन्द्र नाथ सेन तथा डा० मजूमदार जैसे भारतीय इतिहासकारों ने जो इस विषय में अपने मंतव्य प्रदर्शित किये हैं वह उचित नहीं हैं। शोक व दुःख इस बात का है कि अभिलेख कक्षों तथा आरकाईव्ज में प्रपत्र उपलब्ध होते हुए भी इन महानुभावों ने तथ्यों की खोज नहीं की।

इतना तो स्पष्ट है कि नाना साहब, अज़ीमउल्ला व बालासाहब कानपुर से कल्याणपुर सैनिकों के मध्य में पहुँच गये। वहाँ पर उन्होंने अत्यन्त बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता से सैनिकों का पथ-प्रदर्शन किया। उन्होंने पहले कानपुर को पूर्णरूप से अपने अधिकार में कर लेने के लिए आदेश दिये।[1] उनके विचार से दिल्ली जाना ठीक न था। वास्तविक स्थिति को देखते हुए यही उचित भी था। मेरठ में क्रान्ति होने के पश्चात क्रान्तिकारी सेना दिल्ली चली गयी थी परन्तु दिल्ली से पुनः आगरा प्रान्त पर पूर्ण अधिकार न प्राप्त हो सका। स्थान-स्थान पर अंग्रेजों की सैनिक टुक-

१. "नन्हें नवाब की डायरी"—यह कानपुर के एक नागरिक थे। इन्होंने ५ जून से २ जुलाई १८५७ तक का वृत्तान्त अपनी डायरी में लिखा है। "सिलेक्शन्स फ्राम स्टेट पेपर्स-इंडियन म्यूटिनी" १८५७–५८ लखनऊ तथा कानपुर खण्ड ३, परिशिष्ट पृष्ठ ८ व ९।

ड़ियाँ शेष रह गयी थीं। आगरा पर क्रान्तिकारियों का पूर्ण अधिकार नहीं था। ऐसी दशा में कानपुर से दिल्ली तक पहुँचना भी सरल नहीं था। और कानपुर में कर्नल व्हीलर की सेना को गढ़ (बारकों) में सुरक्षित छोड़ना कानपुर के क्रान्तिकारियों के लिए आत्महत्या करना था और कानपुर निवासियों को जिन्होंने उनका साथ दिया था काल के मुंह में डालना था। अस्तु, जो इतिहासकार ऐसा लिखते हैं वह भारतीय पक्षों की बातों को भुलाकर अपना मन्तव्य प्रगट करते हैं। यदि वह स्पष्ट लिख देते कि नाना साहब ने क्रान्तिकारियों को दबा कर उन्हें अंग्रेजों के सुपुर्द नहीं किया यही उनका सबसे बड़ा दोष था तो अधिक ठीक होता।

कल्याणपुर में नाना साहब की कार्यवाहियों के बारे में विभिन्न मन्तव्य प्रसिद्ध हैं। अंग्रेज इतिहासकारों ने नाना साहब की व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा को कानपुर लौटने का मुख्य कारण बताया है। सिप्री में दिये हुए तात्या के कथन (बयान) में उससे कहलवाया गया है कि नाना को सैनिक दिल्ली ले जाना चाहते थे, परन्तु जब उन्होंने मना कर दिया तो वे सैनिक उन्हें कानपुर पकड़ कर ले आये और उसी समय से नाना साहब क्रान्तिकारी सेना के साथ हो गये। परन्तु इन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। प्रथम तो यही संदिग्ध है कि सिप्री में दिया हुआ तात्या का कथन संदिग्ध-तात्या का है अथवा वास्तविक का।[1] दूसरा दृष्टिकोण विदेशी (अंग्रेज) इतिहासकारों का है,[2] जिनके लिए यह समझना कठिन था कि नाना साहब ने दिल्ली जाने से सेना को रोककर कानपुर को अंग्रेजों के ही अधीन क्योंकर नहीं छोड़ दिया। अस्तु, नाना साहब ने सैनिक तथा राजनीतिक दृष्टि से कल्याणपुर में दिल्ली न जाने का जो आदेश दिया वह युक्तिसंगत था।

१. "नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज प्रोसीडिंग्ज"—१८६३–६४ ई० अजमेर मारवाड़ के डिप्टी कमिश्नर का पत्र—दिनांक २३ जून १८६३ ई०—गोपालजी नामक एक दक्खनी ब्राह्मण का कथन—के अनुसार तात्या टोपे को फाँसी नहीं हुई थी वरन् किसी अन्य मनुष्य को हुई थी, तथा तात्या बीकानेर के एक उपवन में निवास करते हुये बताए गये थे।

२. के—'सिप्वाय वार' द्वारा वर्णित नाना साहब तथा बहादुरशाह में मतभेद होने की सम्भावना कल्पित प्रतीत होती है। इसका स्पष्टीकरण नानासाहब के ६ जुलाई १८५७ के घोषणा-पत्र से हो जाता है कि जिसके उपरान्त ८ जुलाई को कानपुर में मुहम्मदी झण्डा फहराया गया।

कानपुर की ओर सेना लौटाने के और भी कई कारण थे। शेफर्ड ने २९ अगस्त १८५७ की अपनी आख्या में स्पष्ट रूप से बताया है कि अवध की तीसरी अश्वारोही बैटरी के सैनिकों ने ५ जून को ही कल्याणपुर पहुँचकर नाना साहब से बताया कि क्रान्तिकारी सेना को कानपुर लौट चलना चाहिए। वहाँ अंग्रेजों पर आक्रमण करने से बहुत से लाभ थे। वहाँ की गंगा की नहर में ४० नावें गोला बारूद तथा गोलियों से ठसाठस भरी पड़ी हुई थीं। वह कानपुर से रुड़की भेजे जाने के लिए तैयार थीं। इतनी बड़ी युद्ध-सामग्री पर अधिकार करना परमावश्यक था। फलतः कल्याणपुर से लौटते ही सैनिकों ने समस्त युद्ध-सामग्री पर अधिकार कर लिया और गोलन्दाज खल्लासी इत्यादि भी उनसे आ मिले।[1]

युद्ध-घोषणा

कल्याणपुर में क्रान्ति की योजना सम्पन्न करने के पश्चात् नाना साहब सेना के साथ कानपुर लौटे। क्रान्ति की बागडोर उन्होंने अपने हाथों में ले ली। खजाना उनके पास था—शस्त्रागार व नावों में लदे सामान पर अधिकार हो गया था—उनके समर्थकों की भी कमी नहीं थी। फलतः उन्होंने अब अपना कूटनीतिपूर्ण गुप्त आवरण छोड़कर स्पष्ट रूप से युद्ध-घोषणा की। कानपुर लौटते ही उन्होंने कर्नल ह्वीलर को पत्र द्वारा सूचना दे दी कि वह उनसे युद्ध करने आ रहे हैं।[2] कितना महान आदर्श था। शत्रु पर अचानक आक्रमण करना नाना साहब के धर्म के विरुद्ध था। जो कुछ भी उन्होंने ५ जून तक किया था वह गुप्त रूप से ही हो सकता था। यदि उससे पहले अंग्रेजों को इस बात का प्रमाण मिल जाता तो या तो नाना साहब को विद्रोह करना पड़ता या अंग्रेज उन्हें भी बन्दी बनाने का प्रयत्न करते। क्रान्ति या युद्ध-संचालन में कूटनीति अथवा गुप्त चालों का विशेष स्थान होता है। इस-लिए नाना साहब ने क्रान्ति की योजनाओं में जो गुप्त रूप से योग दिया वह ठीक ही था। उसमें अंग्रेजों से विश्वासघात की धारणा नहीं थी परन्तु उत्कट देशभक्ति थी। देश के लिए लड़ना, योजना बनाना व संघर्ष का संचालन करना कोई पाप नहीं है।

१. शेफर्ड का क्रान्ति-विस्फोट का विवरण—कानपुरः दिनांक २९ अगस्त १८५७, फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड ४, पृ० ५११–५१७, "इंडियन म्यूटिनी"—राजकीय प्रपत्रों का संकलन, खण्ड २, लखनऊ-कानपुर, पृ० १२४।

२. "म्यूटिनी नैरिटिव्ज"—नार्थ वेस्टर्न प्राविंसेज— कानपुर नैरेटिव, पृष्ठ ५।

और न ही था। फलतः ६ जून १८५७ ई० को बारकों में स्थित अंग्रेजी सेना पर आक्रमण कर दिया गया।[1]

नाना साहब का यह पत्र पाकर ह्वीलर को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसे विश्वास था कि नाना साहब स्पष्ट रूप से क्रान्ति में सम्मिलित नहीं होंगे, और विद्रोही सैनिक अवश्य दिल्ली चले जायेंगे। और वह प्रयाग स्थित अंग्रेजों से सम्पर्क स्थापित कर पायेगा। परन्तु इस पत्र के प्राप्त होते ही वह घबड़ा गया और अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध करने लगा।

युद्ध-संचालन

क्रान्तिकारी सेनानियों ने मोर्चे पर तोप लगा दी। कोट को घेर लिया गया और अंग्रेजों पर गोलाबारी प्रारम्भ कर दी। परन्तु क्योंकि अंग्रेजों ने पर्याप्त मोर्चा-बन्दी कर ली थी, इसलिए सहसा उन्हें पराजित करना सम्भव नहीं था। इसके अतिरिक्त नाना साहब को कानपुर जिले में तथा अन्य स्थानों पर भी क्रान्ति की गतिविधि को देखना था। फलतः उन्होंने अपने सैनिकों को कई दलों में बाँट दिया।

युद्ध-घोषणा के पश्चात् ही १० बजे प्रातः गोलाबारी आरम्भ हो गयी। प्रथम वार से तो अंग्रेज स्त्री व पुरुष घबड़ा गये परन्तु दो दिन में उसके आदी हो गये। जून माह की ग्रीष्म ऋतु में अवस्था और भी दर्दनाक थी। शेष सेनानी कानपुर तथा नगर के बाहरी इलाकों की देखभाल में लग गये। ७ जून को स्थान-स्थान पर बंगलों में आग लगा दी गयी। ८ जून को बहुत से जमींदारों ने जो भूमिच्युत कर दिये गये थे, पुनः अपनी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया और अंग्रेजों के विरोध में खड़े हो गये। ९ जून को गोलाबारी का क्रम जारी रहा। इस बात की अफ़वाह फैल गयी कि जनरल ह्वीलर घायल हो गया तथा उसने नाना साहब को सन्धि सन्देश भेजा है।[2] ९ से १२ जून तक बराबर यह कार्यक्रम चलता रहा।

जनरल ह्वीलर ने बड़े धैर्य से काम लिया। वृद्ध होने के कारण कप्तान मूर ने हाथ बटाया। गढ़ में शस्त्रों व कारतूसों की कमी नहीं थी। प्रत्येक के पास ७

१. मौब्रे थामसन की पुस्तक 'स्टोरी ऑव कानपुर' के अनुसार यह पत्र ७ ता० को प्राप्त हुआ था। परन्तु कर्नल विलियम्स, जिन्होंने शासन की ओर से क्रान्ति की पूर्ण छानबीन की थी, ने यह घटना ६ जून को ही बतलायी है।

२. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तरप्रदेश : खण्ड ४, पृ० ५०२–५१०।

या ८ बन्दूकें थीं। रसद का सामान तो पर्याप्त था ही। सबसे अधिक कठिनाई गर्मी तथा पानी की कमी के कारण थी। माब्रे थामसन ने जो आँखों देखा वृतान्त छोड़ा है उससे स्त्रियों व बच्चों की दुःखभरी कहानी का पता चलता है। गढ़ में घिरे हुए अंग्रेजों में मृतकों की संख्या बढ़ती गयी। इस प्रकार अधिक दिन तक मोर्चा लेना उनके लिए कठिन हो रहा था। कलकत्ता से सहायता प्राप्त करने की आशा बहुत कम थी। लखनऊ में तथा समस्त अवध में क्रान्तिकारी शासन स्थापित हो रहा था। इलाहाबाद में अवश्य हत्याकाण्ड मचा था और नील के अत्याचारों से आतंकित होकर सेनानी भागकर कानपुर में शरण ले रहे थे। युद्ध-विराम गति से चलते देखकर नाना साहब ने अस्थायी शासन-व्यवस्था स्थापित की।

अध्याय ६

शासन-व्यवस्था

शासन-भार सँभालने के तुरन्त बाद ही नाना साहब ने विभिन्न कार्यों के लिए कार्यकर्त्ताओं की नियुक्तियाँ कीं। सेना-संचालन के लिए सूबेदार टीका सिंह को सेनानायक (जनरल) बना दिया गया। सूबेदार दलभंजनसिंह तथा गंगादीन को कर्नल के पद पर सुशोभित किया गया और ज्वाला प्रसाद को ब्रिगेडियर बनाकर प्रधान सेनापति बनाया गया।

सेनानियों-पदाती तथा घुड़सवारों को आज्ञा दी गयी कि क्रान्ति-विस्फोट से पहले समस्त राजकीय कर्मचारियों को अपने अपने पदों पर लौटने के लिए कहें। रामलाल डिप्टी कलक्टर ने नाना साहब की ओर से शासन-व्यवस्था ठीक करने के लिए सब कर्मचारियों को एकत्र करने का प्रयत्न किया। तहसीलदारों को परवाने निष्क्रान्त किये गये। रामलाल ने यथावत कचहरी कानपुर नगर में स्थापित की।[१]

नगर की व्यवस्था ठीक रखने के लिए सर्वप्रथम काज़ी वसीउद्दीन को कोतवाल नियुक्त किया गया। तत्पश्चात् नगर के महाजनों ने, वीड़ी गंगाप्रसाद डेरा-वाला, जुगल किशोर सुनार तथा बद्री पान वाले, तथा शिवप्रसाद खजान्ची ने, हुलास सिंह का नाम कोतवाल के पद के लिए नाना साहब को सुझाया। नाना साहब ने उन्हें बुलाकर, अहमद अली तहसीलदार तथा एक पुलिस अधिकारी द्वारा हुलाससिंह को पद-ग्रहण करने के लिए परवाने तथा निर्देश भेंट किये।[२]

नाना साहब सर्वोच्च न्यायाधीश थे। तत्पश्चात् डिप्टी रामलाल और फौजदारी न्यायालय के लिए बाबा भट्ट। चोरों तथा अभियुक्तों को उनके सम्मुख

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड ४, पृ० ४९९–५००, लखनऊ कलक्टरी म्युटिनी बस्ता: बिलास राय सरिश्तेदार का बयान।

२. वही : ५२५–५२६, हुलास सिंह आत्मज रामसिंह का कथन : (जाति कुर्मी, फर्रुखाबाद जिले के मवडेगा का निवासी)।

पेश किया गया तथा उन्हें पेशवाई विधान एवं नियमों के अनुसार सजाएँ दी गयीं।

इनके अतिरिक्त कानपुर में निम्नलिखित तहसीलदारों की विभिन्न क्षेत्रों में नियुक्ति हुई।

१. शाह अली हुसेन	जाजमऊ
२. महाराज बक्श	सादा सलीमपुर आधुनिक नरवल तहसील
३. लक्ष्मण प्रसाद	अकबरपुर
४. फरीदुस ज़मान	रसूलाबाद
५. अज़ीज़उद्दीन	सिकन्द्रा आधुनिक तहसील भोगनीपुर
६. मुहम्मद नज़र खाँ	बिलहौर
७. अहमदउल्लाह	बिठूर

बिठूर नगर के लिए राव साहब को प्रशासक नियुक्त किया।[1] डिप्टी रामलाल ने कानपुर में नाना साहब की शासन-व्यवस्था को सफल बनाने में सबसे अधिक उत्साह दिखाया। इसी के फलस्वरूप रामलाल को १९ जुलाई १८५७ ई० को एक विशेष आयोग द्वारा अभियोगी ठहराया गया था।[2] यह आयोग जनरल हैवलाक के शिविर में कानपुर विजय के उपरान्त मिला था और उसके द्वारा रामलाल को समस्त जिले में नाना साहब का आधिपत्य स्थापित कराने के लिए दोषी ठहराया गया। डिप्टी राम लाल को अधिकांश 'अमला'-कर्मचारी वर्ग—ने सहयोग दिया। इनमें प्रमुख यह थे :—बिलासराय—सरिश्तेदार; शिव चरन लाल—नायब सरिश्तेदार; ईशरीप्रसाद; भगवान प्रसाद —नायब सरिश्तेदार; लालचन्द कायथ—रोबकार नवीस; गुरसहाय कायथ—रोजनामचा नवीस; मथुरा प्रसाद—नायब रोजनामचा नवीस; हवीखाँ—परवाना नवीस; औलाद अहमद—नायब परवाना नवीस; मुहम्मद हवी—रहीम बक्स—गुलाम रसूल—मुहर्रिर; वकिफायत अली—मुहफिज़-दफ़्तर बाबूराय कायथ—वासलि बाकी नवीस; शिवप्रसाद कायथ—नायब वासलि

१. फारेस्ट : स्टेट पेपर्स : खण्ड ३, पृ० CCCXLI से CCCXLIII परिशिष्ट।

२. कानपुर कलक्टरी फाईल-विभाग XIII-संख्या ६३७--इंग्लिश रिकार्डस्, स्टेट आरकाईव्ज, इलाहाबाद।

बाकी नवीस; भगवानदीन कायथ—जमा-खर्च नवीस; तुलसीराम कायथ—सियाह नवीस; किशोरी सिंह ठाकुर—नन्दकिशोर कायथ—गणेश राय कायथ—गोमती प्रसाद कायथ—नागरी नवीस; लक्ष्मण प्रसाद कायथ—आबकारी दरोगा।[१]

उपर्युक्त सूची से स्पष्ट हो जाता है कि नाना साहब की शासन-व्यवस्था में भूतपूर्व-राजकीय कर्मचारियों ने कितना योग दिया था।

प्रारम्भिक घोषणाएँ

नाना साहब के शासन की बागडोर सँभालते ही घोषणा की गयी कि सब हिन्दू व मुस्लिम मुगल सम्राट के हरे मुहमदी झण्डे के नीचे एकत्र होगें। घोषणा-पत्र द्वारा सूचना दी गयी कि हिन्दू व मुसलमान एक होकर अपने-अपने धर्म की सुरक्षा के लिए लड़ें। अज़ीज़न गणिका के कथनानुसार अज़ीम उल्ला खाँ ने मौलवी सलामत उल्ला के सहयोग से मुहमदी झण्डा कानपुर की नहर के किनारे एक स्थान पर फहराया। उस समय वहाँ एक सहस्र पुरुष एकत्र थे। उस समय वहाँ पर नन्हे नवाब, आज़िम अली खाँ दारोग़ा, आग़ा मीर शाह अली, रियाज़ अली, मौलवी सलामत उल्ला खाँ, बाकर अली, काजी वसीउद्दीन, अहमद अली खाँ वकील, मौलवी अब्दुल रहमान, हुलाससिंह कोतवाल, रहीम खाँ देसी डाक्टर तथा समस्त भूतपूर्व राजकीय कर्मचारी उपस्थित थे।[२] भोलानाथ चन्दर के वर्णन के अनुसार यह झण्डा-अभिवादन कानपुर में नहर के किनारे मैदान में हुआ था।[३] कानपुर में अंग्रेजों का अधिकार हो जाने के पश्चात् भी यह स्थान स्मरणीय रहा।

नाना साहब का प्रभाव

जैसे-जैसे युद्ध की भीषणता बढ़ती गयी नाना साहब का प्रभाव-क्षेत्र भी बढ़ता गया। अवध व रुहेलखण्ड में तो क्रान्तिकारी सुदृढ़ अवस्था में थे ही परन्तु जमुना पार के दक्षिणी प्रदेश में जहाँ बांदा, हमीरपुर, इटावा,जालौन, झाँसी इत्यादि में

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड ४, पृष्ठ ५९५–५९९, लखनऊ कलक्टरी म्यूटिनी बस्ता से।

२. वही : ५९९–६००, म्यूटिनी नैरेटिव, उत्तर-पश्चिमी प्रान्त आगरा, कानपुर जिला—कानपुर में लिये गये कथन संख्या २८, पृ० ६९।

३. भोलानाथ चन्दर : "ट्रैवल्स आव ए हिन्दू।"

क्रान्ति का विस्फोट हो गया था, वहाँ आपस में सहयोग एवं सामञ्जस्य स्थापित करने की आवश्यकता थी। फलस्वरूप नाना साहब ने निश्चय किया कि यह कार्य तात्या टोपे तथा राव साहब सम्पन्न करेंगे। इन्होंने झाँसी की रानी, नवाब बाँदा तथा नवाब फर्रुखाबाद इत्यादि से संपर्क स्थापित किया और उनको सहायता दी और ग्वालियर एवं रीवां आदि देशी राज्यों में क्रान्ति का संचालन किया।

बाँदा व कर्वी के क्रान्तिकारी नेता पूर्णतः नाना साहब के अनुगामी हो गये। बांदा में नवाब अली बहादुर ने १४ जून १८५७ ई० को क्रान्तिकारी शासन स्थापित किया। २७ जून तक जिले के लगभग सभी खजानों पर उनका अधिकार हो गया था और तहसीलदार व अन्य पदाधिकारी स्वतन्त्र शासन के अन्तर्गत आ गये थे। बाँदा जिले में चित्रकूट कर्वी में पेशवा-वंश के नारायण राव तथा माधोराव रहते थे। उन्होंने बाँदा में क्रान्ति की सफलता का समाचार सुनते ही कर्वी में घोषणा करवा दी कि यहाँ पेशवाई राज्य स्थापित हो गया।[1] पेशवा तथा नवाब अली बहादुर ने बांदा जिले को दो भागों में बांट लिया। परन्तु दोनों ही पेशवा नाना साहब की अधीनता स्वीकार करते थे। कर्वी में पेशवा की अतुल धनसम्पत्ति तथा युद्ध-सामग्री क्रान्तिकारी सेना के लिए उपलब्ध थी। वहाँ उन्होंने तोप ढालने तथा अन्य युद्ध-सामग्री बनाने का भी बड़ा अच्छा प्रबन्ध कर रखा था। यमुना के मुख्य-मुख्य घाटों पर दृढ़ चौकियाँ बना दी गयी थीं। नाना साहब तथा कर्वी के नारायण राव में पत्र-व्यवहार चलता रहा। कर्वी से राजापुर तथा मऊ तक क्रान्ति के दूत भेजे गये। दानापुर तथा नागौड़ के सैनिकों को कर्वी की क्रान्तिकारी सेना में भर्ती किया गया। नारायण राव के पकड़े जाने के पश्चात् कर्वी में ४२ तोपें तथा २,००० बन्दूकें मिलीं थीं, इनके अतिरिक्त कानपुर के बारूदखाने से अंग्रेजीपेटियाँ तथा अन्य युद्ध-सामग्री भी प्राप्त हुई।[2] इन सबसे ज्ञात होता है कि कर्वी तथा कानपुर की क्रान्ति में कितना सम्बन्ध था।

बाँदा के नवाब अली बहादुर नाना साहब का कितना आदर-सत्कार करते थे यह उनके निम्नांकित एक पत्र से ही स्पष्ट हो जायेगा :—

१. नारायण राव तथा माधोराव के विरुद्ध शासन द्वारा प्रेषित अभियोग-पत्र—जुलाई १० सन् १८५८ ई० बाँदा फाइल संख्या XVIII—३६ पार्ट II कलेक्ट्रेट रिकार्ड्स, स्टेट आरकाईव्ज' इलाहाबाद।

२. नारायण राव माधोनारायण व ब्रिटिश शासन का मुकदमा—फाइल संख्या XVIII ३६ पार्ट II, १० जुलाई सन् १८५८ ई०।

"सेवा में,

बिठूर के नाना साहब बहादुर
मेरे पूज्य तथा आदरणीय चाचा।

आप सदैव सर्वोच्च बने रहें........

"अपनी शुभकामनाओं तथा चरणस्पर्श के पश्चात् मैं आपको स्मरण दिलाना चाहता हूँ कि कुछ दिन पहले मैंने अपने विश्वासपात्र दूत माधोराव पन्त के हाथ एक पत्र भेजा था, उसमें आपको बाँदा की परिस्थिति से अवगत कराया था, साथ ही साथ आपसे कुछ सैनिक तथा युद्ध-सामग्री भेजने की प्रार्थना की थी।......

"माधोराव के प्रार्थनापत्र से यह शुभ समाचार पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप बुधवार..........को सिंहासनारूढ़ हो गये हैं। ईश्वर आपको चिरायु करे। मैं २१ स्वर्णमुद्रा नज़र के रूप में भेजता हूँ, आशा है स्वीकार करेंगे।

"आपकी हुज़ूर सरकार सदैव बनी रहे।"[१]

नाना साहब व इलाहाबाद के क्रान्तिकारी

कानपुर की सुरक्षा इलाहाबाद तथा वाराणसी की सुरक्षा पर निर्भर थी। नाना साहब तथा क्रान्तिकारियों ने इन दोनों स्थानों के सैनिक महत्व को कम समझा अथवा देर में समझा। फलतः दोनों स्थानों पर क्रान्ति समय पर आरम्भ हो जाने पर भी सफल न हो सकी। वाराणसी तथा इलाहाबाद में जून माह में ही क्रान्तिकारियों की पराजय हुई। क्रान्तिकारी सैनिकों के लिए कानपुर की ओर भागने के अतिरिक्त कोई चारा न था। वाराणसी व इलाहाबाद की घटनाओं का कानपुर पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। नील ने अमानुषिक अत्याचारों का श्रीगणेश वाराणसी से किया। अपने हाथ में बागडोर लेते ही उसने अंग्रेजों के पक्ष के जमींदारों को पदासीन कराया। जो क्रान्तिकारी सेनानी तोपखाने के भय से बैरकों में छिप गये थे उन्हें बाहर निकाला गया और गोलियों से उड़ा दिया गया। जिन्होंने गाँवों में झोपड़ियों में शरण ली थी, उन्हें झोपड़ियों सहित जला दिया गया। गाँव-गाँव में घुसकर गोरों ने प्रतिहिंसा का विकराल रूप दिखाया। गाँवों में आग लगा दी गयी। पेड़ों पर लटका कर फाँसी दी गयी। लड़कों व बच्चों को भी नहीं

१. नवाब अलीबहादुर के व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार के डेस्क में से प्राप्त पत्र की कच्ची प्रति: बाँदा-फाईल संख्या XVIII ३५।

छोड़ा गया। निर्दोष एवं दोषी सभी को एक घाट उतारा गया। इसके विषय में वाराणसी के कमिश्नर ने अपने विवरण में लिखा :—

"हमारे सैनिक अधिकारी हर प्रकार के अपराधियों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर मार रहे हैं : बिना दया-माया के उन्हें फाँसी पर लटका रहे हैं। मानो वे पागल कुत्ते, सियार या तुच्छ कीड़े-मकोड़े हों।"

९ जून १८५७ के पश्चात् समस्त वाराणसी कमिश्नरी में "मार्शल ला"—"सैनिक नियम" लागू कर दिया गया था।

इलाहाबाद में वाराणसी से भी भीषण हत्याकाण्ड मचा। वहाँ मौलवी लियाकतअली के नेतृत्व में ६ जून को स्वतन्त्रता की घोषणा हुई। परन्तु कर्नल नील ने वाराणसी से इलाहाबाद आकर ११ जून को किले पर अधिकार कर लिया। यह घटना सन् १८५७ ई० के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अपना विशेष महत्त्व रखती है।[1] एक ओर तो इस पर अधिकार हो जाने के पश्चात् अंग्रेज सैनिकों ने अमानुषिक अत्याचारों तथा हत्याकाण्डों का श्रीगणेश किया, दूसरी ओर भारतीय सैनिकों में प्रतिशोध तथा घृणा की ऐसी भावना जागृत कर दी कि उनकी ओर से इसके उपरान्त जो कुछ भी हत्याएँ हुईं वह क्षम्य हैं। निःसन्देह कानपुर में सतीचौरा घाट पर तथा १६ जुलाई को जिन अंग्रेजों की बलि दी गयी वह केवल इलाहाबाद के हत्याकाण्ड का प्रत्युत्तर थी।

इलाहाबाद में जो कुछ हुआ उसका वृत्तान्त भोलानाथ चन्दर यात्री द्वारा रचित पुस्तक "ट्रैवेलर आव ए हिन्दू"—से निम्नलिखित शब्दों में मिलता है :—

"......इलाहाबाद में जो सैनिक शासन स्थापित हुआ वह अमानुषिक था, उसकी तुलना पूर्वी अत्याचारों से स्वप्न में भी नहीं हो सकती।........ इसकी किसी को चिन्ता नहीं थी कि लालकुर्त्ती वाले सिपाही किसको मार रहे हैं। निरपराध अथवा अभियुक्त क्रान्तिकारी तथा स्वामिभक्त, भलाई चाहनेवाला अथवा विश्वासघाती, प्रतिशोध की लहर में सब एक ही घाट उतारे गये।....

१. "पार्लियामेन्ट्री पेपर्स"--'म्यूटिनी इन ईस्ट इन्डीज'–१८५७, संलग्न प्रपत्र संख्या १३५; नील का भारतीय शासन, कलकत्ता के सचिव को पत्र, इलाहाबाद : दिनांक-जून १४, १८५७।

२. के० सर जान--'हिस्ट्री आव दि सिप्वाय वार इन इंडिया'—पृ० ६६८ परिशिष्ट : इलाहाबाद में दण्ड : पृ० २००, "ट्रैवेलस् आव ए हिन्दू"—भोलानाथ चन्दर द्वारा रचित पुस्तक से।

"......लगभग ६,००० मनुष्यों की हत्या की गयी; पेड़ों पर उनकी लाशें प्रत्येक टहनी पर दो या तीन लटकी हुई थीं।

....तीन माह तक लगातार, प्रातःकाल से संध्या तक ८ बैलगाड़ियाँ पेड़ों तया स्तम्भों से शव उतार कर ले जाती थीं, तथा गंगा में प्रवाहित कर देती थीं..."

मौलवी लियाकत अली ने स्वयं इस दयनीय अवस्था का वर्णन दिल्ली को भेजे हुए परवाने में किया था। उन्होंने बहादुरशाह को स्पष्टरूप से बता दिया कि अंग्रेजों के अमानुषिक अत्याचार के कारण इलाहाबाद के नागरिक गाँवों की ओर भाग गये हैं, तथा नील ग्रामों को जला रहा है।[1] फलतः इलाहाबाद छोड़कर कानपुर लखनऊ की ओर जाने के अतिरिक्त उनके पास कोई चारा न था। १२ जून से १८ जून तक के अल्प समय में नील ने इलाहाबाद में स्वतन्त्र शासन को हिला दिया। १८ जून को मौलवी लियाकत अली ने अपने ३०० साथियों के साथ इलाहाबाद से कूच कर दिया। १८ जून से नगर तथा आसपास के गाँवों में नील ने निन्दनीय अमानुषिक शासन स्थापित किया।[2] इसकी सूचना फतेहपुर तथा कानपुर में पहुँचने वाले सैनिकों ने वहाँ के निवासियों को दी। विशेषतः छठवें सैनिक दल (रेजीमेन्ट) ने इलाहाबाद से जाकर कानपुर में नील के विरुद्ध प्रचार किया। स्वयं मौलवी लियाकत अली ने कानपुर में शरण ली। फलतः भारतीय क्रान्तकारियों के मन में प्रतिशोध तथा रोष की भावना उत्पन्न होना अवश्यम्भावी था।

२३ जून १८५७

कानपुर में बारकों में घिरे हुए अंग्रेज सैनिकों के विरुद्ध युद्ध जारी था। २३ जून १८५७ ई० को प्लासी के युद्ध की शताब्दी के दिन क्रान्तिकारी सेनानियों ने चौगुने उत्साह से बारकों पर आक्रमण किया। अंग्रेजों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। उनके पास संचित खाद्य सामग्री समाप्त हो रही थी। कहीं से सहायता की कोई आशा न थी। तीन सप्ताह तक वह किसी भाँति टिके रहे, पर अब लड़ते

१. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स—"म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज" १८५७ नील का पत्र दिनांक : इलाहाबाद, जून १९, १८५७ viz,

"I swept and destroyed these villages."

२. नील द्वारा १८ जून १८५७ का लारेन्स के नाम तार : इसमें यह सूचना दी गयी थी कि वह कानपुर की सहायता के लिए ४०० अंग्रेज तथा ३०० सिक्ख भेज रहा है। यह दल ३० जून तक इलाहाबाद से न चल सका था।

रहना असंभव था। प्रयाग से सहायता मिलना कठिन था। अंग्रेजों की संख्या दिन प्रति दिन कम हो रही थी। तोपें भी अनुपयोगी हो गयी थीं। बारूद समाप्त हो गयी थी। भुखमरी का दानव उनके सामने खड़ा था।

परन्तु जनरल ह्वीलर हताश न हुआ। उसने अनेक जासूसों से नाना साहब का भेद लेना चाहा। ब्लेनमैन नामक व्यक्ति ने, जो कुछ साँवला था, दो एक बार हिन्दुस्तानी वेष बनाकर जासूस का यह कार्य किया। ह्वीलर ने उससे इलाहाबाद जाने को कहा, उसने प्रयत्न किया परन्तु असफल रहा। शेफर्ड ने स्वयं नगर में जाकर रसद के सामान के विषय में छानबीन करने का निश्चय किया। अंग्रेजों ने नन्हें नवाब को मिलाने का प्रयत्न किया। २४ जून को ह्वीलर ने लखनऊ को अपना अंतिम संदेश भेजा। उसमें लिखा था:—

"केवल ब्रिटिश उत्साह शेष है—परन्तु वह भी सदैव जीवित नहीं रह सकता।" "अवश्य ही हम लोग पिंजरे में चूहों की भाँति नहीं मर सकते।" ग्रीष्म ऋतु की दुर्दशा तो सहन कर चुके थे। वर्षा ऋतु में दशा और शोचनीय हो जानी थी।

घेरे के २१वें दिन डूबते को तिनके का सहारा दिखायी दिया। माब्रे थामसन के कथनानुसार उनकी ओर से गोलाबारी बन्द होते ही एक औरत आती हुई दिखायी दी। यह श्रीमती ग्रीनवे थीं, और उसके हाथ में एक अंग्रेजी में, बिना हस्ताक्षर वाला पत्र था। उसमें लिखा था:—

"रानी विक्टोरिया के प्रजा-जनों को, जिनका डलहौजी की नीति से कोई संबंध नहीं है और जो अपने शस्त्र रखकर आत्म-समर्पण करने को तैयार हैं, सुरक्षिततापूर्वक प्रयाग पहुँचाया जायेगा।"

ह्वीलर हथियार डालने में अन्यमनस्क था, परन्तु छोटे सेना-नायक मूर ने स्पष्ट बताया कि उनके सम्मुख हथियार डालने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। बच्चों व स्त्रियों के जीवन का सबसे पहले ध्यान होना चाहिए था।

दूसरे ही दिन नाना साहब की ओर से बारकों में अजीमउल्ला खां तथा ज्वालाप्रसाद स्वयं वार्तालाप करने आ पहुँचे। २६ जून को दोनों ओर के प्रतिनिधियों की बैठक हुई। अंग्रेजों की ओर से मूर, ह्विटलिंग और रोशे ने भाग लिया। इस वार्तालाप के फलस्वरूप निम्नलिखित समर्पण की शर्तें निश्चित हुईं:—

(१) सभी अंग्रेज अपने अस्त्र-शस्त्र नाना साहब के हवाले कर देंगे—केवल प्रत्येक मनुष्य अपने साथ एक बन्दूक व ६० गोलियाँ ले जा सकेगा।

(२) स्त्रियों, बच्चों व घायलों के लिए वाहन का प्रबन्ध किया जायेगा।

(३) घाट पर नावों का प्रबन्ध होगा जिनमें खाद्य-सामग्री भी होगी।

(४) नाना साहब व अजीमउल्ला खाँ के अनुसार उन्हें उसी रात्रि को बैरकें

खाली करना था। परन्तु इस पर अंग्रेज तैयार नहीं थे। वह टालमटोल करना चाहते थे। समय प्राप्त करके इलाहाबाद से सहायता की प्रतीक्षा में थे। वह रात्रि को किसी भी दशा में बैरक खाली नहीं करना चाहते थे। वह २७ जून को प्रातःकाल जाना चाहते थे। अज़ीमउल्ला यह प्रस्ताव नाना साहब के पास ले गये परन्तु वह नहीं माने। तब अंग्रेजों ने अंग्रेजी के शिक्षक टाड को भेजा। नाना साहब कुछ समय उससे शिक्षा ले चुके थे। फलस्वरूप उसकी बात मान गये और उन्होंने अंग्रेजों को २७ ता० को प्रातः ही बैरक व नगर खाली करने की आज्ञा दे दी। सायंकाल तक अंग्रेजों ने अपनी तोपें त्याग दीं और तीन आदमियों की एक समिति बनायी, जिसमें टर्नर, दिलाफास, और गोड थे। इनका कर्त्तव्य घाट पर नावें ठीक कराना था। घाट पर ४० नावें प्राप्त हुईं। कुछ में फूस की छत थी अन्य खुली हुई थीं। इन तीन अंग्रेज अफसरों की राय के अनुसार इन नावों में आवश्यक परिवर्तन कर दिया गया। उनके बैठने के लिए जगहें बना दी गयीं। बाँस की छतें शीघ्र खड़ी कर दी गयीं। खाद्य-सामग्री भी उपलब्ध करा दी गयी।

२७ ता० के प्रातः—दूसरे दिन यथावत् १६ हाथी तथा ७०-८० पालकियाँ बैरकों में अंग्रेजों को घाट पहुँचाने के लिए भेजी गयीं। परन्तु सब उन पर समा न सके। जनरल ह्वीलर अपनी पत्नी व लड़की के साथ पैदल ही रवाना हुआ। अन्त में मेजर वाईबार्ट था। मार्ग में क्रान्तिकारी सैनिकों ने अपने भूतपूर्व अधिकारियों से वास्तविक सहानुभूति प्रकट की। ९ बजे तक प्रातःकाल सब अंग्रेज अन्तिम नाव पर चढ़ गये थे। मार्ग में यदि कोई घटना हुई थी तो उसका माब्रे थामसन अथवा दिलाफास को कोई ज्ञान न था।

कुछ विवरणों के अनुसार सैनिक अधिकारी वाईबार्ट को मार्ग में आहत हुआ बताया गया। उसकी डोली को रास्ते में रोककर एक सिपाही ने पूछा—**"आज की परेड कैसी है ? यूनीफार्म तो ठीक है ?"** यह कहकर उसने कर्नल को पालकी के नीचे उतार कर मार डाला और दूसरे सिपाही ने उसकी स्त्री की हत्या कर डाली। परन्तु थामसन माब्रे के विश्वस्त विवरण के आधार पर यह ठीक नहीं उतरता। क्योंकि उसके अनुसार मेजर वाईबार्ट के नाव पर चढ़ते ही 'चलने' का संकेत किया गया।

'चलने' का संकेत किसने किया यह विवादास्पद है। ग्रीष्म ऋतु में गंगा में वैसे ही पानी कम रहता है। दूर तक उथले पानी में पैदल जाकर नावों में चढ़ना पड़ता है। सतीचौरा घाट के हरदेव के मन्दिर के सामने तात्या टोपे और अजीमउल्ला खाँ खड़े बताये गये थे। नदी के दोनों किनारों पर दर्शकों की सबेरे से ही अपार भीड़ लगी थी। वे लोग अपने भूतपूर्व शासकों को नगर त्याग करते देखने को

अत्यन्त उत्सुक थे। माब्रे थामसन के अनुसार घाट पर से संकेत आया, बिगुल बजा और बिगुल बजते ही समस्त नावों के नाविक नावों को छोड़कर नदी में कूद पड़े। **उनके कूदते ही अंग्रेजों ने उनके ऊपर गोली दाग दी।**[1] अधिकांश नाविक बिना आहत हुए बच निकले। अंग्रेजों की ओर से गोली चलते ही घाट पर स्थित सैनिकों ने भी गोलाबारी की। नावों की फूस की छतों में आग लग गयी। इस विषय में माब्रे का यह दोषारोपण कि नाविकों ने उन छतों में जान-बूझकर आग लगाने वाला मसाला रख दिया था। केवल मनगड़न्त है। हां, दूसरी ओर यह सत्य प्रतीत होता है कि कुछ नावों में अंग्रेज सन्धि की शर्तों के विपरीत बारूद इत्यादि जो ले आकर भर लिये थे उससे आग लग गयी।[2] फिचेट के कथनानुसार एक नाव में बचे-खुचे सैनिकों ने शिवराजपुर में क्रान्तिकारी सैनिकों से युद्ध किया था। अतएव नावों में बैठने से पहले वह गुप्त रूप से गोला-बारूद का सामान लेते आये थे। यह सन्धि की शर्तों के विपरीत था। सभी नावों में आग नहीं लगी थी। वाईबार्ट की नाव गहरे पानी में बच निकली थी। हां, नावों की छतें फूस की होने के कारण कड़ी धूप में आग की केवल एक चिनगारी से भी प्रज्ज्वलित हो सकती थीं, फलतः माब्रे का नाविकों पर दोषारोपण मिथ्या है। यदि ऐसी बात थी तो तीन अंग्रेज अधिकारी जो नावों का प्रबन्ध करने आये थे उसका पहले ही दिन निरीक्षण कर सकते थे। धूप से बचने के लिए फूस की छतें उन्हीं के आदेशानुसार लगायी गयी थीं न कि नाविकों ने अपनी ओर से लगायी थीं।

नाविकों का नावों से उतर पड़ना रहस्यमय अवश्य है परन्तु उन पर सहसा गोली दागना इससे भी अधिक रहस्यमय है। हो सकता है कि नाविकों को अंग्रेजों के सशस्त्र होने से कुछ भय लगा हो। अंग्रेज इतिहासकारों का यह दोषारोपण कि नदी के दोनों किनारों पर सेना अंग्रेज़ पुरुषार्थियों का संहार करने के लिए लैस थी, भी मिथ्या है। गंगा के दोनों तरफ बड़ी दूर तक क्रान्तिकारी सेनाओं का जमघट था—भागते हुए अंग्रेज सैनिकों के संहार के लिए नहीं वरन् इलाहाबाद से आने वाली अंग्रेज़ सेनाओं से युद्ध करने के लिए। सन् १८५७ की क्रान्ति से संबंधित बाँदा की फाइलें देखने से ज्ञात होता है कि यमुना तथा गंगा के घाटों की सुरक्षा का क्रान्तिकारियों ने हर स्थान पर विशेष प्रबन्ध किया था। विशेषतः इलाहाबाद पर अंग्रेजों

१. माब्रे थामसन—स्टोरी आव कानपुर : पृ० १६३–६५।

२. 'सिलेक्शन्स फ्राम स्टेट पेपर्स'—लखनऊ तथा कानपुर खण्ड ३, फिचेट बाजेवाले का कथन पृ० ५७।

का अधिकार हो जाने के पश्चात् यमुना पर के घाटों को अरक्षित छोड़ना संभव नहीं था। सन् १८५७ ई० के स्वतन्त्रता-संग्राम में नदियों का महत्त्व पूर्णतया स्पष्ट हो गया था। अंग्रेजों ने अपनी नौ-सेना-कुशलता का तुरन्त प्रयोग किया था। विशेषतः बनारस तथा इलाहाबाद तक उन्होंने स्टीमर द्वारा सैनिक सहायता पहुँचायी। वर्षा ऋतु प्रारम्भ होते ही कलकत्ता से इलाहाबाद तक स्टीमरों का ताँता लग गया था।[1] क्रान्तिकारी सेना के पास नावों का बेड़ा न था और न ही नौ-सेना संगठन की कुशलता। फलतः बनारस, इलाहाबाद के पश्चात् कानपुर की पराजय अवश्यम्भावी थी। भारतीय सेनाओं की यह नाविक शक्ति की लघुता सदैव घातक सिद्ध हुई। अंग्रेज तो जन्म से ही पानी के मगर रहे। उनकी अधिकांश विजय जल पर ही हुई। इसी शक्ति के कारण उन्होंने सहस्रों मील पार भारत आकर अपना साम्राज्य स्थापित किया। तथा १८१५ ई० में नेपोलियन की पराजय के पश्चात् १८५८ ई० तक अंग्रेजों की नाविक सैनिक शक्ति पराकाष्ठा पर थी। इसलिए उनका दूरस्थ देशों में भी लड़ना सरल था।

नाना साहब तथा सतीचौरा घाट पर अंग्रेजों की बलि

अंग्रेज इतिहासकारों ने इस घटना का पूर्ण उत्तरदायित्व नाना साहब पर डाला है। यह लांछन शासन की ओर से कानपुर में कर्नल विलियम द्वारा एकत्र क्रान्ति-सम्बन्धी कथन सामग्री पर आधारित है। परन्तु मॉड ने "मेमोरीज़ आव दी म्यूटिनी" प्रथम खण्ड में इस सामग्री का विश्लेषण करके कई बातों पर सन्देह प्रकट किया है।[2] उनमें से दो महत्त्वपूर्ण हैं :—

(१) नाना साहब स्वयं इस घटना के लिए कहाँ तक उत्तरदायी थे ?

(२) सतीचौरा घाट पर बलि देने की योजना यदि पहले बनायी गयी तो किसने बनायी ?

मॉड ने स्पष्टतः लिखा है कि सब सामग्री देखने पर भी यह कहना कठिन है कि नाना साहब ने इस बलि के लिए आज्ञा दी। उनका परवाना जो नील ने इसके पक्ष में प्रेषित किया है, ता० २६ जून को प्रकाशित हुआ

१. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स—संलग्न प्रपत्र संग्रह संख्या १३, पृष्ठ ३०१—'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज'–१८५७ तथा प्रपत्र सं० १३१ संग्रह १९, पृ० ३३९।

२. माड—'मेमोरीज आव दि म्यूटिनी'—खण्ड १।

था। उसमें इस घाट की घटना के सम्बन्ध में केवल इतना ही महत्त्वपूर्ण है[1]:—

"..........इस तरफ नदी में पानी कम है, दूसरी ओर नदी गहरी है। नावें दूसरे किनारे पर जायेंगी तथा ३ या ४ कोस तक ऐसे ही जायेंगी।

"इन अंग्रेजों के मारने का यहाँ कोई प्रबन्ध नहीं किया जायेगा। क्योंकि यह किनारे पर ही रहेंगे, इसलिए तुम्हें सतर्क रहना चाहिए। नदी के दूसरे तट पर उनका काम तमाम करके तथा विजय प्राप्त करके तुम यहाँ आना।

"सरकार तुम्हारे कार्यों से बहुत प्रसन्न है और यह बहुत प्रशंसनीय भी है; अंग्रेज लोग कहते हैं कि वह इन नावों पर कलकत्ता चले जायँगे।"

"३ ज़ीकाद—१२७३ हि० १० बजे रात्रि को—शुक्रवार।"

२७ जून को सतीचौरा घाट पर नाना साहब के परामर्शदाताओं में सब नेता नहीं थे। तात्या को वहाँ उपस्थित बताया जाता है; परन्तु इसका आधार केवल उनका लिखित कथन, जो सिप्री में दिया था, बताया जाता है।[2] जब वही संदिग्ध है तब आगे कुछ निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।[3] मॉड द्वारा केवल इतना बतलाया जाता है कि ९ बजे बालाराव तथा अजीमउल्ला की आज्ञा से बिगुल बजा तथा नावों पर गोलियों की बौछार की गयी। परन्तु यह स्पष्ट नहीं कि यह गोलियाँ अंग्रेजों द्वारा गोलियाँ चलाये जाने के बाद चलायी गयीं अथवा नहीं। घाट पर एवं दोनों

१. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स—'म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज'—नं० ४ लन्दन संलग्न प्रपत्र संख्या २१ : संग्रह संख्या २। नाना साहब के परवाना नं० ३२ का अनुवाद—१७वीं रेजीमेन्ट के सूबेदार बून्दू सिंह के नाम—'रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया'—१८५७–५९, पृ० सं० २७३।

"About 11 O'clock some sovars and sepoys came back bringing muskets and some double barrelled guns, which they said they had taken from the Europeans at the ghat, and killed all the men. They did not mention the women and children."

२. "रिवोल्ट इन सेन्ट्रल इंडिया"—तात्या का लिखित कथन—सिप्री दिनांक : १० अप्रैल १८५९ ई०।

३. "नार्थ वैस्टर्न प्राविंसेज प्रोसीडिंग्स" : पोलिटकल डिपार्टमेन्ट—जनवरी से जून १८६४ ई० गोपाल जी दक्षिणी ब्राह्मण का कथन।

किनारों पर सहस्रों मनुष्यों की भीड़ थी ही। गंगा का पाट ग्रीष्म ऋतु में कहीं पर भी २०० गज से अधिक नहीं रहता और पानी इतना उथला रहता है कि बहुत से मनुष्य तो गंगा को घुसकर पार कर लेते हैं। यह दशा आजकल है तो सौ वर्ष पूर्व भी ऐसा ही रहा होगा। इसके अतिरिक्त घाट पर इलाहाबाद से आये हुए छठवीं रेजीमेन्ट के रोष व प्रतिहिंसा की भावना से ओतप्रोत सैनिक खड़े थे। फलत: नाविकों के ऊपर बिना कारण गोली चलाये जाने से उनका अंग्रेजों पर प्रत्युत्तर-गोली चलाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं थी।[1]

उपर्युक्त नील द्वारा प्रेषित परवाने की वास्तविकता तथ्यों से प्रमाणित नहीं होती। स्वतन्त्रता संग्राम इतिहास समिति द्वारा कानपुर कलक्टरी रिकार्ड्स अथवा नेशनल आरकाईव्ज से प्राप्त प्रपत्रों में उसकी मूल प्रति का पता नहीं चलता। फिर नील जैसे अमानुषिक अत्याचारी द्वारा ऐसे परवाने में जाली घटाव-बढ़ाव का किया जाना असम्भव नहीं था। यह तो स्पष्ट है कि जिस मनुष्य की आज्ञा से अंग्रेजों के निष्कासन के समय इतना शानदार व उदार प्रबन्ध हो वह केवल बलि देने के लिए ऐसी आज्ञा दे, और वह भी उस समय जब कि वह (नाना साहब) अपनी विजय का उत्सव मनाने को तैयार हो। दूसरा स्पष्ट कारण इस पर अविश्वास करने का यह है कि नाना साहब यदि चाहते तो अंग्रेजों की शर्तें अस्वीकार करके उन्हें बैरकों में ही वीरगति को प्राप्त करा सकते थे। परन्तु अंग्रेजों के मन शुद्ध नहीं थे। उन्हें नाना साहब पर अन्त तक अविश्वास रहा, इसीलिए वह रात्रि को घाट पर जाने को तैयार नहीं हुए। इसके अतिरिक्त नावों का प्रबन्ध उन्हीं की देख-रेख में हुआ था। अंग्रेज अपनी पराजय पर खिसियाये हुए तो थे ही। नाविकों पर गोली चलाकर उन्होंने अपनी मृत्यु का आवाहन किया। तत्काल प्रत्युत्तर-गोली चलाने के लिए रोष व प्रतिहिंसा से भरे सैनिकों को नाना साहब के परवाने की न तो आवश्यकता थी और न ही उनकी आज्ञा की। क्रान्तिकारी सेनानियों विशेषत: सेना के नेताओं पर नाना का नियन्त्रण मामूली था जैसा कि मॉड इत्यादि ने भी लिखा है।[2]

१. मॉड : "मेमोरीज आव दि म्यूटिनी"—पृ० ११३।
२. मॉड—"मेमोरीज आव दि म्यूटिनी"—पृ० ११३।

"The Nana and his Court possessed little or no authority over the rebel troops, who, it is evident, did just as, they pleased' manned the attacking batteries and joined in the assault or not as they deemed fit."

यदि परवाना सही भी मान लिया जाये तो भी उसमें केवल इतना लिखा है कि घाट पर अंग्रेजों को नहीं मारना था। दूसरे किनारे पर यदि वह जाते तब कोई कार्य-वाही होती। उन्हें तो सीधे इलाहाबाद जाना था, तब सूबेदार बुन्दूसिंह को उन्हें सजा देने का मौका ही नहीं मिलता। इसलिए हर पहलू से नाना पर नील का दोषा-रोपण न सिर्फ मिथ्या है वरन् दुष्टतापूर्ण है।

उपर्युक्त परवाना नाना साहब की आज्ञापत्र पुस्तक (Native Order Book) में पाया गया बताया जाता है।[1] इस पुस्तक की मूल प्रति का कहीं पता नहीं। इसके अनुसार यह १७वीं रेजीमेन्ट के सरदार सूबेदार बुन्दूसिंह को २६ ता० की रात्रि को ही मिल जाना चाहिए था। उन्हें किस दिन या किस समय मिला यह कुछ पता नहीं। २७ ता० को सबेरे ९ बजे तो यह दुर्घटना हो ही गयी थी, उस समय नानासाहब को इसका पता भी नहीं था। जब उन्हें इस दुर्घटना का ज्ञान हुआ तो वह विकल हो उठे। औरतों तथा बच्चों की हत्या को सुनकर उन्हें बहुत दु:ख हुआ और उन्होंने तुरन्त गोलाबारी रोकने की आज्ञा दी। अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों को बन्दी बनाने का आदेश दिया। फलत: २८६ व्यक्तियों में से १२५ अंग्रेज महिलाएं और बच्चे बन्दी बनाये गये।

केवल एक नाव बच निकली थी। वह २८ जून को नजफगढ़ पहुँची वहाँ किनारे पर तैनात सैनिकों ने गोलियाँ चलायीं। इस नाव से उन्हें बन्दूकें व गोलिय मिलीं। अंग्रेजों के एक दल ने बक्सर (उन्नाव) में शरण ली। वहाँ वह एक मन्दिर में छिप गये थे, परन्तु जमींदार रामबख्शसिंह के आदमियों ने उन्हें ठिकाने लगा दिया। रास्ते में तीन अंग्रेज मारे गये। चार अंग्रेज गंगा में कूद पड़े। उन्हें अवध के ताल्लुकेदार राजा दिग्विजयसिंह ने शरण दी। वह पुन: अंग्रेजों से जा मिले जिस नाव से थामसन और उनके साथी किनारे उतरे थे, वह पकड़ ली गयी और ८० अंग्रेज स्त्री-पुरुष बन्दी बना लिये गए। यह सब बीबीघर में बन्द कर दिये थे। ३० जून को बन्दी किये गये पुरुषों को फांसी दे दी गयी थी।

नाना साहब का राज्याभिषेक

अंग्रेजों के कानपुर से निष्कासन के पश्चात् नाना साहब ने एक दरबार की आयोजना की। फलत: २८ जून को सायं ५ बजे समस्त सेना ने बड़े उत्साह और उमंग से सैनिक कवायद की। इसमें ६ पदाती सेना दलों तथा घुड़सवारों

१. गब्बिन्स : "दि म्यूटिनीज इन अवध"—पृ० ३०६ के अनुसार नील ने यह परवाना नाना साहब की आज्ञा-पत्र पुस्तक से प्राप्त किया था।

ने भाग लिया। आरम्भ में दिल्ली के मुगल सम्राट के सम्मान में १०१ तोपों की सलामी दी। स्वयं नाना साहब पेशवा के सम्मान में २१ तोपों की सलामी हुई। उनके भाई और भतीजे को भी ७ तोपों की सलामी दी गयी। तात्या टोपे और सेनापति टीकासिंह का ११ तोपों द्वारा स्वागत किया गया। सैनिकों को शुभ अवसर पर १ लाख रुपये का पारितोषिक दिया गया और दो माह का वेतन और देने की घोषणा की गयी। इसके उपरान्त नाना साहब बिठूर गये। वहाँ १ जुलाई को वैदिक रीति से उनका पेशवा गद्दी पर राज्याभिषेक हुआ। उनको पेशवाई मुकुट पहनाया गया। ६ दिन तक बिठूर में बराबर उत्सव मनाया जाता रहा।

आज्ञाएँ तथा घोषणा-पत्र

८वीं जीकाद अथवा दिनांक १ जुलाई १८५७ ई० से १३ जीकाद-दिनांक ६ जुलाई तक नाना साहब ने विभिन्न आज्ञाएँ दीं तथा घोषणाएँ कीं। उनमें से प्रमुख यह थीं :—

(१) कोतवाल हुलाससिंह को

"परमात्मा की अनुकम्पा से एवं सम्राट (मुगल) के सौभाग्य से, पूना और पन्ना के सारे अंग्रेजों का हनन करके उन्हें नरक भेज दिया गया है और पांच सहस्र अंग्रेज भी जो दिल्ली में थे सम्राट की सेनाओं द्वारा तलवार के घाट उतारे जा चुके हैं। सरकार अब चारों ओर विजयी हो गयी है। अतः आपको आज्ञा दी जाती है कि इन शुभ समाचारों को समस्त नगरों और ग्रामों में डुग्गी पिटवा कर घोषित करा दें, जिसमें सब सुनकर प्रसन्नता मनायें। भय के समस्त कारण अब दूर हो गये हैं।"

दिनांक—८वीं जीक़ाद—तदनुसार १ली जुलाई १८५७ ई०

× × ×

(२) कोतवाल हुलाससिंह को

"चूंकि नगर के इक्के-दुक्के लोग फिरंगी सेनाओं का इलाहाबाद से कूच करने का समाचार सुन करके अपने घर छोड़कर ग्रामों में शरण ले रहे हैं, एतद द्वारा आज्ञा दी जाती है कि आप सम्पूर्ण नगर में घोषणा करा दीजिए कि अंग्रेजों को परास्त करने के लिए पदाति सेना, अश्वारोही और तोपखाना कूच कर चुके हैं। जहाँ भी वे मिलें, फतेहपुर में, इलाहाबाद में अथवा और जहाँ भी वे हों, प्रतिशोध लेने के हेतु सेना उनको पूर्णरूप से दण्डित करे। सब लोग बिना किसी भय के अपने-अपने घरों में रहें और सदैव की भाँति अपने उद्योग-धंधों में लगे रहें।"

दिनांक १२ वीं ज़ीक़ाद तदनुसार—१७वीं जुलाई १८५७ ई० ।

× × ×

(३) सैनिकों के नाम प्रथम घोषणापत्र

नाना साहब ने ब्रिगेडियर ज्वालाप्रसाद को क्रान्तिकारी सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया। १३वीं ज़ीक़ाद १२७३ हि० –तदनुसार ६ जुलाई १८५७ ई० को नाना साहब ने सैनिकों के निमित्त निम्नलिखित घोषणा-पत्र प्रकाशित किया[1] :–

"प्रत्येक रेजीमेन्ट में, चाहे पदाति हो अथवा अश्वारोही, एक "कर्नल कमांडिग" तथा "मेजर द्वितीय कमाण्ड" और "एडेजूटेन्ट" होंगे। कमांडेंट का कर्त्तव्य होगा कि वह सैनिकों को हुजूर सरकार की आज्ञाओं से अवगत करायें तथा युद्ध की तैयारी करायें जब सरकार की ओर से परवाना प्राप्त हो। द्वितीय कमाण्ड उनसे नीचे होगा तथा उनका परामर्श-दाता व नायकत्व में साथी होगा। ऐडजूटेन्ट रेजीमेन्ट की कवायद तथा परेड का उत्तरदायी होगा तथा अन्य और ऐसे कार्य करेगा जो ऐडजूटेंट करते आये हों। वह क्वार्टर मास्टर का भी कार्य करेगा तथा बारूदखाने की देख-रेख करेगा जिससे उस पर आँच न आ सके। प्रत्येक सैनिक के पास जो सामग्री होगी उसका वह हिसाब रखेगा। यदि हिसाब में त्रुटि होगी तो उसे दण्ड दिया जायेगा। एक कम्पनी के सूबेदार को ५०) का कम्पनी भत्ता मिलेगा ३०) कमाण्ड के लिए तथा २०) मोची लोहार इत्यादि ठेके पर रखने के लिए एक मुंशी होगा जो दस सूबेदार जिन्हें, भत्ता मिलेगा, मिलकर अपने लिए नियुक्त करेंगे। माह पूरा होने पर चिट्ठा 'उपस्थितिपत्र' इत्यादि हस्ताक्षर करके ऐडजूटेन्ट को देंगे। ऐडजूटेन्ट के कार्यालय में मीर मुंशी तथा दो मुहर्रिर उन चिट्ठों की जाँच करेंगे तथा उसके पश्चात "कमिसेरियट अधिकारी" के पास भेज देंगे। पूर्ण रूप से तैयार होने पर वे सरकार के पास आयेंगे जो वेतन बाँटेंगे।

"सैनिक मुकदमों में मीर मुंशी कार्यवाही लिखेगा तथा न्यायालय का फैसला भी तथा सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर होने के पश्चात् वह "कमांडेंट" के पास भेजेंगे। वह उनको ब्रिगेडियर के पास प्रेषित करेगा जो कि उसको सरकार के सम्मुख

(१) पार्लियामेन्ट्री पेपर्स : नं० ४–"म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज"-१८५७ : संलग्न प्रपत्र संख्या २३, संग्रह संख्या २।

करना था, एक अंतरंग सभा हुई, जिसमें यह निश्चय हुआ कि क्योंकि यह धर्म का मामला है, इसलिए ५०,००० हिन्दुस्तानियों का संहार करने के लिए ७,००० या ८,००० यूरोपियनों की आवश्यकता होगी। तत्पश्चात् समस्त हिन्दुस्तान ईसाई धर्म ग्रहण कर लेगा।[१]

"इस आशय का एक प्रार्थना-पत्र रानी विक्टोरिया के पास भेजा गया, तथा अंतरंग सभा का निश्चय स्वीकार किया गया। द्वितीय अंतरंग सभा हुई जिसमें अंग्रेज व्यापारी भी आमन्त्रित हुए और यह निश्चय हुआ कि वह सब इस महान् कार्य में सहायता करें। यह भी निश्चय हुआ कि केवल उतने ही यूरोपियन सैनिक रखे जायँ, जितने हिन्दुस्तानी सिपाही है, जिससे कि बड़े विप्लव के समय यूरोपियन हिन्दुस्तानियों से पिट न जायँ। इस प्रार्थना-पत्र पर इंगलैण्ड में विचार-विनिमय हुआ। ३५,००० यूरोपियन सिपाही शीघ्रता से जहाजों में लादे गये तथा भारत रवाना किये गये। कलकत्ता में उनके चलने का गुप्त समाचार मालूम हो गया और कलकत्ता के महानुभावों ने नयी कारतूस के वितरण की आज्ञा दी। उनका उद्देश्य सेना को ईसाई बनाना था क्योंकि इसके हो जाने के उपरान्त जनता द्वारा ईसाई धर्म स्वीकार कराने में कोई देर न लगेगी। कारतूसों में सुअर तथा गाय की चर्बी प्रयोग में लायी गयी थी, यह तथ्य कारतूस बनाने के कारखाने में कार्य करने वाले बंगालियों द्वारा मालूम हुआ। उनमें से एक को मृत्युदण्ड दिया गया तथा अन्य को बन्दीगृह में डाल दिया गया।

"यहाँ यह अपनी योजनाएँ बना रहे थे। लन्दन में स्थित सुल्तान कुस्तुनतुनिया के दूत ने सुल्तान को यह सूचना भेजी कि ३५,००० अंग्रेज सैनिक भारत भेजे जा रहे हैं, भारतीयों को ईसाई बनाने के लिए। सुल्तान ने मिस्र के पाशा को एक फर्मान भेजा जिसमें उन पर रानी विक्टोरिया के साथ षड्यन्त्र करने का लाञ्छन लगाया गया; यह समझौते का समय न था। अपने दूत से उन्हें सूचना मिली कि ३५,००० सैनिक भारत को भेज दिये गये हैं—जिनका ध्येय वहाँ की प्रजा को ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य करना था। इसको अभी भी रोकने का समय था। यदि वह इस समय भी अपना कर्त्तव्य भूल जायेगा तो ईश्वर के सम्मुख क्या मुंह दिखायेगा। ऐसा दिन उसके लिए भी शीघ्र आयेगा क्योंकि यदि अंग्रेज भारत को ईसाई बनाने में सफल हुए, तो वही चीज उसके देश में भी करेंगे। फर्मान प्राप्त

१. बंगाल हरकारू—दिनांक, मार्च १६, १८५७ ई०—फ्रेंड आव इंडिया, मार्च–१९, १८५७, पृ० २७१।

होते ही मिस्र के शाह ने अंग्रेजों की सेना के आने से पहले ही एलेक्ज़ेन्ड्रिया में अपनी सेना एकत्र कर ली क्योंकि वही भारत आने के मार्ग में था। अंग्रेजी सेना आने पर मिस्र के पाशा की सेना ने उन पर तोपें दाग दीं। उनके कई जहाजों को नष्ट करके डुबा दिया। एक भी अंग्रेज न बचा।

"कलकत्ता में अंग्रेज कारतूस वितरण की आज्ञा के पश्चात् क्रान्ति के विस्फोट के उपरान्त लन्दन से आनेवाली सेना की प्रतीक्षा में थे। परन्तु ईश्वर ने उनकी योजनाओं को समाप्त कर दिया। जैसे ही लन्दन की सेना के नष्ट होने का समाचार उन्हें मिला, गवर्नर-जनरल ने दुखित होकर अपना सिर धुना।

"रात्रि में उसे जीवन तथा सम्पत्ति पर अधिकार था।
प्रातः उसके शरीर पर न तो शीश ही रहा और न शीश पर मुकुट;
आकाश की एक ही उलटफेर से,
न तो नादिर ही रहा और न ही नादिरी॥[१]"

यह घोषणा-पत्र नाना साहब पेशवा बहादुर की आज्ञा से प्रकाशित हुआ है।
दिनांक १३वीं जीकाद १२७३ ई०—अर्थात् ६ जुलाई १८५७ ई०।

× × ×

१. नादिरशाह की आतंकवादी नीति।

अध्याय ७

सुरक्षा संघर्ष

इलाहाबाद की पराजय के पश्चात् मौलवी लियाकत अली २४ जून को कानपुर पहुँचे।[1] उन्होंने कानपुर पहुँचकर इलाहाबाद के हत्याकाण्ड के वृत्तान्त नाना साहब को सुनाये तथा फतेहपुर में अंग्रेजों की बढ़ती हुई सेना से युद्ध कर उसे आगे बढ़ने से रोकने की सलाह दी। यह वही समय था जब नाना साहब बैरकों में घिरे हुए अंग्रेजों को कानपुर खाली करने के लिए बाध्य कर रहे थे। उसी मध्य में २७ ता० को सतीचौरा घाट की दुर्घटना हुई और फलस्वरूप १२५ स्त्री व बच्चे बीबी घर में बन्दी बना दिये गये। शेष को फाँसी दे दी गयी या घाट पर गोला-बारी में मर गये। जो कुछ बचकर भाग सके वह इलाहाबाद से बढ़ते हुए अंग्रेज सैनिकों से मिल गये। दोनों ओर से फतेहपुर में संघर्ष की तैयारी होने लगी। इसी युद्ध के परिणाम पर कानपुर की सुरक्षा व नाना साहब की स्वतन्त्र सत्ता निर्भर थी।

फतेहपुर भी ९ जून १८५७ ई० से स्वतन्त्र हो गया था। वहाँ पर भी नाना साहब पेशवा को राजा घोषित किया गया। भूतपूर्व डिप्टी मजिस्ट्रेट हिकमत उल्ला खाँ ने क्रान्ति का नायकत्व ग्रहण किया। शेरेर मजिस्ट्रेट भागकर इलाहाबाद पहुँचा। टकर वहीं फतेहपुर में मार डाला गया। तत्पश्चात् नाना साहब के आदेशानुसार स्वतन्त्र शासन का संगठन होता रहा। नाना साहब ने सैनिकों को आज्ञा दी कि वे इलाहाबाद से बढ़ते हुए अंग्रेजों को नष्ट कर डालें। इलाहाबाद पर विजय पायें तथा कलकत्ता तक धावा बोलें।[2] नाना साहब ने ३,५०० सैनिकों को तुरन्त मेजर रेनाड की सैनिक टुकड़ी से लड़ने के लिए भेजा। ११ जुलाई को क्रान्तिकारी सैनिकों ने अंग्रेजों

१. "सेलेक्शन्स फ्राम स्टेट पेपर्स" : जान फिचेट—छठवीं रेजीमेन्ट के बाजा बजानेवाले का कथन—पृ० ५६—परिशिष्ट—लखनऊ तथा कानपुर, खण्ड ३ : फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश, खण्ड ४—५६३।

२. मार्शमैन : "मेम्वायर्स आव सर हैनरी हैवलाक"—पृ० २९१।

की सेना की एक टुकड़ी को खागा से कुछ दूरी पर पराजित किया। तत्पश्चात् समस्त क्रान्तिकारी दल फतेहपुर में एकत्र हुआ।

प्रयाग की विजय के पश्चात् नील की दृष्टि कानपुर की ओर गयी। फतेहपुर की घटनाओं का समाचार प्रयाग पहुँच चुका था। नील ने कानपुर बढ़ने से पहले इलाहाबाद की जनता को आतंकित करना कहीं अधिक आवश्यक समझा। यद्यपि कानपुर से उसे ह्वीलर के भेजे गये जासूसों द्वारा गुप्त सन्देश मिल रहे थे परन्तु नील २० जून से पहले इलाहाबाद से किसी भी दशा में चलने में असमर्थ था, २३ जून को तो उसके पास गाड़ियाँ अथवा रसद का सामान भी मिलना कठिन था, यद्यपि ४०० यूरोपियन सिपाही, ३०० सिक्ख कूच करने को तैयार थे। ५ दिन पश्चात् भी यही दशा रही और मेजर रेनाड ३० जून तक कूच करने के प्रयत्न में था। उसी दिन हैवलाक ने इलाहाबाद पहुँचकर सेना का प्रधान नायकत्व ग्रहण किया। ह्वीलर के हथियार डालने का समाचार लखनऊ के एक सन्देश से इलाहाबाद में प्राप्त हुआ। उसके नायकत्व ग्रहण करने से पहले ही रेनाड इलाहाबाद से कानपुर की ओर रवाना हो गया था। उसे नील ने आज्ञा दी कि रास्ते में जहाँ कहीं विद्रोहियों ने आश्रय लिया हो, उस गाँव पर आक्रमण करके उसे जला दिया जाये, सिपाहियों को पकड़ते ही फांसी पर लटका दिया जाये। रेनाड ने इस आज्ञा का पालन अत्यन्त क्रूरता से किया, यहाँ तक कि हैवलाक को आज्ञा देनी पड़ी कि वह अपने आगे-पीछे व दायें-बायें सतर्क दृष्टि रखे। हैवलाक शीघ्र ही उसकी सहायता करेगा। और गाँव न जलाये जायें, जब तक कि वे पूर्णतया विद्रोहियों से भरे हुए न हों। जबकि रेनाड १२ जुलाई को फतेहपुर के संघर्ष में भाग लेने को तैयार था हैवलाक सहायतार्थ सैनिकों की टुकड़ी लेकर पहुँच गया। रेनाड को भी आश्चर्य हुआ। जैसा कि डा० सेन ने भी स्वीकार किया है यदि यह सहायता न पहुँच पाती तो निश्चय ही नाना साहब की सेना अंग्रेजों की सेना को विनष्ट कर देती। हैवलाक द्वारा सहायता पहुँचाने के कारण अंग्रेजी सेना में १,४०० गोरे, ६०० सिख और हिन्दुस्तानी सैनिक तथा ८ तोपें थीं। १२ जुलाई को फतेहपुर में युद्ध हुआ। क्रान्तिकारी सेना को पीछे हटना पड़ा तथा फतेहपुर नगर ३२ दिन की स्वतन्त्रता के पश्चात् पुनः अंग्रेजों के अधीन हो गया। हैवलाक ने १०० सिक्खों को इलाहाबाद वापस कर दिया क्योंकि क्रान्तिकारी सेना अवध की ओर से वहाँ आक्रमण करने की योजना बना रही थी।[1]

१. मार्शमैन : "मेम्वायर्स आब सर हेनरी हैवलाक"—पृ० २९७–२९८।

इलाहाबाद नगर से फैलकर समस्त जिले में स्वतन्त्रता संग्राम की अग्नि प्रज्ज्वलित हो गयी थी। फाफामऊ क्रान्तिकारियों का मुख्यावास बन गया था।

आँग का युद्ध[1]

१५ जुलाई को हैवलाक की सेना में तथा नाना साहब की सेना में भीषण युद्ध हुआ। आँग गाँव को नाना साहब की सेना ने अपना सुदृढ़ गढ़ बनाया। उनके पास दो तोपें थीं। उन्होंने सड़क के किनारे आगे बढ़कर अंग्रेजों पर गोलाबारी की। वह पदाति सैनिकों के यथाविधि कवायद करते हुए तोपों और बन्दूकचियों की सहायतार्थ बढ़े। परन्तु कप्तान मॉड की साहसिक टोली ने बड़ी वीरता दिखायी और दूसरी टुकड़ी ने सहसा पुल पर बढ़कर क्रान्तिकारियों की दोनों तोपें छीन लीं। अंग्रेजों के २५ सैनिक खेत आये परन्तु इस आक्रमण से क्रान्तिकारियों के पैर उखड़ गये। दो घण्टे के घमासान युद्ध के उपरान्त अंग्रेजों की जीत हुई। क्रान्तिकारियों को पीछे हटना व भागना पड़ा।

पाण्डु नदी की लड़ाई

आँग की लड़ाई के समय से ही हैवलाक की दृष्टि पाण्डु नदी के पुल पर थी जो कुछ मील आगे कानपुर की ओर था। क्रान्तिकारी सैनिक उस पुल को उड़ाने का प्रयत्न ही कर रहे थे कि अंग्रेज दो घण्टे बाद ही उसके पास तक पहुँच गये। वहाँ उनका २४-पाउन्डर तोप के गोले से स्वागत हुआ। इतने में पुल उड़ाने वाला बारूद का गोला फटा परन्तु उससे केवल किनारे की दीवार गिर कर रह गयी। पुल बच गया। नदीका पाट उस जगह ६० या ७० गज ही था परन्तु उसके पश्चात् कानपुर तक अंग्रेज सैनिकों के लिए मैदान साफ था। क्रान्तिकारियों ने पुल के उस पार अपनी तोपें लगा रखी थीं और पुल उड़ाने को प्रयत्नशील थे। मेजर स्टीफैन्सन ने गोलियों की परवाह न करके पुल पर धावा बोल दिया। फलतः अंग्रेजोंकी जीत हुई और नानासाहब की सेना को पुनः पीछे हटना पड़ा। यहाँ पर क्रान्तिकारियों ने फतेहपुर से कहीं

१. "पार्लियामेन्ट्री पेपर्स" : (नं० ४)—"दि म्युटिनीज इन दी ईस्ट इंडीज"–१८५७। संलग्न प्रपत्र–३५ नं० २, पृ० ६८–६९ तथा पोलोक, जे० सी० "वे टू ग्लोरी—लाइफ आव हैवलाक"—लन्दन १९५७ अध्याय ११, पृ० १७३–१७४। एवं माण्टगोमरी मार्टिन : "दी इंडियन एम्पायर," खण्ड २. पृ० ३७६।

अधिक सटकर व निकट से अंग्रेजों का मुकाबला किया था परन्तु भाग्य ने उनका साथ नहीं दिया।

नाना साहब रणस्थल में[1]

जैसे ही नाना साहब को अपने सैनिकों के पीछे हटने का समाचार मिला वह स्वयं रणभूमि में आ डटे—उनके साथ २४ तोपें थीं, २ घुड़सवारों की रेजीमेन्ट और ४ पदाति सेना। अन्य वृत्तान्तों के अनुसार नाना साहब के पास केवल १४ तोपें व ७ पदाति सेना की टुकड़ियाँ थीं[2]। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ परन्तु विजय किसी को भी प्राप्त न हो पायी। नाना साहब ने अहरिया ग्राम से कानपुर की ओर हटना ठीक समझा। इसी में सुरक्षा का भरोसा था।[3]

बीबीघर में अंग्रेजों की बलि

१५ जुलाई को नाना साहब अंग्रेजों की बढ़ती हुई सेना को रोकने में संलग्न थे। हैवलाक को, अंग्रेज बन्दियों को किसी भी भाँति बचाने का आदेश दिया गया। दूसरी ओर नाना साहब के नायकों को यह भेद ज्ञात हो गया कि बन्दी स्त्रियाँ कानपुर के रहस्य बंगाली भेदियों द्वारा अंग्रेजों को लिखकर भेज रहीं हैं। फलस्वरूप उन्होंने कानपुर में बंगाली भेदियों को दण्ड देने का आदेश दिया।[4] बीबीघर में इस समय इलाहाबाद से आये हुए छठवीं रेजीमेन्ट के सैनिक पहरे पर थे।[5]

१. फारेस्ट : "स्टेट पेपर्स" : खण्ड २, पृ० ८२।

२. पोलक, जे० सी०—"वे टू ग्लोरी—लाईफ आव हैवलाक," लन्दन १९५७, अध्याय ११, पृ० १६५-१७२।

३. ग्रूम : "विद हैवलाक फ्राम इलाहाबाद टू लखनऊ," पृ० ३२—१५ जुलाई को दो बार लड़ाई हुई। क्रान्तिकारियों ने बड़ी तोपों का प्रयोग किया।

४. हिन्दू पैट्रियट—समाचार-पत्र कलकत्ता: दिनांक अगस्त २७, १८५७, पृ० २७९,—"The Baboos were suspected of writing letters to the English gentlemen and giving them information, several spies having been apprehended with letters in their possession. The spies were all beheaded on the 14th July."

५. इलाहाबाद की छठवीं रेजीमेन्ट के लगभग २०० अश्वारोही जमादार यूसुफ खाँ के नायकत्व में मौलवी लियाकत अली के साथ २४ जून तक कानपुर आ पहुँचे थे।

वहाँ पर अंग्रेजों की बलि किस प्रकार हुई निम्नलिखित वर्णन से स्पष्ट हो जायगा :—

"विलियम्स ने एक बात निश्चयपूर्वक कही है—जिसको जानकर अधिकतर अंग्रेजों को आश्चर्य होगा कि १५ तथा १६ जुलाई को स्त्रियों तथा बालकों की बलि को सहस्रों व्यक्तियों ने देखा था।"[१] इससे कालकोठरी में बन्द करके अंधेरे में हत्या करने की कथाएँ असत्य हो जाती हैं। यह बीबीघर कानपुर की नहर के पास था। इसमें बीस फुट लम्बे और दस फुट चौड़े दो कमरे थे। सामने एक छोटा सा आँगन था। इसकी लंबाई ६ गज थी। सतीचौरा घाट से बचे हुए अंग्रेज स्त्री-पुरुष-बच्चे यहीं लाकर रक्खे गये थे। इसी में बिठूर के पास फतेहगढ़ से भागकर आये हुए अंग्रेजों को भी बन्द कर दिया गया था। जैसे-जैसे अंग्रेजों की सेना कानपुर की ओर बढ़ने लगी, और उनके मार्ग में किये गये अत्याचारों की करुणाजनक कहानी कानपुर पहुँचने लगी, वहाँ के निवासियों तथा सैनिकों के मन में रोष एवं प्रतिशोध की भावना जागृत हो उठी। हैवलाक की विजयों ने उन्हें और आतंकित कर दिया। कानपुर में सब को यह प्रतीत होने लगा कि अंग्रेज स्त्रियों व बच्चों को बन्दी बनाना त्रुटि थी। यदि सतीचौरा घाट से उन्हें इलाहाबाद जाने दिया जाता तो कहीं अच्छा होता। इसी प्रकार लखनऊ रेजीडेन्सी से भी अंग्रेजों का निष्कासन शीघ्र कराया जा सकता तो कानपुर एवं लखनऊ पर अंग्रेजों की प्रतिक्रिया कभी इतनी आवेशपूर्ण तथा भयानक नहीं होती। नाना साहब की हार्दिक इच्छा थी कि अंग्रेजों का कानपुर से पूर्णतः निष्कासन हो जाये। वह उनको एक दिन भी ठहरने की आज्ञा देने को तैयार नहीं थे। उन्होंने इसलिए उनकी बिदाई के लिए सब प्रबन्ध कर दिया था। परन्तु जैसा कि मॉड ने अपने संस्मरणों में लेखबद्ध किया है नाना साहब का संतुलन एवं अनुशासन अधिक सफल नहीं हुआ। फलतः अन्य नायकों ने अथवा विद्रोही सैनिकों ने ऐसी आज्ञाएँ दीं या कार्य किये जिनका उत्तरदायित्व नाना साहब पर ठहराया गया। कहा जाता है कि सतीचौरा घाट पर तथा बीबीघर के बन्दियों की हत्या की आज्ञा देने में अजीमउल्ला व अन्य नायकों का हाथ था। बीबीघर की हत्या में अजीजन ने भाग लिया। इसकी पुष्टि अन्य स्रोतों से भी होती है।

बीबीघर के बन्दीगृह में सुरक्षा के लिये इलाहाबाद से आए हुए छठवीं रेजीमेन्ट के सैनिक जो सतीचौरा घाट पर तैनात थे वही वहाँ पर भी उपस्थित थे। वह

१. मॉड—"मेमोरीज आव दि म्यूटिनी", खण्ड १, पृ० १२०।

इलाहाबाद के हत्याकाण्ड के प्रत्युत्तर में कुछ भी कर सकते थे परन्तु उन्होंने भी स्त्रियों एवं बच्चों पर हथियार उठाने से इनकार कर दिया। तत्पश्चात् क्या हुआ उसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित वर्णन से हो जायेगा :—

"बेगम (जो नाना साहब के महल की नौकरानी थी, तथा सरवर खाँ नामक सेनानी की रखैल थी) इलाहाबाद के सैनिकों का वध करने से इनकार करने पर नूर मुहम्मद के होटल वापस गयी। वहाँ से दो मुसलमान तथा तीन हिन्दू कातिल, जिनमें अन्य गवाहों के कथनानुसार सरवर खाँ भी था, ले आयी। बन्दियों पर गोलियाँ दागी गयीं तथा नाना साहब के समीपवर्ती अहाते से कातिल आये और उन्होंने अंग्रेजों की बलि दी। यह सब ६ बजे सायंकाल को समाप्त हो गया था, फिर बन्दीगृह के द्वार बन्द कर दिये गये थे।"[१]

इस प्रकार इस हत्याकाण्ड में दो सौ दस स्त्रियों व बच्चों की बलि दी गयी। सभी शव पास के कुएँ में डाल दिये गये। [इसी स्थान पर आगे चलकर अंग्रेजों ने 'मेमोरियल वेल' नामक स्मारक बनवाया था। जो अब बन्द कर दिया गया है।]

उपर्युक्त विवरण तथा कथनों से व अन्य उपलब्ध प्रमाणों से, यह स्पष्ट हो गया है कि नाना साहब का व्यक्तिगत रूप से इस हत्याकाण्ड में कोई हाथ न था। वह तो उस समय हैवलाक की बढ़ती हुई सेना को अहरिया ग्राम के निकट रोकने में संलग्न थे। उनके लिए जीवन एवं मौत का युद्ध था। पेशवाई, धन-सम्पत्ति तथा बिठूर-स्थित पारिवारिक मुख्यावास तक संकट में थे। उस समय उनके लिए इन छोटी घटनाओं की ओर ध्यान देना असंभव था।

अंग्रेज इतिहासकारों ने अपनी सम्पूर्ण मस्तिष्क-शक्ति लगाकर ऐसी-ऐसी मनगढ़न्त बातें लिखीं हैं कि उनको पढ़कर घृणा उत्पन्न होती है। उन्होंने अंग्रेजी समाचारपत्रों में ऐसे कपोलकल्पित अत्याचारों के वर्णन भेजे जो कि विश्वास योग्य नहीं थे। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक लिखा कि वहाँ स्त्रियों पर अत्याचार हुआ, उनका सतीत्व भंग किया गया आदि-आदि। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के दोषारोपण भारत में किसी भी स्थान की घटनाओं के विषय में सत्य नहीं थे। परन्तु गत सौ वर्षों तक इन्हीं मिथ्यारोपणों के आधार पर नाना साहब को सभी बुरी-बुरी

१. मॉड—"मेमोरीज आव दि म्यूटिनी"—खण्ड १, पृ० सं० १२०। फ्रांसिस कार्नवालिस मॉड हैवलाक के साथ अंग्रेजी तोपखाने का नायक था। यह पुस्तक १८६० ई० में छपी थी। उपर्युक्त विवरण कर्नल विलियम्स द्वारा संगृहीत कथनों पर आधारित है जिनमें अंग्रेज बैण्डवालों का कथन मुख्य था।

उपाधियाँ प्रदान की गयीं। उनके लिए जो अपशब्द कहे गये वह लेखबद्ध करने योग्य नहीं हैं।

श्री बालाजी हर्डिकर ने अपनी पुस्तक "अठारह सौ सत्तावन" में इसकी पुष्टि में निम्नलिखित कथन प्रस्तुत किया है[1]:—

"इस हत्याकाण्ड में नाना साहब का कोई हाथ न था। अजीमउल्ला के मित्र मुहम्मद अली के कथन से यह बात सिद्ध होती है। मुहम्मद अली एक जबरदस्त देशभक्त था। उसने रुड़की कालेज से इंजीनियरिंग की परीक्षा पास की थी। वह नेपाल के महाराजा का सलाहकार भी रह चुका था। बाद में वह अंग्रेजी छावनी में जासूसी करने के अपराध में पकड़ा गया। उसे फांसी का दण्ड दिया गया। फाँसी के पूर्व रात में उसने फोर्बस माइकेल से वार्तालाप किया था। उसमें उसने कहा था— 'नाना साहब स्त्रियों और बच्चों को बचाना चाहते थे। उन्होंने इसके लिए बहुत प्रयत्न किया पर उनकी एक न चली। बेगम (अजीजन) और अजीमउल्ला पर ही इसका उत्तरदायित्व है'।"

फारेस्ट ने भी यही विचार प्रकट किया है[2]—उनके अनुसार कर्नल विलियम्स पुलिस आयुक्त ने ६३ गवाहों के कथन लिये परन्तु वह गवाह अंग्रेजों के जूतों की एड़ी के नीचे थे। इसलिए उन पर विश्वास करके नाना साहब को दोषी ठहराना युक्तिसंगत नहीं।

जैसा कि डा० सेन ने भी बताया है—सर जार्ज ट्रेवलयन तथा राईस होल्मस ने नाना साहब के शत्रु देशद्रोही नानकचन्द की डायरी पर विश्वास करके नाना साहब को दोषी ठहराया है। यह युक्तिसंगत नहीं है। सर जान के ने भी बताया है कि जो कथन विलियम्स ने एकत्र किये थे उन पर कोई न्यायालय नाना साहब को अभियोगी नहीं ठहरा सकता था।

नाना साहब ने स्वयं १८५९ में मेजर रिचर्डसन को प्रेषित इश्तिहारनामे में स्पष्ट बताया कि वह इस हत्याकाण्ड के लिए दोषी नहीं थे। उन्होंने लिखा :—

"कानपुर में सैनिकों ने मेरी आज्ञाओं की अवलेहना करके अंग्रेज स्त्री-पुरुषों की हत्या आरंभ की। जो कुछ मैं बचा सकता था मैंने बचाया। जब मैंने उनको

१. श्रीनिवास बालाजी हर्डिकर : "अठारह सौ सत्तावन"—१९५७ : पृ० १३९–१४०।

२. फारेस्ट : "ए हिस्ट्री आव दी इंडियन म्यूटिनी" : खण्ड १, पृ० ४७८–७९।

बचाने के लिए इलाहाबाद जाने का प्रबन्ध नावों द्वारा कराया तो आपके (अंग्रेजों के) सैनिकों ने उन पर आक्रमण किया। मैंने उनकी अनुनय-विनय करके २०० अंग्रेज स्त्री व बच्चों को बचाया। परन्तु बाद में मैंने सुना है कि सैनिकों एवं बदमाशों ने मिलकर उनकी भी हत्या कर दी थी; जिस समय कि मेरे सैनिक कानपुर छोड़ रहे थे व मेरे भाई के चोट लग गयी थी[१]...——"

१६ ता० को नाना साहब कहाँ थे ?

प्रश्न यह उठता है कि यह हत्या किस समय हुई ? जबकि नाना साहब बिठूर की ओर रवाना हो चुके थे या पहले ? नाना साहब ने १८ जुलाई को बिठूर भी खाली कर दिया था। इसलिए अंग्रेजों ने बिठूर पर १९ जुलाई को अधिकार किया।[२] १५ जुलाई को आँग का भीषण युद्ध हुआ था उसके बाद पाण्डु नदी की लड़ाई हुई। १६ जुलाई[३] को अहरिया ग्राम के निकट नाना साहब ने मोर्चा लिया। उसी दिन बड़ी भारी सेना एकत्र करके नाना साहब ने कानपुर की सुरक्षा के लिए प्रथम युद्ध किया।

इस विषय में हैवलाक द्वारा दिये कानपुर के युद्ध के विवरण से स्थिति पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है। हैवलाक के अनुसार अहरिया ग्राम से नाना साहब ने परि-स्थिति अपने विपरीत देखते ही बिठूर की ओर वापस जाने की तैयारी की। रास्ते में केवल कानपुर का बारूदखाना उड़ाने का नाना साहब को ध्यान रहा। अन्यथा अहरिया ग्राम से कानपुर होते हुए बिठूर पहुँचने में सब सामग्री के साथ नाना साहब को पर्याप्त समय लगा होगा। उनके लिए १६ ता० की सायं को कानपुर ठहरना तथा बीबीघर में क्या हो रहा था यह देखना असंभव था। इसलिए नाना साहब का १६ ता० को सायंकाल के समय युद्ध स्थल से बिठूर की ओर द्रुतगति से वापस जाने की घटना पूर्णतः निश्चित हो जाती है। डा० सुरेन्द्र नाथ सेन का यह कहना कि इतने समय पश्चात् इसका निश्चय करना कठिन है कि बीबीघर की घटना नाना साहब के बिठूर जाने के बाद हुई या पहले यह कठिन है सत्य नहीं। ब्रिग्रे-

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश, खण्ड ४, पृ० ७७३।

२. "फर्दर पेपर्स" : सं० ४, "दी म्युटिनी इन दी ईस्ट इंडीज"–१८५७, संलग्न प्रपत्र सं० ३७, दो में पृ० ६९।

३. "फर्दर पेपर्स" : सं० ४, "दी म्यूटिनी इन दी ईस्ट इंडीज"–१८५७, संलग्न प्रपत्र ४०, सं० २, पृ० ७३।

डियर-जनरल हैवलाक द्वारा सेना के डिप्टी एडजूटेन्ट जनरल को प्रेषित पत्र के उद्धरणों के दिनांक, कानपुर, २० जुलाई १८५७ के आधार पर, तथा १८६० ई० में प्रकाशित जे० सी० मार्शमेन द्वारा लिखित "मेम्वायर्स आव मेजर जनरल सर हेनरी हेवलाक"—में आवश्यक प्रमाण उपलब्ध हैं,[१] केवल निर्णय करने के लिए विशाल दृष्टिकोण होना चाहिए। गंभीर आपत्ति-कालीन परिस्थिति का जिसको तनिक भी आभास होगा वह यह निर्णय कर सकता है कि जो नाना साहब ने १८५९ ई० में अपने इश्तिहारनामे में लिखा वह वस्तुतः सत्य है।[२] इसी मत की पुष्टि शेरेर ने की है, जो सर्वप्रथम बीबीघर में १७ जुलाई को पहुँचा था। उसके अनुसार नाना साहब का इसमें कोई हाथ नहीं था।

कानपुर की सुरक्षा के निमित्त नाना साहब ने १६ जुलाई से पहले निम्नलिखित आज्ञाएँ प्रकाशित कीं :—

(१) कालका प्रसाद कानूनगो, अवध को[३]........

"शुभ कामनाएँ, तुम्हारा प्रार्थना-पत्र, यह समाचार देते हुए प्राप्त हुआ कि जब सात नौकाएँ अंग्रेजों सहित नदी के बहाव की ओर कानपुर से जाती थीं तब तुम्हारी सेनाओं के दो दलों ने सरकारी सेनाओं से मिलकर निरन्तरता से उन पर गोलियाँ चलायीं और वे अब्दुल अज़ीज के ग्रामों तक अंग्रेजों का हनन करते चले गये, तब तक अश्वचालित तोपखाने सहित आप स्वयं उनसे मिल गये और छः नौकाओं को डुबो दिया और सातवीं, वायु के ज़ोर से बच निकली। आपने एक महान कार्य किया है और हम आपके आचरण से अत्यन्त प्रसन्न हैं। सरकारी कार्य के प्रति अपना लगाव दृढ़ रखिए। यह आज्ञा-पत्र आपको कृपा-स्वरूप भेजा जाता है। आपका प्रार्थना-पत्र, जिसके साथ एक फिरंगी भी भेजा गया था, भी हमारे पास आ गया है। फिरंगी नरक भेज दिया गया है। हमको अब सन्तोष है।"

[दिनांक १६वीं ज़ीक़ाद तदनुसार ९वीं जुलाई १८५७ ई०]

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड ४, पृ० ६८४ से ६९३ तक। तथा डा० सेन—"एट्टीन फिफ्टी सेवन"—पृ० १६०।

२. वही : खण्ड ४ : नाना अभ्यंकर आत्मज केशो राव भास्कर ब्राह्मण आयु ३० वर्ष का कथन। पृ० ५३४–५३६। नाना साहब १६ ता० को ही बिठूर पहुँच गये थे।

३. के—"ए हिस्ट्री आव दी सिप्वाय वार इन इण्डिया," खण्ड—२ पृ० ६७५।

(२) सरसौल के थानेदार को:[1]

"विजयी सरकारी सेना इलाहाबाद की ओर फिरंगियों का सामना करने के लिए कूच कर चुकी; और अब यह सूचना मिली है कि उन्होंने सरकारी सेनाओं को धोखा दिया और उन पर आक्रमण करके छिन्न-भिन्न कर दिया है। कुछ सेना, कहा जाता है, वहाँ अभी भी है। अतः आपको आज्ञा दी जाती है कि आप अपने अधिकार क्षेत्र और फतेहपुर के जमींदार को आदेश दें कि प्रत्येक वीर पुरुष विश्वास के रक्षार्थ एक होकर फिरंगियों को तलवार के घाट उतार दे और उनको नरक भेज दे। प्रत्येक प्राचीन प्रभावशाली जमींदार को आश्वासित कीजिए एवम् अपने धर्म के हित में और काफिरों को नरक भेजने के कार्य में संगठित होने के लिए समझाइए और उनसे कह दीजिए कि सरकार उनका लेना-पावना चुकता करेगी और जो सहायता करेंगे उनको पुरस्कृत करेगी।"

[दिनांक २०वीं ज़ीक़ाद तदनुसार १३वीं जुलाई १८५७ ई०]

(३) लखनऊ में स्थित बहादुरों, घुड़सवारों के सेना के अधिकारियों, तोपखाने व पदाति सेनानियों को सन्देश[2]

"शुभकामनाएँ, लगभग एक सहस्र अंग्रेजों की सेना कई तोपों सहित इलाहाबाद से कानपुर की ओर कूच कर रही थी। उन मनुष्यों को बन्दी बनाकर हनन करने के हेतु एक सेना भेजी गयी थी। अंग्रेज तीव्रगति से बढ़ रहे हैं, दोनों ओर मनुष्य आहत होकर अथवा मर कर गिर गये हैं। फिरंगी अब कानपुर के सात कोस के अन्दर हैं। युद्धस्थल में बराबर की चोट है। यह समाचार है कि फिरंगी नदी द्वारा अग्निबोटों से आ रहे हैं। यहाँ हमारी सेना तैयार है और थोड़ी दूर पर युद्ध छिड़ा हुआ है। अतः आपको सूचना दी जाती है कि उक्त अंग्रेज बांसवाड़ी जनपद के सम्मुख सरिता के तट पर डटे हैं। यह सम्भव है कि ये गंगा पार करने का प्रयत्न करें। इस कारणवश आप लोग उनको नदी पार करने से रोकने के लिए कुछ सेना बांसवाड़ा प्रदेश में भेज दीजिए। हमारी सेना इस ओर से (उनको) दबायेगी और इन मिले-जुले आक्रमणों से काफिरों का हनन किया जा सकेगा, जो कि अत्यन्त आवश्यक है।

यदि ये लोग नष्ट न हो पाये तो इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि वे दिल्ली की ओर प्रस्थान करेंगे। कानपुर एवं दिल्ली के मध्य में कोई भी ऐसा नहीं है जो

१ व २—के—"ए हिस्ट्री आव दी सिप्वाय वार इन इण्डिया," खण्ड २, पृ० ६७५–७६।

उनके सम्मुख टिक सके। अतः हमें निःसन्देह उनको समूल नष्ट करने के लिए संगठित हो जाना चाहिए।

यह भी कहा जाता है कि अंग्रेज गंगा पार भी कर सकते हैं। कुछ अंग्रेज अब भी बेलीगारद में हैं और युद्ध जारी किये हुए हैं जबकि यहाँ एक भी अंग्रेज जीवित नहीं है। आप तुरन्त नदी के पार शिवराजपुर अंग्रेजों को घेरने तथा हनन करने के हेतु सेनाएँ भेजें।"[1]

[दिनांक २३वीं जीक़ाद अथवा १६वीं जुलाई, १८५७ ई०]

(४) नाना साहब पेशवा की आज्ञानुसार होमदेव शर्मा द्वारा प्रसारित घोषणा—भीम शंकर—दिनांक भाद्रपद शुक्ल १३, शाके १७७९

"यथाविधि शासन की राजाज्ञा से होमदेव शर्मा द्वारा समस्त हिन्दुओं और मुसलमानों को सूचित किया जाता है कि अंग्रेजों ने आपस में संगठित होकर ऐसी कृतियों से प्रत्येक को विनष्ट कर दिया है। इसी कारण से जो भी आशावादी हैं वह समस्त जनों को एकत्र करके अंग्रेजों का हनन करें; तथा जो उनकी सेवा में भारतीय हैं उनका भी—जब तक कि जो भारतीय सेना में हैं या राजस्व विभाग में मामलतदार, महालकरी, चपरासी, इत्यादि हैं—हमारे साथ न मिल जायें। खेतिहरों को तनिक भी हानि न पहुँचायी जाये। एक-चौथाई राजस्व की छूट दी जायेगी तथा तीन-चौथाई जमींदारों द्वारा एकत्र किये जायेंगे। जो अंग्रेजों के विरुद्ध एकत्र होकर सहायता करेंगे उन्हें जितना अंग्रेजों से वह पाते थे उसका दुगना वेतन मिलेगा। यदि इसके लिए धन की कमी होगी तो हिन्दुस्तान से* कुछ समय बाद, धन, वेतन व पुरस्कार के रूप में सहायता भेजी जायेगी। जब वह समय आयेगा तब सबको भुगतान कर दिया जायेगा। परन्तु सहायता सबको करनी चाहिए। और जो खेतिहरों को हानि पहुँचायें उनकी निगरानी की जाये तथा यूरोप निवासियों पर आक्रमण करके उनका हनन किया जाये। इस आक्रमण में जो हनन करने का कार्य करेंगे या किसी यूरोपियन को जीवित पकड़ लायेंगे उनको वेतन के अतिरिक्त निम्नलिखित पुरस्कार तालिका के अनुसार उपहार मिलेगा:—

	रु०
यूरोपियन के प्रत्येक मृत शरीर के लिए—	५००

१. के: "ए हिस्ट्री आव दी सिप्वाय वार इन इंडिया"—खण्ड २, पृ० ६७६।

*तात्पर्य उत्तरी भारत से है—क्योंकि यह घोषणा दक्षिण में पेशवाई साम्राज्य वाले देशों में की गयी थी।

	रु०
कलक्टर, जज या उसी स्तर के अथवा समान स्तर के जीवित शरीर के लिए–	१०,०००
कर्नल, मेजर, अथवा कप्तान या अन्य समान स्तर वाले के लिए–	१३,०००
राज्यपाल, अथवा मुख्य न्यायाधीश या अन्य समान स्तर वाले के लिए–	५०,०००

इसके भी ऊपर विशेष उत्साह प्रदर्शन के लिए ग्रामों का इनाम या कोई अन्य पुरस्कार, जिसको स्पष्टतः व्यक्त करना कठिन है—मिलेगा। यदि हमारे सहायकों में से कोई यूरोपियनों को सूचना देगा तो उसको बारह वर्ष की सजा दी जायगी —सबको अपना कार्य परिश्रम के साथ सम्पन्न करना चाहिए।"[1]

उपर्युक्त आज्ञाओं तथा घोषणाओं ने बंगालियों पर कोई प्रभाव नहीं डाला। वह बराबर अंग्रेज औरतों व बन्दियों को कानपुर से इलाहाबाद सूचना व पत्र भेज कर सहायता देते रहे। इसके फलस्वरूप नाना साहब ने सभी बंगालियों को बन्दी बना दिया और जासूसों को १४ जुलाई १८५७ को फाँसी पर लटकवा दिया। यह युद्ध स्थिति देखते हुए आवश्यक भी था। संकट कालीन परिस्थिति में बंगालियों द्वारा ऐसा करना देशद्रोह था।[2]

कानपुर का प्रथम युद्ध

१६ जुलाई १८५७ को प्रातः अंग्रेजी सेना कानपुर नगर से २३ मील की दूरी पर थी। उस समय तक उन्हें २१० स्त्रियों व बच्चों के जीवित रहने का समाचार प्राप्त हुआ था। इसलिए अंग्रेज सैनिक थकावट की अवहेलना करके बढ़े और १६ मील की यात्रा शीघ्र तय कर ली और महाराजपुर ग्राम में आकर विश्राम लिया। यहाँ तीन घण्टे ठहरे व भोजन किया। इसी कार्यक्रम में तीसरा पहर आ गया होगा। नाना साहब कानपुर से १६ ता० को ५,००० सेनानियों——८ तोपों के साथ अन्तिम युद्ध करने के लिए रणस्थल में आये। उनकी सेना का बाम पक्ष चार २४ पाउन्डर तोपों से आरक्षित था तथा उसी ओर गंगा का किनारा था। कानपुर छावनी को जाने वाली सड़क नाना साहब के बाम पक्ष एवं केन्द्र के बीच

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड ४, पृ० ६११–६१२, तथा सोर्स मैटीरियल फार दी हिस्ट्री आव फ्रीडम मूवमेन्ट इन इण्डिया, खण्ड १, १८१८-१८८४ : बम्बई। पृ० ५ से ८ तथा ११ से १२।

२. हिन्दू पैट्रियट : समाचार-पत्र कलकत्ता, दिनांक अगस्त २७, १८५७, पृ० २७९, तथा भोलानाथ चन्दर "ट्रैवल्स् आव ए हिन्दू"।

में थी। इस स्थल पर भी एक २४ पाउन्डर तोप, तथा घोड़ों द्वारा चालित ६-पाउन्डर तोपें थी। ग्रेण्ड ट्रन्क रोड उनकी सेना के दायें पक्ष एवं केन्द्र के बीच में थी। नाना साहब ने अपनी सेना को १½ मील की दूरी में फैला रखा था। नाना साहब को आशा थी कि अंग्रेजों की सेना चौरास्ते तक आयेगी, जहाँ उनकी तोपें उनका स्वागत करतीं। तोपों के आरक्षण में उनकी समस्त पदाति सेनाएँ थीं। दूसरी घुड़सवार पल्टन शत्रु के आने वाले मार्ग के पिछले भाग में लैस थी। नाना साहब के पास तोपें अंग्रेजों से अधिक थीं। जगह भी ढकी हुई थी। हैवलाक ने यह देख कर निश्चय किया कि वह नाना साहब के बाम पक्ष पर ही आक्रमण करे। केवल घुड़सवार पल्टन तोपों के सम्मुख पहुँचीं।

सायंकाल का समय हो रहा था। अंग्रेजों की सेना ने छिपे-छिपे क्रान्तिकारियों के बाम पक्ष की ओर बढ़ना आरम्भ किया। परन्तु क्रान्तिकारियों ने उन्हें भाँप लिया और गोलाबारी शुरू कर दी। परन्तु उत्तर में बिना गोलाबारी किये अंग्रेजों की सेना उनके बाम पक्ष तक पहुँच गयी। उन्होंने अपनी गति बदलनी चाही परन्तु वह असंभव था। उनकी बड़ी तोपों ने मध्य से अंग्रेजों पर आग बरसायी; घमासान युद्ध हुआ। परन्तु सहसा बाम पक्ष को संभालने में कठिनाई हुई व पीछे हटना पड़ा। थके हुए होने पर भी हैवलाक ने पदाति सेनाओं को आगे बढ़ा दिया। नाना साहब का बामपक्ष छिन्न-भिन्न हो गया। विजय-श्री अंग्रेजों को मिली। उन्होंने चतुराई पूर्ण चालों से नाना साहब की सेना को पछाड़ दिया। स्वयं हैवलाक ने क्रान्तिकारियों की गोलाबारी, उनकी बारीकी व अचूक निशानाबाजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।[1] क्रान्तिकारियों ने इस युद्ध में जी-जान से प्रयत्न किया परन्तु भाग्य ने उनका साथ नहीं दिया और क्रान्ति की प्रथम बड़ी लड़ाई में अंग्रेजों की विजय हुई।

डा० मजूमदार ने अपनी पुस्तक 'सिप्वाय म्यूटिनी' में नाना साहब पर यह दोषारोपण किया है कि उन्हें केवल अपने स्वार्थ का ध्यान था,[2] न उन्हें दिल्ली के घेरे से तात्पर्य था और न ही वाराणसी, इलाहाबाद तथा लखनऊ में अंग्रेजों की सेना की गतिविधि से। यह दोषारोपण उपर्युक्त वर्णन से बिल्कुल असत्य व भ्रमात्मक सिद्ध होता है। नाना साहब तथा अवध के सेनानियों एवं नायकों में कितना सहयोग था, यह केवल दो घोषणापत्रों के आधार पर सिद्ध हो जाता है। यदि

(१) मार्शमेन, जे० सी०—"मेम्वायर्स आव हेनरी हैवलाक" : पृ० ३०७–३११।

(२) डा० मजूमदार : "सीप्वाय म्युटिनी" : पृ० २७१–२७२।

डा० मजूमदार जैसे इतिहासकार इस नवीन उपलब्ध सामग्री का अध्ययन करें तो अवश्य उन्हें अपने विचार बदलने पड़ेंगे। प्रथम घोषणा-पत्र[1] में समस्त सैनिकों तथा नागरिकों को कानपुर में एकत्र होने तथा बैरकों के गढ़ को नष्ट करने के लिए आवहन है। इसमें स्पष्टत: देहली और लखनऊ की सुरक्षा के लिए कानपुर में युद्ध करने का उल्लेख है। अवध के क्रान्तिकारियों को इस बात का पूर्ण आभास हो गया था कि कानपुर की पराजय से लखनऊ पर कितनी आपदा आयेगी। इसमें कहा गया—"तुम लोगों को कानपुर जैसे स्थानों की ओर बढ़ना चाहिए। कानपुर की ओर बढ़ने में क्या आपत्ति है? यदि तुम लोग कानपुर के मिट्टी के गढ़ को लेने से डरते हो तो इलाहाबाद तथा कलकत्ता के दुर्गों को कैसे जीतोगे? ....सैनिकों पर यह उत्तरदायित्व है कि वह दिल्ली और लखनऊ की सुरक्षा करने को अपना कर्तव्य समझें, क्योंकि यह दोनों स्थान सैनिकों एवं नागरिकों के एकत्र होने के स्थान हैं और शत्रुओं ने उन पर दाँत गड़ा रखे हैं।"... लगभग इसी आशय का घोषणा-पत्र मौलवी लियाकत अली ने बिरजीस कदर की ओर से प्रसारित किया था। इसमें उन्होंने सबसे पहले इलाहाबाद को पुनः जीतने तथा धर्म-युद्ध (जिहाद) में भाग लेने के लिए स्पष्ट शब्दों में प्रार्थना की।[2]

बिठूर का प्रथम युद्ध

नाना साहब ५,००० सैनिकों तथा ४५ तोपों के साथ कानपुर से होते हुए बिठूर पहुँच गये। अंग्रेजों को उनके वहाँ पहुँचने का ठीक पता शीघ्र न चल सका। वह उन्हें कानपुर में ही ढूंढ़ते रहे। नाना साहब ने बिठूर पहुँच कर वहाँ से सपरिवार अन्य सुरक्षित स्थान जाने की तैयारियाँ कीं।

बिठूर की सुरक्षा के लिए निम्नलिखित सेनाएँ नियुक्त की गयीं :—[3]

सागर की ३१वीं तथा ४२वीं पल्टनें

फैजाबाद की १७वीं रेजीमेण्ट

कानपुर की २री घुड़सवार टुकड़ी

तथा ३री घुड़सवार फुटकर टुकड़ी नाना साहब के अन्य सैनिकों के साथ

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश, खण्ड २ पृ० १५०–१६१।

२. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश, खण्ड ४ पृ० ६१३–६१५।

३. वही : पृ० ६९१–६९२ : ब्रिगेडियर-जनरल हैवलाक का सेना के डिप्टी एडजूटेन्ट जनरल के नाम बिठूर से दिनांक १७ अगस्त १८५७ ई० का पत्र।

मिलकर, २ पोतों को सबसे दृढ़ स्थान पर लगाकर बिठूर में ४,००० से ऊपर सैनिकों को एकत्र किया। बिठूर तक पहुँचने के लिए दो छोटे रजबहों को पार करना पड़ता था। स्वयं हैवलाक ने अपने वर्णन में स्वीकार किया है कि क्रान्तिकारियों ने बड़ी वीरता से बिठूर की सुरक्षा की। यदि वह इतनी वीरता न दिखाते तो अंग्रेजों की गोलाबारी के सामने तनिक भी न ठहर पाते। कुछ समय के घमासान युद्ध के पश्चात् क्रान्तिकारियों को पीछे हटना पड़ा तथा उनकी तोपों को छीन लिया गया। पदाति सेना मैदान छोड़ कर चली गयी और उसने शिवराजपुर जाकर शरण ली। हैवलाक का कथन था कि यदि उसके पास घुड़सवार सेना होती तो वह क्रान्तिकारियों का अवश्य पीछा करता। अंग्रेजों की जीत तो हर स्थान पर तोपों और नयी कारतूसों वाली बन्दूकों—(एनफील्ड राईफल)—के कारण हुई। कानपुर व बिठूर के युद्धों में टी. सी. मॉड के वर्णन के आधार पर निम्नलिखित सैनिक युद्ध-सामग्री अंग्रेजों के हाथ लगी :—

जुलाई, १५: १—२४ पाउण्डर लोहे की तोप।
१—२४ पाउण्डर लोहे की छोटी नली वाली तोप।
२— ६ पाउण्डर पीतल की तोपें।
जुलाई, १६: २—२४ पाउण्डर लोहे की तोपें।
१—२४ पाउण्डर लोहे की छोटी नली वाली तोप व मशीन-गन का अगला भाग।
२—१२ पाउण्डर लोहे की तोपें।
१— ९ पाउण्डर पीतल की तोपें।
२— ६ पाउण्डर पीतल की तोपें।
(युद्ध के पश्चात् प्राप्त।)

कुल योग १२

	तोपें
ऊपर का योग	१२
१२ ता० को छीनी हुई	१२
बिठूर से लाई हुई	२०
सम्पूर्ण योग	४४[१]

१. फ्रीडमस्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश, खण्ड ४, पृ० ६९२, तथा फर्दर पेपर्स (सं० ४) 'दी म्यूटिनी इन दी ईस्ट इंडीज' से सम्बन्धित १८५७, संलग्न प्रपत्र ४०-दो-में, पृ० ७३।

इनके अतिरिक्त बिठूर में छीनी गयी युद्ध-सामग्री का ब्योरा इस प्रकार था:—

१—२४ पाउन्डर लोहे की तोप।
१—१२ पाउन्डर लोहे की छोटी नली वाली तोप।
१— ९ पाउन्डर पीतल की तोप।
७— ६ पाउन्डर पीतल की तोपें।
२— ६ पाउन्डर पीतल की तोपें—नीचे उतरी हुई।
१—५½ इंच पीतल मारटर।
१— ३ पाउन्डर पीतल की तोप।
४— ३ पाउन्डर पीतल की तोपें—विभिन्न ढंग की।
१— १ पाउन्डर पीतल की तोप।
१— माडेल तोप

योग—२०[1]

बिठूर से विदा होने के पहले नाना साहब ने अपनी सेना की सलामी ली। दिल्ली के बादशाह के सम्मान में १०० तोपें, ८० अपने पूर्वज बाजीराव के मान में तथा ६० अपने मान में दाग़ीं। सिंहासन पर बैठने के उपलक्ष में २१ तोपों की दो सलामियाँ उनकी माता तथा धर्मपत्नी के मान में भी दाग़ी गयीं।[2] बिठूर से नाना साहब ने टीकापुर घाट की ओर कूच किया और रात ही रात में नावों द्वारा समस्त गृहस्थी के सामान धन-दौलत लेकर नाना साहब ने बिठूर को सदैव के लिए छोड़ दिया। जाने से पहले नाना ने पेशवा को समय समय पर प्राप्त विशेष वस्तुएँ—स्वामी रामदास द्वारा शिवाजी को दिये गये गेरुए वस्त्र, जिनके कारण मराठों के झंडे का रंग भगवा होता था, जो एक चंदन की एक छोटी पेटी में थे ले लिये—कुछ वर्णनों के अनुसार नाना साहब ने यह वस्त्र तथा अमूल्य रत्न इत्यादि गंगा के अर्पण कर दिये[3]। परन्तु अन्य स्रोतों से ज्ञात होता है कि वह अमूल्य रत्न सब अपने साथ ले गये थे जो उनके पास नेपाल की तराई में भी थे।

इस प्रकार नाना साहब के अनेक प्रयत्न करने पर भी युद्ध में पराजय हुई। उन्हें कानपुर तथा बिठूर भी त्यागना पड़ा जिसकी कि उन्हें स्वप्न में भी आशा न

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड ४, पृ० ६९३।
२. चार्ल्सबाल : "हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी" : पृ० ३८४।
३. श्रीनिवास बालाजी हर्डिकर : "अठारह सौ सत्तावन" : पृ० १४१।

थी। कहां तो वह क्रान्ति के सफल होने के उपरान्त कलकत्ता तक धावा बोलने का स्वप्न देख रहे थे और कहाँ उसके स्थान पर उन्हें स्वयं सपरिवार दूसरों की शरण में जाना पड़ा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वाराणसी व इलाहाबाद की पराजय के कारण कानपुर में यह संकट आया। निःसन्देह १८५७ ई० की क्रान्ति की कानपुर की पराजय सबसे महत्वपूर्ण व प्रभावात्मक घटना थी। इसके पश्चात् भी क्रान्तिकारियों का बरेली, लखनऊ, झाँसी इत्यादि में एक वर्ष तक शासन बना रहा, यह अद्वितीय बात थी। परन्तु यदि कहीं कानपुर में नाना साहब सत्तारूढ़ रहते तो क्रान्तिकारी शासन सुदृढ़ हो जाता। परन्तु भावी प्रबल थी। इस युद्ध के पश्चात् नाना साहब के जीवन का दूसरा पहलू आरम्भ होता है। इतना धक्का पहुँचने के उपरान्त भी नाना साहब तथा उनके सहायकों ने कानपुर को पुनः क्रान्तिकारी सेनानियों के अधिकार में लाने के लिए दिसम्बर माह तक अनवरत प्रयत्न किया।

अध्याय ८

कानपुर के लिए युद्ध

बिठूर से निष्कासन के पश्चात् नाना साहब ने गंगा-पार, उन्नाव जिले में, फतेहपुर चौरासी नामक स्थान पर, चौधरी भोपाल सिंह की गढ़ी में अपना शिविर स्थापित किया। यहाँ से वे लखनऊ की ओर बढ़ती हुई अंग्रेजी सेना के पीछे से आक्रमण कर सकते थे तथा बिठूर व कानपुर पर पुनः अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न भी कर सकते थे। यही ऐसा सुरक्षित स्थान था जहाँ से नाना साहब अवध के क्रान्तिकारियों से संबंध स्थापित करके अपना अगला कदम बढ़ा सकते थे। जैसे ही बेगम हज़रत महल को लखनऊ में कानपुर में नाना साहब की पराजय का समाचार मिला वह बहुत चिन्तित हुईं। उन्होंने शीघ्र से शीघ्र उनसे संपर्क स्थापित किया और उन्हें लखनऊ आने का निमंत्रण दिया।

सैयद कमाल उद्दीन हैदर हसनी हुसैनी "कैसेरुत्तवारीख" के लेखक जिन्हें हज़रत महल के दरबार की अत्यधिक जानकारी थी अपनी पुस्तक में, जिसकी रचना उन्होंने हैनरी इलियट के आदेशानुसार की थी, लिखते हैं :—[1]

१. सै० कमालउद्दीन हैदर : "कैसेरुत्तवारीख" : पृ० २५७।

इस घटना का उल्लेख लेखक ने नानासाहब की कानपुर की पराजय तथा आलमबाग के युद्ध के बीच में किया है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह घटना लगभग उसी समय घटित हुई अर्थात् बिठूर की द्वितीय पराजय के पश्चात्, ५ जिलहिज्जा १२७४ हि० अर्थात् २७ जुलाई १८५८ ई० में लखनऊ पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार हो गया था। इसलिए यह ५ जिलहिज्जा १२७४ छापे की त्रुटि मालूम पड़ती है। ५ जिलहिज्जा १२७३ हि० अर्थात् २७ जुलाई १८५७ ई०––बिठूर की प्रथम पराजय के पश्चात् ही नानासाहब बिठूर छोड़कर फतेहपुर चौरासी में शिविर-जीवन व्यतीत कर रहे थे। परन्तु राजा जयलाल सिंह के अभियोग पत्रों से, विशेषतः राजा मानसिंह के कथन से ज्ञात होता है कि नानासाहब लखनऊ वर्षाऋतु में आये थे। राजा जयलाल सिंह के भाई रघुबर दयाल ने उनका स्वागत किया था तथा उन्हें दौलतखाने में ठहराया था।

"नाना राव का दूत आया, एक पत्र इस आशय का लाया, 'यदि अनुमति हो तो हम तुम्हारे नगर में प्रविष्ट हों।' जनाब आलिया (हजरत महल) ने अनुमति दी। राजा जैलाल सिंह, कलेक्टर को आदेश हुआ कि वे दो ऊँट, २९ छकड़े, १० गाड़ियाँ, २०-२५ हाथी लेकर फतेहपुर चौरासी को जायँ। नाना राव जियासिंह चौधरी की गढ़ी से घोर वर्षा में अपने परिवार सहित नगर को चले। नुसरतजंग २०० सवार, २ हाथी, चांदी के हौदे सहित, २ शुतुर सवार लेकर स्वागतार्थ गये और जनाब आलिया के आदेशानुसार शीशमहल में उनको उतारा। और उसे सजाया गया और १० शतरंजी, १० चाँदनी, १० पलंग, कई कुर्सियां आवश्यकतानुसार शीशे के बर्तन इत्यादि तथा चित्र भेजे। (५वीं ज़िलहिज्जा-मास-१२७ हि०) नाना राव शहर में प्रविष्ट हुए। ११ तोपें सलामी की दागी गयीं।"

अंग्रेजों की सरगर्मी

वर्षा ऋतु हो जाने के कारण हैवलाक ने नील को कानपुर छोड़कर स्वयं २० जुलाई की रात्रि को लखनऊ की ओर बढ़ने का निश्चय किया। तीन दिन पश्चात् अंग्रेजी सेना तीन तोपों के साथ गंगा पार उतर सकी। परन्तु लखनऊ की ओर बढ़ना सरल नहीं था। हैवलाक ने २८ जुलाई को प्रधान सेनापति को तार भेजा कि लखनऊ में घिरे हुए अंग्रेजों को बचाना कठिन है। उसमें सूचना दी कि नाना साहब ने पुनः ३,००० सैनिक तथा बहुत सी तोपें एकत्र करली हैं। उनका केवल एकमात्र ध्येय था कि किसी प्रकार लखनऊ की ओर बढ़ती हुई अंग्रेजों की सेना पर पीछे से आक्रमण किया जाये। २८ व २९ जुलाई को उन्नाव में मंगलवार (मगरवार) नामक स्थान पर क्रान्तिकारियों ने हैवलाक का मुकाबला किया। परन्तु उन्हें पीछे हटना पड़ा। उनकी १५ तोपें छीन ली गयीं व ३०० खेत आये। इस युद्ध में प्रथम बार अवध की तोपों की गोलाबारी का सामना करना पड़ा। उन्नाव पर अधिकार करके हैवलाक ने बशीरतगंज पर छापा मारा। इसी समय अंग्रेजों के वाम पक्ष पर नाना साहब द्वारा भेजे गये सैनिक एकत्र हो गये। उनके साथ दानापुर (बिहार) से आयी हुई तीन रेजीमेण्ट के कुछ सैनिक भी सम्मिलित हो गये थे। हैवलाक बशीरतगंज के युद्ध के पश्चात् संकट में पड़ गया। उसके सैनिकों में बहुत से मर गये अथवा घायल हो गये। अस्तु, आगे बढ़ने में अपने को असमर्थ पाकर हैवलाक ने पीछे हटना व मंगलवार (मगरवार) में डेरा डालना उचित समझा। उसके लिए घायल व मरीजों को कानपुर भेजना आवश्यक था। इसलिए वह आगे बढ़ने में असमर्थ था।

मंगलवार में आ जाने के पश्चात् एक बार पुनः हैवलाक ने बशीरतगंज

में क्रान्तिकारियों से ४ अगस्त को युद्ध किया। क्रान्तिकारियों ने बिछपुरी तथा नवाबगंज में अपना शिविर बनाकर अंग्रेजों को आगे बढ़ने से रोका। हैवलाक को ज्ञात हो गया कि लखनऊ व उन्नाव के मध्य में क्रान्तिकारियों ने तीन मोर्चे स्थापित कर रखे थे। मार्ग में प्रत्येक ग्राम उनके विरुद्ध था। अवध के समस्त तालुकेदार व जमींदार युद्ध में उनके विरुद्ध लड़ रहे थे और हैवलाक के आगे बढ़ते ही नाना साहब के सैनिक बशीरतगंज पर अधिकार करने से नहीं चूकते। ग्वालियर से भी सैनिक क्रान्तिकारियों से आ मिले थे। ऐसी दशा में वह पुनः मंगलवार (मगरवार) से पीछे हटा व उसने कानपुर पहुँचने के लिए गंगा नदी पार किया।[१] नाना साहब के लिए यह अत्यन्त सन्तोष का विषय था। हैवलाक की संकटमय स्थिति से प्रोत्साहित होकर क्रान्तिकारियों ने कानपुर पर आक्रमण करने की तैयारी की। अंग्रेजी सेनाएँ अगस्त के प्रथम सप्ताह तक कानपुर की पुरानी बारकों में पहुँच गयी थीं। वहाँ वह प्रत्येक पल क्रान्तिकारियों के प्रत्याक्रमण की आशा करने लगे।[२]

४ अगस्त तक क्रान्तिकारी सेनाएँ कानपुर नगर के नवाबगंज मुहल्ले तक प्रविष्ट हो गयीं। ब्रिगेडियर नील ने घबड़ाकर इलाहाबाद को एक पत्र लिखा जिसके आधार पर इलाहाबाद से चेस्टर ने भारतीय शासन के सचिव को ६ अगस्त १८५७ को १०-४० पर एक तारवाहक संदेश भेजा।[३] इसमें बताया गया कि क्रान्तिकारी नवाबगंज तक पहुँच गये थे। दूसरे ही दिन प्रातःकाल नील उन पर आक्रमण करेगा। गवर्नर जनरल एवं प्रधान सेनापति को सूचित किया जाये। परन्तु नील कुछ न कर सका। ७ अगस्त व १३ अगस्त के मध्य में अंग्रेजों को अत्यन्त भय रहा और अन्त में हैवलाक की सेनाएँ नील से आकर मिल गयीं।

कानपुर का द्वितीय युद्ध

१५ अगस्त १८५७ ई० को हैवलाक ने नील को, सेना के एक दल के साथ क्रान्तिकारियों का सामना करने के लिए रवाना किया। हैवलाक के तारवाहक

१. मार्शमेनः "मेम्वायर्स आव मेजर जनरल सर हेनरी हैवलाक" पृ० ३४४-४६, ४७।

२. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड ४, पृ० ६९५ : पत्रावली दिनांक २ अगस्त १८५७ ई० : पृ० ६९५।

३. वही : पृ० ६९५।

संदेश से ज्ञात होता है[1] कि अंग्रेजों के विरुद्ध पर्याप्त शक्तिशाली संगठन बन गया था। गंगा के वाम तट पर अवध की सेनाएँ आ पहुँची थीं। वह कानपुर को आतंकित कर रही थीं। फतहपुर के समीप अनेक क्रान्तिकारी सैनिक दलों ने पार उतरने के निमित्त नावें जमा कर रखी थीं और वह अंग्रेजों का इलाहाबाद से आने का मार्ग काटने का प्रयत्न कर रही थीं। ऐसा हो जाने से अंग्रेजी सेनाएँ कानपुर में घिर जातीं तथा विनष्ट हो जातीं। दूसरी ओर से ग्वालियर की शक्तिशाली सेना काल्पी मार्ग पर छायी हुई थी और कानपुर तक धावा मार रही थी। हैवलाक ने इलाहाबाद का मार्ग सुरक्षित रखने के लिए फतेहपुर की ओर एक स्टीमर भेजा जो नावों को नष्ट कर देता। हैवलाक के पास उस समय केवल ८ अच्छी तोपें थीं परन्तु क्रान्तिकारियों के पास २९ या ३० तोपें थीं। हैवलाक की दृष्टि में कानपुर की पराजय से भारत के इस भाग में अंग्रेजों की सत्ता समाप्त हो जाती। इसको विचार में रखते हुए हैवलाक ने नील को क्रान्तिकारियों पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। उसने प्रयत्न करके २,००० से अधिक अंग्रेज सैनिक एकत्र कर लिये और लगभग १६ तोपें ठीक कर ली थीं। क्रान्तिकारी सेनानी ग्वालियर दल की प्रतीक्षा में थे, इसलिए उन्होंने नील का विरोध न करके बिठूर की ओर कूच कर दिया।

बिठूर का द्वितीय युद्ध

क्रान्तिकारी सेना ने कानपुर में मुकाबला न करके बिठूर तक उन्हें दौड़ाया। १६ अगस्त व १७ अगस्त को बिठूर में ४२वीं पदाति सेना, २री घुड़सवार सेना तथा अवध की कुछ सेनाओं ने अंग्रेजों का सामना किया। १६ अगस्त के मोर्चे में भाग लेने वालों में सागर के भी क्रान्तिकारी सेनानी थे।[2] घमासान युद्ध हुआ। परन्तु संघर्ष थोड़े ही समय में समाप्त हो गया। अंग्रेजों के अनेक सैनिक मारे गये।[3] क्रान्तिकारियों के ४,००० सैनिक वहाँ जमा थे। हैवलाक के अपने कथनानुसार क्रान्तिकारी सैनिक बड़ी दृढ़ता के साथ लड़े। उनके २५० सैनिक मारे गये अथवा घायल हुए। अंग्रेजों की ओर ४९ मरे। क्रान्तिकारी सैनिक पुनः बचकर

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड ४ : पृ० ६९५–६९६।

२. 'फर्दर पेपर्स' : (पार्लियामेन्ट्री-संख्या ४)—'दी म्युटिनीज इन दी ईस्ट इंडीज' संबंधी १८५७ : संलग्न प्रपत्र ११०, संख्या २, पृ०, १०५।

३. ग्रूम : 'विद हैवलाक फ्राम इलाहाबाद टू लखनऊ'—१८५७ : पृ० ७७।

शिवराजपुर की ओर निकल गये जहाँ कि राव साहब का अस्थायी मुख्यावास था। अंग्रेज उनका पीछा न कर सके।

कानपुर तथा बिठूर के द्वितीय युद्धों में क्रान्तिकारी सेनानी संघर्ष करके पुनः पीछे हट गये। परन्तु अंग्रेजों को बराबर उनका भय बना रहा। गंगा तट पर जो उन्होंने मरीजों का शिविर बनाया था और वहीं पर जो खाद्य सामग्री जमा की थी वह छोड़ना पड़ा।[१] एक नये स्थान पर शिविर जमाया गया। १९ व २० ता० के तारवाहक संदेशों द्वारा नील तथा चेस्टर ने कानपुर व इलाहाबाद से भारतीय शासन तथा प्रधान सेनापति को सूचना दी कि शीघ्र सहायता प्रदान की जाये। अन्यथा ग्वालियर के क्रान्तिकारियों का सामना करना असंभव होगा।[२] २१ ता० को हैवलाक ने सूचना दी कि समस्त क्रान्तिकारी दल संगठित हो गये थे। उसकी राय में कानपुर छोड़कर इलाहाबाद में शरण लेना ही उचित था। वहाँ से जाड़े में पुनः आक्रमण करना संभव हो सकेगा।[३] २३ ता० को पुनः तार द्वारा कानपुर छोड़ने का विचार सूचित किया। मुख्य सेनापति ने जनरल आऊटरम को नवीन सैनिक दलों के साथ शीघ्र रवाना किया। सितम्बर माह तक कानपुर तथा बिठूर में अंग्रेजों की यही दुर्दशा रही। बिठूर के पश्चिमी प्रदेश में नाना साहब द्वारा नियुक्त एवं नियंत्रित अधिकारियों का पूर्ण आधिपत्य था। वहाँ अंग्रेजों की सैनिक शक्ति का कोई प्रभाव नहीं था।[४]

दिल्ली का पतन

सितम्बर माह में अंग्रेज कानपुर में बुरी तरह घिर गये थे। परन्तु इसी समय क्रान्तिकारियों के केन्द्र दिल्ली में विकट संघर्ष आरम्भ हो गया, जिसके फलस्वरूप बूढ़े मुग़ल सम्राट बहादुरशाह ने आत्मसमर्पण कर दिया तथा सेनापति बख्त खाँ के अधीन क्रान्तिकारी सेना दिल्ली से कूच कर गयी। इस दल के एक भाग ने आगरे की ओर पयान किया। दूसरा कानपुर-लखनऊ की ओर चल निकला। १८५७ ई० के संघर्ष में यह बड़ा महत्वपूर्ण समय था। इसी समय अवध के क्रान्तिकारी दल

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड ४, पत्रावली : कानपुर : दिनांक अगस्त २०, १८५७ ई०, पृ० ६९७।

२. वही : खण्ड ४, पृ० ६९७।

३. वही : खण्ड ४, पृ० ६९९।

४. वही : खण्ड ४, पृ० ७०१।

सर्वशक्तिमान थे। गंगापार से वह कानपुर पर तोपें दागने लगे थे। १८ सितम्बर को लखनऊ के शक्तिशाली राजाओं तथा जमींदारों ने कानपुर की ओर प्रस्थान किया। इस समय कानपुर के चारों ओर क्रान्तिकारी सेना जमा थी। ५,००० सैनिक तथा ३० तोपों के साथ ग्वालियर की सेना आयी हुई थी; अवध की सेना में लगभग २०,००० सैनिक थे, वे सब डलमऊ घाट से फतेहपुर पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे थे, फतेहगढ़ से १२,००० सैनिक ३० तोपों के साथ पश्चिम की ओर जमा थे।[1]

ब्रिटिश गवर्नर-जनरल ने आतंकित होकर हैवलाक से सेना का नायकत्व लेकर आऊटरम को सेनापति नियुक्त किया और सर कालिन कैम्पबैल को प्रधान सेनापति नियुक्त करके एक अभियान दल बनाने का आदेश दिया। इस परिवर्तन का हैवलाक पर बुरा प्रभाव पड़ा परन्तु लार्ड कैनिंग ने मनमानी की। दिल्ली की अकस्मात विजय से तथा मुगल सम्राट के आत्म-समर्पण कर देने से अंग्रेजों का उत्साह चौगुना हो गया था। क्रान्तिकारियों के सैनिक संगठन को २० सितम्बर १८५७ ई० को दिल्ली की पराजय से बड़ा धक्का पहुँचा। इसके फलस्वरूप दिल्ली के पश्चिम में पंजाब तथा सीमान्त प्रदेशों पर अंग्रेजों का आधिपत्य पुनः स्थापित हो गया था। परन्तु क्रान्तिकारी सैनिकों ने इस पराजय की तनिक मात्र भी चिन्ता नहीं की। दिल्ली के २ मील पूर्व की ओर तक उन्होंने अधिकार बनाये रखा।[2] आगरा पर उन्होंने भीषण आक्रमण किया। बरेली, लखनऊ, झाँसी, ग्वालियर इत्यादि केन्द्रों पर क्रान्ति की ज्वाला शान्त होने के स्थान पर और अधिक प्रज्ज्वलित हो उठी।

1. "One of the Sikh Scouts I can depend on, has just, come in, and reports that 4,000 men and five guns have assembled today at Bithoor, and threaten Cawnpore. I cannot stand this; they will enter the town, and our communications are gone; if I am not supported I can only hold out here, can do nothing beyond our entrenchments. All the country between this and Allahabad will be up and our position and on the tray up, if the steamer as I feel assured does not start, will fall into the hands of the enemy, and we will be in a bad way." J. E. N.

२. डा० डफ: "लेटर्स आन इंडिया"—संख्या १–६, पृ० २१७–२१८: कलकत्ता, १० दिसम्बर, १८५७ ई०।

नाना साहब तथा उनके सहायकों ने कानपुर से वाराणसी तक अंग्रेजों पर धावा बोलने की महान योजना बनायी। कानपुर पर दोनों पक्षों की तीव्र दृष्टि थी। अंग्रेज कानपुर पर आधिपत्य स्थापित रखकर लखनऊ व बरेली जीतना चाहते थे। दूसरी ओर क्रान्तिकारी नेतागण कानपुर से अंग्रेजों को निकाल कर इलाहाबाद-बनारस जीतना चाहते थे।

कानपुर का तीसरा युद्ध

दिल्ली की पराजय के पश्चात् क्रान्तिकारी सैनिक कानपुर व बिठूर की ओर लौट आये। १६ अक्तूबर को लगभग ३०० सैनिक १४ तोपों के साथ बिठूर पहुँचे।[१] इसी तारीख को मध्यप्रान्त (इलाहाबाद-बनारस) के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर द्वारा भेजे गये तार से ज्ञात होता है कि १७ अक्तूबर को दिल्ली से कानपुर जिले में ३ या ४ सहस्र सैनिक १४ तोपों व ८० हाथियों के साथ आ गये थे।[२] नाना साहब इस समय भी अपने फतेहपुर चौरासी के शिविर में थे। लगभग इसी समय ग्वालियर की सेना का मुख्य दल क्रान्तिकारियों के साथ मिल गया। उनको संघर्ष में पूर्णतः सम्मिलित करने का प्रयत्न तो सितम्बर माह से ही चल रहा था। सैनिक लोग सिन्धिया को भी क्रान्ति में साथ देने के लिए बाध्य कर रहे थे। परन्तु सिन्धिया के मन्त्री दिनकर राव तथा ब्रिटिश राजदूत मैक्फर्सन के प्रयत्नों से सिन्धिया अन्य-मनस्क रहा। ग्वालियर की सेना पूर्णतः नानासाहब व झाँसी की रानी के निमंत्रण से प्रभावित थी और तात्या टोपे के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों से मिलने को उद्यत थी। दिल्ली के पतन के पश्चात् ग्वालियर के सैनिक दिल्ली न जाकर कानपुर जाने को उत्सुक थे। फलतः १५ अक्तूबर को ग्वालियर की प्रधान सेना अपनी तोपों, गोलाबारूद (मैगजीन) इत्यादि को लेती हुई तात्या के साथ चल पड़ी। जालौन तथा कछवागढ़ होती हुई यह सेना १५ नवम्बर को काल्पी पहुँची तथा वहाँ से कानपुर पर भीषण आक्रमण किया।

राजा कुँवर सिंह भी स्वयं रीवाँ होते हुए १९ अक्तूबर १८५७ ई० को काल्पी पहुँचे।[३] बाँदा से नवाब अलीबहादुर के सैनिकों ने फतेहपुर पर आक्रमण

१. "पार्लियामेन्ट्री पेपर्स"—संलग्न प्रपत्र संख्या २२१, संग्रह सं० २, पृ० ११९—कर्नल विलसन का चीफ आव स्टाफ, कलकत्ता को भेजा हुआ तार।
२. वही : संलग्न प्रपत्र संख्या २५५—संग्रह संख्या २, पृ० १२८।
३. "नैरेटिव आव ईवेन्टस्"—जालौन, १८५७—५८, पृ० ६—पैरा ८।

किया।[1] सागर तथा नर्मदा क्षेत्रों में क्रान्ति पूर्ण रूप से व्याप्त हो रही थी। रीवाँ के सभी जागीरदार राजा के विरुद्ध हो गये थे और क्रान्ति में योग दे रहे थे। उनका कुँवरसिंह से सीधा सम्पर्क था। गवर्नर जनरल ने भी कलकत्ता से घोषणा कर दी थी कि उन्हें रीवाँ, बुन्देलखण्ड तथा सागर नर्मदा क्षेत्रों के हाथ से निकल जाने की बिल्कुल चिन्ता नहीं थी।[2] केवल लखनऊ रेजीडेन्सी में घिरे हुए अंग्रेजों को बचाने की चिन्ता थी ।

उपर्युक्त ध्येय से अंग्रेजी सेना के प्रधान सेनापति कैम्पबेल ने लखनऊ पर आक्रमण किया। उससे पहले जनरल आऊटरम ने लखनऊ रेजीडेन्सी में घिरे हुए अंग्रेजों को बचाने का प्रयत्न किया था। इस प्रयत्न में अंग्रेजों के पक्ष के अनेक अफसर तथा ५०० सैनिक मारे गये। प्रत्येक इंच भूमि के लिए भीषण युद्ध हुआ। नील भी इस युद्ध में मारा गया। अंग्रेज किसी प्रकार बेलीगारद पहुँच तो गये, परन्तु वहाँ पहुँच कर उन्हें ज्ञात हुआ कि उद्धार करने के बजाय वह स्वयं भी बन्दी हो गये। क्रान्तिकारियों ने सारे नगर में ऐसे मोर्चे बना दिये कि वह बाहर न निकल पाये। सारे पुल तोड़ डाले। क्रान्तिकारी अक्तूबर भर बेलीगारद को घेरे पड़े रहे। घिरे हुए अंग्रेज खाद्य-सामग्री की कमी के कारण विकल होने लगे। उन्हें कैम्पबेल के अभियान दल की प्रतीक्षा थी। कानपुर की दशा शोचनीय होते हुए भी कैम्पबेल ने बड़ी तीव्रता से लखनऊ की ओर धावा बोला। ९ नवम्बर तक वह बन्थरा पहुँच गया और होप ग्रान्ट की सेना से मिलकर १६ ता० तक लखनऊ के सिकन्दरबाग तक पहुँच गया। क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों का ला मार्टिनियर व सिकन्दरबाग में घोर विरोध किया, परन्तु गोमती के रास्ते से वह रेजीडेन्सी पहुँच गया। शाहनजफ पर भयंकर युद्ध हुआ। १७ ता० तक मोतीमहल इत्यादि पर अधिकार प्राप्त करने में अंग्रेज सफल हो गये। कैम्पबेल ने तुरन्त बेलीगारद को खाली करके सिकन्दरबाग एवं दिलकुशा में अपना शिविर डाला। क्रान्तिकारियों ने अंग्रेजों की इस चाल पर विशेष ध्यान नहीं दिया और उन्हें सकुशल लौट जाने दिया। कालिन कैम्पबेल जनरल आऊटरम को आलमबाग में छोड़कर स्वयं कानपुर की ओर

१. "म्युटिनी रजिस्टर"—जिला फतेहपुर—प्रोबियन द्वारा लिखित दैनन्दनी ता० ११ अक्तूबर, ३० अक्तूबर तथा ३१ अक्तूबर १८५७।

२. "पार्लियामेन्ट्री पेपर्स"—प्रपत्र संख्या ४३, संग्रह संख्या ७। दिनांक २२ अक्तूबर १८५७ ई०, सचिव मध्य प्रान्त बनारस से सचिव भारतीय शासन, कलकत्ता—पैरा ६।

चला। २७ नवम्बर को उसे कानपुर पर तात्या टोपे के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों के आक्रमण का समाचार मिला। उसने रास्ते में ही घिर जाने के भय से तीव्रगति से गंगा पार पहुँचने का निश्चय किया।

कानपुर में २७ ता० को ही अंग्रेजों से क्रान्तिकारियों का भीषण संघर्ष हुआ। फलस्वरूप अँग्रेजों के शिविर तथा युद्ध-सामग्री पर तात्या का अधिकार हो गया। दूसरे दिन पुनः युद्ध हुआ और समस्त नगर पर एक बार क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया।[1] अंग्रेजी जनरल विंढम परास्त होकर नदी किनारे शिविर में जा पहुँचा। ठीक उसी समय जब अंग्रेजी सेनाएँ हथियार डालने वाली ही थीं, कैम्पबेल गंगा के पुल पर आ पहुँचा। तात्या ने तुरन्त गंगा के पुल को उड़ाने का प्रयत्न किया परन्तु उन्हें सफलता न मिल सकी।[2] भाग्य ने तात्या का साथ नहीं दिया। कैम्पबेल स्त्री, बच्चों व मरीज़ों को लखनऊ से लेकर गंगा के इस पार आ पहुँचा। यहाँ आते ही क्रान्तिकारी सेनाओं का सामना करना आरम्भ किया। ५ दिसम्बर १८५७ ई० तक झड़पें होती रहीं। परन्तु कैम्पबेल ने ६ ता० को क्रान्तिकारियों पर आक्रमण किया और उन्हें पीछे हटने पर बाध्य किया। शासकीय प्रपत्रों के आधार पर उन्हें १६ तोपें प्राप्त हुईं और युद्ध सामग्री में छकड़े, बारूद, व अन्य सामान हाथ लगा। क्रान्तिकारियों ने कानपुर-काल्पी मार्ग पर १४ मील दूरी पर शिविर किया।[3]

कानपुर का तृतीय युद्ध १८५७ के स्वतन्त्रता-संग्राम में अत्यन्त महत्वपूर्ण संघर्ष था। इसके दो आँखों-देखे वृतान्त उपलब्ध हैं उनसे इसकी भीषणता व क्रान्तिकारियों के युद्ध-कौशल का आभास मिलता है[4] :—

१. "सिलेक्शन्स फ्राम दि लेटर्स, डिस्पैच ऐन्ड अदर पेपर्स"—प्रिजर्व्ड इन दि मिलिट्री डिपार्टमेन्ट आव दि गवर्नमेन्ट आव इंडिया—१८५७—५८, भाग २, पृ० ३७७ से ३८० मेजर जनरल का पत्र कैम्पबेल को।

२. टी० राइस होल्मस की "इंडियन म्यूटिनी"—पृ० ४२४।

३. "फर्दर पेपर्स"—(सं० ६)—दी म्यूटिनी इन दी ईस्ट इंडीज—से संबंधित १८५८ संलग्न प्रपत्र १ सं० ४ पृ० १४८—दिनांक १० दिसम्बर १८५७ (सं० ३१३): फ्रीडम स्ट्रगिल इन यू० पी० खण्ड ४, पृ० ७१४।

४. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश-खण्ड ४-पृ० ७०८—७०९-मद्रास सैनिकों के नायक ब्रिगेडियर कारथियू का डिप्टी एडजूटेन्ट जनरल कानपुर का दिसम्बर १, १८५७ का पत्र।

(१) ब्रिगेडियर कारथियू द्वारा वर्णन : १ दिसम्बर १८५७ ई०

"....हमारे बाम पक्ष पर शत्रु बड़ी संख्या में अब बढ़ते जा रहे थे, और उन्होंने मकानों, उद्यान की दीवारों तथा गिरजाघर पर अधिकार कर लिया था। शत्रु को उद्यान से व गिरजाघर से बाहर निकालने के निमित्त, सैनिकों की एक टोली (कम्पनी) को भेजो गयो, परन्तु शत्रु इतने बलिष्ठ थे कि वह न केवल अपनी स्थिति दृढ़ रख सकते थे वरन् उस पर से प्रत्याक्रमण भी कर सकते थे। मैंने तब पुल के दोनों ओर अपना ध्यान केन्द्रित रखा और तोपों द्वारा भीषण गोला-बारी करता रहा। शत्रु भी गिरजाघर के आँगन में अपनी तोपें ले आये तथा पुल से १५० गज की दूरी पर डट गये, मेरी तोपों का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

"शत्रु की संख्या अब भी बढ़ती जा रही थी और वह मेरे बामपक्ष व पीछे बढ़ते आ रहे थे। मैंने अपनी तोपें १०० गज़ पीछे हटा लीं। मेरा उद्देश्य ब्रिगेड को आज्ञा देना व नगर की ओर सड़क की सुरक्षा करना था।

"मेरे चारों ओर अनेक अंग्रेज अधिकारी व सैनिक मर कर जल्दी-जल्दी गिर रहे थे। मैंने सहायता की याचना की और जब तक वह आये, रात्रि हो चली थी और अब मैं इसी को चतुराई समझता था कि बचे-खुचे सैनिकों के साथ खाइयों से घिरे हुए शिविर को लौट जाऊँ। पीछे हटने का कार्य अत्यन्त विधिवत किया गया—बन्दूकची पिछले भाग की सुरक्षा करते रहे।"

(२) 'दी प्रभाकर' के संवाददाता का पत्र: [१]

२७ नवम्बर को विद्रोहियों और अन्य पाजियों ने, जिनकी संख्या पर्याप्त थी, साज-सामान से लैस होकर अत्यन्त संगठित रूप से कानपुर पर आक्रमण किया। नगर को घेरे में ले लिया। नागरिक-जन जहाँ के तहाँ रह गये। दस दिन तक बराबर गोला-बारी होती रही। ९ दिन तक नगर क्रान्तिकारियों के अधीन रहा। दसवें दिन अर्थात् ६ दिसम्बर को भीषण युद्ध हुआ। क्रान्तिकारी अंग्रेजों की ओर से गोलाबारी का, जो ५ घंटे तक अनवरत रूप से चलती रही, सामना न कर सके। उन्हें मैदान छोड़कर भागना पड़ा। पीछे वहुत सी सामग्री छूट गयी जिसमें :—

२०० बारूद आदि ले जाने वाले छकड़े।

४ या ५०० बैल।

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश, खण्ड ४, पृ० ७०६–७०८ : हिन्दू पैट्रियट : दिनांक २१ जनवरी १८५८ से उद्धृत।

५२ या ५५ तोपें।

असंख्य बन्दूकें प्रधान थीं।

खाद्य-सामग्री की तो कुछ गिनती ही नहीं थी।

इस युद्ध में विजयश्री अंग्रेजों के ही हाथ रही। अंग्रेजों ने काल्पी और बिठूर के मार्ग को बन्द कर दिया जिससे कि तात्या व क्रान्तिकारी सेना भाग न सके। परन्तु तात्या ने रण-कौशल में अंग्रेज सेनापति को नीचा दिखा ही दिया। वह बिठूर के रास्ते साफ बच कर निकल गये। होप ग्रान्ट उनका पीछा करता रहा परन्तु पकड़ न पाया।

सीराजघाट की लड़ाई

होप ग्रान्ट ने अपने परिपत्र में बताया कि सीराजघाट पर पहुँच कर उसकी क्रान्तिकारियों से मुठभेड़ हुई, जहाँ कि वह गंगा पार करने का प्रयत्न कर रहे थे। होप ग्रान्ट ने उन पर आक्रमण करके १५ तोपें छीन लीं। परन्तु अंग्रेजों के यह विवरण अतिशयोक्ति से भरे पड़े हैं—यदि कानपुर में ५५ तोपें व सीराजघाट पर १५ तोपें तात्या से छीन ली गयीं तो उनके पास कितनी थीं। परन्तु यह भी सत्य है कि क्रान्तिकारियों का यह कानपुर का अन्तिम संगठन अद्वितीय था। इसमें सागर, ग्वालियर, रीवाँ, दानापुर तथा दिल्ली से वापस आये हुए असंख्य सैनिक थे, उनके पास ग्वालियर की वृहत सेना की युद्ध-सामग्री, तोपें इत्यादि भी थीं, परन्तु तात्या का रण-चातुर्य्य सफलता न दिला सका। अंग्रेजों को परास्त करने का स्वर्णिम अवसर हाथ से निकल गया। नाना साहब को व्यक्तिगत रूप से बहुत ठेस पहुँची। कानपुर के अंग्रेजों के अधिकार में रहने पर उन्हें फतेहपुर चौरासी सुरक्षित नहीं जान पड़ सकता था। अंग्रेजों ने भी कानपुर की विजय के पश्चात् इलाहाबाद में अपना केन्द्रीय शासन सुदृढ़ करने का निश्चय किया। अब नाना साहब को केवल लखनऊ अथवा बरेली में ही शरण मिल सकती थी। उनका कानपुर-विजय का स्वप्न धूल में मिल गया।

अध्याय ९

अज्ञातवास

सन् १८५८ ई० जनवरी के माह में अंग्रेजी सेना ने कानपुर व लखनऊ के बीच के मार्ग पर पूरा अधिकार स्थापित कर लिया था। अंग्रेजों को इस बात का विश्वास हो गया कि जब तक नाना साहब को बन्दी न बनाया जायेगा तब तक क्रान्ति का दमन न हो पायेगा। कानपुर की पराजय के पश्चात् भी यमुनापार दक्षिणी प्रदेश में झाँसी, बांदा, फर्रुखाबाद इत्यादि स्थानों पर क्रान्तिकारियों की सेनाएँ छाई हुईं थीं। काल्पी पेशवा की शक्ति का केन्द्र बना हुआ था। राव साहब, तात्या, झाँसी की रानी इस क्षेत्र के सर्वमान्य एवं प्रतिष्ठित नेता थे। वह सब नाना साहब के गुप्त आदेशों के अनुसार क्रान्ति का संचालन कर रहे थे। बिठूर के महलों से बिछुड़ने के पश्चात् नाना साहब शिविर-जीवन की कठिनाइयों को झेलते हुए सपरिवार एक स्थान से दूसरे स्थान गुप्त रूप से क्रान्ति-संचालन का कार्य करते हुए विचरण कर रहे थे। उनका पता चलना कठिन था।

अंग्रेजों ने कानपुर की पराजय के पश्चात् ही नाना साहब के बन्दी बनाये जाने के उपलक्ष में ऐसा कराने वाले को ५०,०००) इनाम देना स्वीकार किया था। परन्तु आऊटरम ने आवेश में आकर २८ फरवरी १८५८ ई० को नाना साहब को बन्दी बनाने के लिए घोषणा की कि—"जो व्यक्ति अपनी तदबीर और पैरवी से गिरफ्तार करायेगा-एक लाख रुपये इनाम पावेगा।"[१]

जैसे-जैसे अंग्रेजों ने नाना को पकड़ने का प्रयास किया, उसी भाँति नाना ने भी अपनी रक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध किया। यह प्रसिद्ध था कि नाना साहब ने कई आदमियों को, जिनकी शक्ल-सूरत उनसे मिलती थी, अपना नौकर बना लिया था और दाढ़ी बढ़ा ली थी। क्रान्तिकारियों के शिविर में

१. सेन्ट्रल रिकार्ड रूम इलाहाबाद कानपुर कलेक्ट्री फाईलों से प्राप्त।

नाना साहब के बारे में पूछताछ करना ऐसा अभियोग था जिसकी सजा मौत थी।[1]

नाना साहब रुहेलखण्ड की ओर

अंग्रेजी सेनाओं को कानपुर-लखनऊ मार्ग पर अधिकृत देखकर नाना साहब ने अवध में ठहरना उचित नहीं समझा। उन्होंने फरवरी १८५८ ई० में गंगा पार करके बिल्हौर व शिवराजपुर छोड़ कर, शिवली व सिकन्दरा की ओर प्रस्थान किया।[2] फतेहगढ़ से कानपुर तक गंगा नदी के सभी घाटों पर क्रान्तिकारी सेना ने नाकाबंदी की। उन लोगों का ध्येय रुहेलखण्ड तथा गंगा के ऊपरी भाग की सुरक्षा करना था। नाना साहब १९ फरवरी को रुहेलखण्ड की ओर जाते हुए बताये गये।[3] २० ता० को हरदेव बक्स के अनुसार वह बीर्रा में थे।

११ मार्च १८५८ को नाना साहब शाहजहाँपुर पहुँचे। उनके साथ लगभग ४०० सैनिक पैदल अथवा घुड़सवार थे। यहाँ उनके साथ अन्य क्रान्तिकारी दल भी मिल गये। १९ मार्च को नाना साहब ने दलबल के साथ रामगंगा नदी को पार किया और अलीगंज में डेरा डाला। शाहजहाँपुर, अलीगंज होते हुए नाना साहब सपरिवार तथा अतुल धन-सम्पत्ति के साथ २५ मार्च १८५८ को बरेली पहुँचे। उनके आने की सूचना पाते ही बरेली के शासक नवाब खानबहादुर खान ने बरेली गवर्नमेन्ट कालेज के भवन में उनके रहने का प्रबन्ध कर दिया था। खानबहादुर ने नाना साहब का स्वागत किया। कहा जाता है कि नवाब ने क्रान्तिकारी सेनाओं का प्रधान नायकत्व भी नाना साहब को देने की इच्छा प्रकट की। परन्तु नाना साहब ने उसे अस्वीकार कर दिया।

तिस पर भी नाना साहब ने खानबहादुर को अपना पूर्ण सहयोग दिया। उनके बरेलीपहुँचने से अन्य क्रान्ति के नेतागण वहाँ जमा हो गये। इनमें शाहजादा फीरोजशाह, वलीदाद खाँ के पुत्र इस्माइलखाँ को विभिन्न कार्य सौंपे हुए था। उनके साथ फीरोज शाह शहजादे ने निचले दोआब में युद्ध का भार संभाला। उन्होंने अपने १७ फरवरी

१. रेक्स : "नोट्स आन दि रिवोल्ट"—बिलग्राम हरकारा द्वारा प्राप्त सूचना : २८ जनवरी १८५८ ई०।

२. "पार्लियामेन्ट्री पेपर्स"—"दि म्यूटिनी इन ईस्ट इंडीज"—संलग्न प्रपत्र ६—संख्या ६ कानपुर से जज द्वारा भेजा गया तार : दिनांक—फरवरी ११, १८५८।

३. वही : संलग्न प्रपत्र, संख्या ६।

१८५८ के महत्त्वपूर्ण घोषणा-पत्र की प्रतियाँ रुहेलखण्ड में वितरित करा दीं। इनमें खुले शब्दों में कहा गया है कि अवध के सैनिक नवाब अवध के अधीन रहें, रुहेलखण्ड के सैनिक नवाब खानबहादुर खाँ की अध्यक्षता में तथा अन्य फीरोजशाह के नायकत्व में आ सकते हैं। खानबहादुर खाँ ने इस घोषणा-पत्र की प्रतियाँ "बहादुरी प्रेस" में छपवायी थीं।

नाना साहब बरेली में अप्रैल माह के अन्त तक रहे। वहाँ उन्होंने खानबहादुर खाँ को हिन्दुओं के साथ मैत्री भाव बढ़ाने में सहायता दी। जब अंग्रेजी सेना का प्रधान सेनापति जलालाबाद पहुँचा तो उन्होंने फरीदपुर में क्रान्तिकारी सेना के संगठन में सहायता की। वहाँ से पीलीभीत जिले में बीसलपुर चले गये। कुछ समय पश्चात् वह पुनः अवध में पहुँच गये।

जिस समय नाना साहब शाहजहाँपुर से बरेली की ओर कूच कर रहे थे, उसी समय लखनऊ पर घोर संकट था जिसके फलस्वरूप २० मार्च को बेगम हजरत महल तथा मौलवी अहमद उल्ला शाह को लखनऊ खाली करना पड़ा। उस समय नाना साहब के साथ अशरफ अली तथा बाबा भट्ट थे। अशरफ अली मुहम्मद ईशाक के भाई तथा कानपुर जिले के भूतपूर्व थानेदार थे। बरेली में नाना साहब ने खानबहादुर खाँ को पूर्ण सहयोग दिया। अपने परिवार को छोड़कर वह कुछ समय के लिए अलागंज (अल्लाहगंज—फर्रुखाबाद जिले में) चले गये। अनेक स्रोतों से अंग्रेजों को यह सूचना मिल गयी कि नानासाहब बरेली में पहुँच गये थे।[1]

दुर्भाग्यवश २४ मार्च को नवाब खानबहादुर खाँ के बारूदखाने में विस्फोट हो जाने से ६३ व्यक्तियों की तत्काल मृत्यु हो गयी। खानबहादुर स्वयं बीमार हो गया था। परन्तु नाना साहब के बरेली आने से उसका उत्साह बढ़ा। नाना

१. "दी फ्रेन्ड आव इन्डिया"—दिनांक १५ अप्रैल १८५८ ई० के दैनिक समाचार में "दि देहली गजट" से उद्धृत सूचना से ज्ञात हुआ कि नाना साहब बरेली २४ मार्च को पहुँचे थे। अंग्रेजों द्वारा प्रकाशित बुलेटिन के अनुसार नाना साहब के साथ १४ बैलगाड़ियाँ सामान से लदी हुई थीं और उन्होंने लेखराज के मकान पर विश्राम किया। "दी ढाका न्यूज" में प्रकाशित आगरे के एक तार में बताया गया कि नाना साहब सूरज के मकान में ठहरे थे। संभवतः नाना साहब ने बरेली आकर गवर्नमेन्ट कालेज के अतिरिक्त इन दोनों स्थानों पर भी अपने गुप्त निवास का प्रबन्ध किया हो।

के अतिरिक्त बरेली में शीघ्र ही शाहजादा फीरोजशाह, मैनपुरी के राजा तेजसिंह; बुलन्दशहर-मेरठ के वलीदाद खाँ तथा बाँदा व फर्रुखाबाद नवाबों के कई अधिकारी वहाँ जमा हो गये। स्थानीय ठाकुरों में जो खानबहादुर खाँ के विरुद्ध रोष उत्पन्न हो गया था, और साम्प्रदायिक भावना उत्तेजित हो गयी थी, उसे शान्त किया गया। हिन्दुओं को सान्त्वना देने के लिए नाना साहब के प्रभाव से गोवध बन्द करा दिया गया। १४ अप्रैल को शासकीय बुलेटिन से ज्ञात होता है कि नगर का प्रबन्ध नाना साहब के परामर्श से हो रहा था।[१] बहुत से बन्दियों को रिहा कर दिया गया था। नाना साहब को २५०) प्रतिदिन अपने व्यय के लिए मिलते थे, तथा १०,०००) की धनराशि फतेहगढ़ पर आक्रमण करने के लिए मिली थी।

तत्कालीन सभी विश्वस्त सूत्रों से पता चलता है कि नाना साहब बरेली में सर्वेसर्वा थे तथा खानबहादुर उनकी आज्ञा पालन करते थे। नाना ने बरेली पहुँच कर बहुत से सिक्खों का एक दल बनाया, ४० तोपें एकत्र कीं; तथा १०,००० मन बारूद जमा की। रुहेलखण्ड में यह भी प्रचलित हो गया था कि नाना साहब ने अपने भाई बालाराव को गोण्डा-बहराइच भेज कर नेपाल के राणा जंगबहादुर को अपनी ओर मिला लिया है।[२]

बदायूँ में नाना साहब

नाना साहब के बरेली पहुँचने तथा सक्रिय होने के समाचार अंग्रेजों को मिले परन्तु उनकी चालें रहस्यमय ही रहीं। आगरा में स्थित ई० ए० रीड को १९ अप्रैल १८५८ के अलीगढ़ के कलेक्टर द्वारा भेजे गये एक तारवाहक संदेश से ज्ञात हुआ कि नाना साहब बदायूं पहुँच गये। परन्तु २१ ता० को सोरों से एक जासूसी दूत ने सूचना दी कि नाना साहब बदायूं नहीं पहुँचे वरन् आँवला तथा बदायूं के बीच

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड ५ पृ० ४३५।

२. रीड द्वारा निष्कान्त डेली बुलेटिन: मार्च-जुलाई १८५८, सचिवालय अभिलेख—कक्ष लखनऊ।

हिन्दू पैट्रियट—दिनांक अप्रैल २९, १८५८, पृ० १३२।

दी फ्रेन्ड आव इन्डिया—दिनांक अप्रैल २९, १८५८, पृ० ३८९।

दी देहली गजट—दिनांक अप्रैल २९, १८५८।

दी फ्रेन्ड आव इन्डिया—दिनांक मई ६, १८५८, पृ० ४१४ में उद्धृत।

में बिसौली नामक स्थान पर एक किले की मरम्मत करा रहे थे। उस पर चार तोपें भी चढ़ा दी गयी थीं। उस किले में २०० सैनिक कार्य कर रहे थे। परन्तु २५ ता० को फतेहगढ़ से अंग्रेजों को यह सूचना मिली कि नाना घुड़सवारों के साथ गंगा पार कर रहे थे। इन विभिन्न संदेशों से ज्ञात होता है कि नाना साहब के वास्तविक भ्रमण कार्यक्रम का किसी को पता नहीं चल पाता था। केवल अनुमानतः एक स्थान से दूसरे स्थान को तार-वाहक संदेश भेजे जा रहे थे। प्रत्येक अंग्रेज अधिकारी को भय था कि नाना साहब उसी की ओर आ रहे थे। नाना साहब के नाम से वह भयातुर रहते थे।

अन्तिम झड़प

मई के प्रथम सप्ताह में नाना साहब का मुहमदी की ओर तथा खानबहादुर का पीलीभीत की ओर आना-जाना सुना गया। आगरा से एक संवाददाता ने कलकत्ता के दैनिक समाचार-पत्र में लिखा कि नाना साहब बरेली से सपरिवार दोआब क्षेत्र में प्रविष्ट होने वाले थे।[1] सूरजपुर घाट पर गंगा पार करने का विचार था। बरेली में उस समय लगभग १ लाख सैनिक थे तथा ७० या ७२ तोपें थीं। सेना का नेतृत्व शाहजादा फीरोजशाह, खानबहादुर खाँ तथा नाना साहब कर रहे थे। प्रथम दोनों अंग्रेज सेनापति को मजा चखाने के चक्कर में थे। परन्तु नाना साहब पुनः बच निकल कर अज्ञातवास की योजना बना रहे थे। फीरोजशाह ने रामपुर क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। बहुत से क्रान्तिकारी सैनिक नैनीताल की ओर बढ़ गये।

फरीदपुर

६ मई १८५८ के एक तारवाहक संदेश से ज्ञात होता है कि नाना साहब ने बरेली से १३ मील दूर फरीदपुर नामक स्थान पर मोर्चा लिया। पहले क्रान्तिकारियों का यही विचार था कि शाहजहाँपुर, मुरादाबाद तथा बदायूँ से आते हुए अंग्रेजों का मार्ग में ही सामना किया जाये। फलतः नाना साहब भी आगे बढ़े परन्तु फिर खानबहादुर खाँ ने यही निश्चय किया कि सब जमकर बरेली में ही युद्ध करें।

बरेली का पतन

५ मई तक अंग्रेजों से अन्तिम मोर्चा लेने का निश्चय हो गया था। खानबहादुर

१. दी फ्रेन्ड आव इन्डिया : २७ मई १८५८, पृ० ४८१।

ने स्वयं अपनी छापामार युद्ध की नीति की अवहेलना की। उसने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त किया। प्रथम पंक्ति तोपों से लैस पुल की रक्षा के लिए नियुक्त थी; दूसरी पंक्ति बरेली नगर की सुरक्षा कर रही थी। प्रथम पंक्ति अंग्रेजों के प्रहार को सहन न कर सकी, परन्तु द्वितीय मोर्चे पर गाज़ियों ने अद्भुत पराक्रम दिखाया। सिरों पर हरे साफे बाँधे, हाथों में नंगी तलवारें लिए, गाज़ी अंग्रेजों पर टूट पड़ें। वह 'दीन दीन' के नारे लगा कर संहार करने लगे। वालपोल तथा कैमेरान सेनानायक भी घायल हो गये। कुछ समय तक के लिए भीषण मारकाट मचती रही।[1]

कालिन कैम्पबेल ने त्रस्त अंग्रेज सैनिकों को युद्धस्थल में डटे रहने का आह्वान किया। संगीनों से गाजियों को मारने का आदेश दिया व ६ ता० को पूरे बल से बरेली पर आक्रमण किया। इसी समय मुरादाबाद तथा अन्य स्थानों से सहायता आ गयी। सबसे बड़ा, प्रधान सेनापति का, तोपों का काफिला था जो अंग्रेज सैनिकों के निर्देशन में बरेली तक पहुँचा। क्रान्तिकारियों ने अंग्रेज सैनिकों का डटकर सामना किया परन्तु अन्त में वह धैर्य खो बैठे। अंग्रेजों की विजय हुई। जीत का मुख्य कारण अंग्रेजों की तोपों का काफिला था। इसी के बल पर अंग्रेजों ने २० सितम्बर १८५७ को दिल्ली, तथा २० मार्च १८५८ को लखनऊ जीता था। बरेली में भी क्रान्तिकारी अंग्रेजों की उत्तम तोपों, बन्दूकों, एवं नयी कारतूसों के सामने रुक न सके। जिन बन्दूकों (एनफील्ड राइफल) एवं कारतूसों के विरुद्ध सैनिकों ने विद्रोह किया था, उन्हीं ने उनका सर्वनाश कर दिया।

क्रान्तिकारी नेताओं के सम्मुख बरेली छोड़कर भागने के सिवाय कोई चारा नहीं था। ७ ता० को अंग्रेजों ने बरेली पर अधिकार जमा लिया। उस समय उन्हें पता चला कि खानबहादुर खाँ अपने सहायकों व अन्य नेताओं के सहित बरेली से कूच कर गये थे। नाना साहब भी पहले ही सुरक्षित स्थान को चले गये थे। कुछ सूत्रों के आधार पर वह मुहमदी में निवास कर रहे थे। परन्तु बरेली के पतन के पश्चात् उनका मुहमदी में रहना ठीक नहीं था। फलतः वह वहाँ से भी कूच कर गये। अंग्रेजों को उनका रहस्य तथा उनके अज्ञात शिविर का पता नहीं चल सका। बरेली का पतन अवश्य हुआ, परन्तु क्रान्तिकारियों का विनाश नहीं हुआ। वह पुनः बिखर गये। जो पुनः युद्ध के लिए आह्वान था।[2]

१. डब्लू० एच० रसेल : "माई इन्डियन म्यूटिनी डायरी"—अध्याय २१, पृ० १३८ से १४७ तक।

२. दी फ्रेन्ड आव इंडिया—२७ मई १८५८—पृ० ४८१।

नाना साहब तराई की ओर

१० मई १८५८ ई० को अलीगढ़ से प्रेषित संवादों के आधार पर ज्ञात हुआ कि नाना साहब तराई की ओर कूच कर गये। परन्तु मेरठ के संदेश से पता चला कि वह पुनः अवध की ओर चले गये।[१] इतना तो अवश्य था कि नाना साहब ने अपना मुख्य दल परिवार-सहित तराई की ओर भेजा। उनके पीछे खानबहादुर खाँ; शोभाराम; फीरोजशाह तथा बन्दे खाँ इत्यादि थे।

११ मई को शाहजहाँपुर के क्षेत्र में पुनः अंग्रेजों से युद्ध हुआ। नाना साहब भी क्रान्तिकारियों से आ मिले। समस्त मुस्लिम जनता भड़की हुई थी।[२] फलतः शाहजहाँपुर के लिए एक बार पुनः संघर्ष हुआ। खानबहादुर तथा मौलवी अहमद उल्ला शाह भी वहीं आ गये। लोधापुर में क्रान्तिकारियों ने अपना शिविर बनाया। १५ मई तक नाना साहब तथा मौलवी वहीं मोर्चा डाले रहे।[३] दूसरी ओर बीसलपुर तथा पीलीभीत में रुहेल्ला पठान क्रान्तिकारियों का जमवट था। शाहजहाँपुर में अंग्रेजों पर दो तरफ से आक्रमण हुआ। उत्तर तथा उत्तर-पूरब। घमासान लड़ाई हुई। क्रान्तिकारियों ने बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया। उन्होंने रक्नौत नदी को म्हाऊ घाट पर पार करके, अंग्रेजों की ८२वीं सेना पर आक्रमण किया। उनकी घुड़सवार सेना ने अंग्रेजों की सेना को घेर लिया व उनके रास्ते रोक दिये। ९ दिन तक उनकी वही दुर्दशा रही। परन्तु बरेली से कुमुक व सेना आने पर उनकी जान बची। मौलवी अहमद उल्ला शाह ने भी अंग्रेजों की आफत मचा रखी थी।[४] १७ मई को जनरल जोन्स पर आक्रमण हुआ। परन्तु अंग्रेजों को सहायता प्राप्त हो जाने से क्रान्तिकारियों को पुनः पीछे हटना पड़ा। नाना साहब खानबहादुर तथा शोभाराम शाहजहाँपुर जिले में पीपलपुर स्थान को कूच कर गये। बदायूं में इस्लाम नगर में क्रान्तिकारियों का जमाव हो गया। परन्तु इन सब स्थानों के होते हुए भी मुहमदी में क्रान्तिकारियों का प्रधान मुख्यावास बना रहा। स्वयं बेगम हजरत महल ने भी इनका साथ दिया और अंग्रेजी सेना के प्रधान सेनापति का

१. रीड द्वारा प्रकाशित डेली बुलेटिन मार्च-जुलाई १८५८।
२. रीड द्वारा प्रेषित तार—१८५८ दिनांक ११ मई।
३. वही : मार्च जुलाई १८५८—डेली बुलेटिन।
४. ई० ए० रीड द्वारा प्रकाशित डेली बुलेटिन—मार्च - जुलाई १८५८।

पूरब की ओर सबसे बड़ा द्वार था; जहाँ एक घण्टा लटका हुआ था। दूसरा बड़ा द्वार उत्तर की ओर था। इन दोनों द्वारों पर दो तोपें रखी थीं। उस दुर्ग के चारों ओर सेना तैनात थी, जिसकी संख्या लगभग १६,००० थी। उसमें १५०० घुड़सवार, तथा अन्य नजीब व कार्यकर्त्ता भी थे। दुर्ग के चारों ओर ६० या ७० शुत्र सवार थे; १७ तोपें थीं, जिनमें से १३ दुर्ग के बाहर थीं, उनमें ५ बड़ी तोपें थीं और १० बैलों की जोड़ी द्वारा खींची जाती थीं। चुर्दा व पयागपुर के राजा दुर्ग की देख-रेख करते थे। बाँदी के राजा भी उन्हीं के साथ थे। नानासाहब तथा अन्य क्रान्तिकारी भी २४ मई को मुहमदी के पतन के पश्चात् तराई की ओर कूच कर गये।[१] फीरोज शाह शाहजादा व खानबहादुर खाँ भी बच निकले।[२]

नाना साहब की रहस्यमय चालें

लखनऊ की पराजय के पश्चात् जून १८५८ में क्रान्तिकारी सेनाओं की परिस्थिति और भी बिगड़ गयी। ग्वालियर की अल्पकालीन विजय के पश्चात् झाँसी की रानी की मृत्यु ने बुन्देलखण्ड व मध्यभारत में क्रान्तिकारियों के उत्साह को भंग कर दिया। राव साहब व तात्या टोपे तत्पश्चात् छापामार लड़ाई में संलग्न हो गये। खान बहादुर खाँ बरेली खाली कर चुके थे। ५ जून १८५८ ई० को पोवायाँ में मौलवी अहमद उल्ला शाह की मृत्यु के पश्चात नाना साहब, अवध की बेगम, मम्मू खाँ तथा फीरोजशाह शहजादे ने नेपाल की तराई की ओर कूच किया। जून में ब्रिजीस कद्र की ओर से राणा जंगबहादुर से पत्र-व्यवहार किया गया। निम्नलिखित तिथियों को पत्र लिखे गये[३]:—

(१) ९ मई १८५८ ई० : रमज़ान अली खाँ, मिर्जा ब्रिजीस कद्र बहादुर का पत्र महाराजा नेपाल के नाम दिनांक ७ जेठ संवत १९१५।

(२) ११ मई १८५८ ई० : मिर्जा रमज़ान अली (ब्रिजीस कद्र) का पत्र महाराजा जंगबहादुर को दिनांक १३ जेठ बदी, संवत १९१५।

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश-खण्ड–४ पृ० ५२२–५२३

२. वही : पृ० ५२३–"दी फ्रेन्ड आव इन्डिया–"से उद्धृत्।

३. फारेन सीक्रेट कन्सलटेशन्स–२७ अगस्त १८५८– संख्या ९७–१०८ नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली। फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : पृ० सं० ४४४–४४९।

(३) १९ मई १८५८ ई० : अली मुहम्मद खाँ, लखनऊ के वाईसराय का पत्र महाराज जंगबहादुर को दिनांक ५वीं शव्वाल १२७४ हिज़री।

(४) ६ जून १८५८ ई० : अवध के नवाब के दूत मौलवी मुहम्मद सरफ़राज़ अली का महाराजा जंगबहादुर के नाम पत्र–बिना दिनांक के : पहुँचने की तिथि ६ जून।

उपर्युक्त पत्रों द्वारा राणा जंगबहादुर से क्रान्तिकारियों द्वारा संपर्क स्थापित करना एक रहस्यमय कूटनीति की चाल थी। नाना साहब तथा बेगम हजरत महल को स्पष्ट हो गया था कि अंग्रेजों ने नेपाल के राणा को उनके विरुद्ध भड़का कर लखनऊ के युद्ध में ९,००० गुरखाली सेना का योग प्राप्त किया। लखनऊ से निष्कासन के उपरान्त नाना साहब तथा अन्य क्रान्तिकारियों को विषम स्थिति का सामना करना पड़ा। चारों ओर से घिर जाने का भय देखकर उन्होंने नेपाल की तराई में शरण लेने का निश्चय किया। मरता क्या न करता। यह जानते हुए कि राणा ही के कारण उनकी पराजय हुई, उन्हें राणा की ही सहायता लेने के लिए बाध्य होना पड़ा।

पत्रों से ज्ञात होता है कि क्रान्तिकारियों ने राणा से पुरानी बातें भूल जाने की प्रार्थना की; अंग्रेजों द्वारा किये गये अत्याचारों की ओर ध्यान दिलाया, मंदिरों व इमामबाड़ों को विध्वंस करने की नीति का विरोध किया; हिन्दू व इस्लाम धर्म पर किये गये आघातों की ओर ध्यान दिलाया और अंग्रेजों का पक्ष छोड़ देने की प्रार्थना की। अन्तिम पत्र में ७ फारसी में लिखे गये पत्रों की ओर तथा २ हिन्दी के पत्रों की ओर ध्यान दिलाया गया। उत्तराकांक्षी होते हुए यह आशा की गयी कि वे हिन्दू या इस्लाम धर्म की सुरक्षा के लिए उनकी सहायता करेंगे तथा काफिरों का नाश करने में सहयोग देंगे।

राणा जंगबहादुर ने १७ जुलाई १८५८ ई० को स्पष्ट शब्दों में उत्तर देते हुए सहायता करने से इनकार कर दिया।[१] अंग्रेजों का राणा पर अनवरत प्रभाव पड़ रहा था। काठमान्डू में स्थित अंग्रेजी राजदूत बराबर राणा को क्रान्तिकारियों के विरुद्ध भड़का रहा था। राणा ने यह अस्वीकार किया कि अंग्रेजों ने हिन्दू व मुसलमान पर अत्याचार किया, दूसरी ओर उन्हें कृतघ्नी घोषित किया, संसार-व्यापी ब्रिटिश

१. फारेन सीक्रेट कन्सल्टेशन–२७ अगस्त १८५८–संख्या–९७–१०८, नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

सत्ता की प्रशंसा की; और लिखा कि नेपाल शासन तथा स्वयं राणा क्रान्तिकारियों की सहायता करने में नितान्त असमर्थ हैं। पत्रोत्तर की भाषा से स्पष्ट ज्ञात होता है कि राणा का पत्र अंग्रेजों द्वारा लिखाया गया था। उसमें यह भी धमकी दी गयी थी कि यदि नाना साहब तथा बेगम अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करेंगे तो उन्हें कोई राजा शरण नहीं देगा, केवल मृत्यु ही उनका अन्त होगा। राणा को इस प्रकार उत्तर देने के लिए बाध्य होना पड़ा। जैसे-जैसे क्रान्तिकारी नेता तथा सैनिक तराई के जंगलों में छिपने लगे उन्हें, नेपाली सीमा से बाहर निकालने के लिए राणा उपाय सोचने लगा। राणा को नानासाहब से सबसे अधिक भय था। इसलिए नाना साहब को बेगम हजरत महल का सहारा लेना पड़ा। फलतः सर्वप्रथम राणा व क्रान्तिकारियों में जो पत्र-व्यवहार हुआ वह ब्रिजीस कद्र के नाम से ही हुआ।

राणा का शुष्क तथा निराशाजनक उत्तर पाकर नाना व बेगम बहुत हताश हुए। परन्तु करते भी क्या? अंग्रेजों ने अवध से क्रान्तिकारियों के निष्कासन कराने के लिए प्रधान सेनापति लार्ड क्लाईड को बृहत सेना के साथ लखनऊ भेजा गोरखाली सैनिकों के वापिस चले जाने के बाद कपूरथला इत्यादि देशी राज्यों के सैनिकों की सहायता से अवध में शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। दूसरी ओर क्रान्तिकारियों ने अवध के विभिन्न क्षेत्रों में छापामार-युद्ध चालू किया। नाना साहब व बेगम ने बहराइच के दुर्गों में शरण ली। परन्तु परिस्थिति वश उन्हें अन्त में दुर्ग छोड़कर तराई के बीहड़ जंगलों की खाक छाननी पड़ी। अंग्रेजी सेना तराई की ओर बढ़ी और बहराइच तक पहुँची तो उन्हें ज्ञात हुआ कि इन्था तक इतना घना जंगल था कि आगे बढ़ना कठिन था। कठिनाई के साथ जब अंग्रेजी सेनाएँ नानपारा तक बढ़ीं तो नाना साहब अपने दल के साथ चुरदा किले की ओर चले गये। वहाँ उन्होंने अवध की बेगमों को कमिश्नर से समझौते की बात करने की आज्ञा दी। परन्तु ब्रिटिश इससे भी सन्तुष्ट न हुए। वे तो नाना साहब को बन्दी बनाना चाहते थे। उत्तर में नाना साहब तथा दक्षिण में तात्या तो उनके गले में फाँसी के समान थे।

बहराइच में नाना साहब

दिसम्बर माह तक बेगम हजरत महल अपने पुत्र सहित बौंडी गढ़ में निवास करती रहीं। यहीं से क्रान्ति के सारे सूत्रों का संचालन करती रहीं। इसी स्थान से उन्होंने नवम्बर माह के अन्तिम चरण में महारानी विक्टोरिया के १ नवम्बर १८५८ के घोषणा पत्र का ओजस्वी व प्रभावशाली प्रत्युत्तर घोषणा-पत्र निकाला

था। फल-स्वरूप अवध के अन्दर विभिन्न क्षेत्रों में आश्चर्यजनक युद्ध जारी रहा। क्रांतिकारियों के साथ जनता की पूर्ण सहानुभूति थी, वह जहाँ जाते थे वहाँ बिना कमसरियट के प्रबन्ध के उनके भोजन इत्यादि की व्यवस्था हो जाती थी। उन्हें अंग्रेजों की चालों की गुप्त से गुप्त सूचनाएं अफवाहों के रूप में बिना प्रयास के मिल जाती थीं। जिस समय ब्रिटिश सेनाएं घाघरा पार करके बहराइच की सीमा में प्रविष्ट हो रही थीं, उस समय बहराइच नगर में तथा आसपास के क्षेत्र में क्रान्तिकारियों का अच्छा खासा जमघट था। नाना, बेगम, मम्मूखाँ, खान बहादुरखाँ, बालाराव के अतिरिक्त काजिम हुसैन खाँ, भटवामऊ जमींदार तजम्मुल हुसैन खाँ, गोंडा के राजा देवी बख्श, बरुवा के ठाकुर गुलाब सिंह, मोहाना के राजा दिग्विजय सिंह, रोइया के राजा नरपतसिंह, राणा बेणी माधव बख्श बहादुर, चुरदा के राजा जीत सिंह, चौधरी मुसाहब अली, अनन्दी कुरमी, अपने-अपने स्थानों से युद्ध करने के उपरान्त बौंडी में आ पहुंचे थे।

लार्ड क्लाइड ने सर होप ग्रान्ट से परामर्श किया व क्रान्तिकारियों की सैनिक शक्ति को आँका। जाँच से ज्ञात हुआ कि बेगम व नाना साहब अकेले नहीं थे। उनके साथ सहस्त्रों सैनिक भी थे।[१] फलस्वरूप ब्रिटिश सेना ने बहराइच की ओर बढ़ने का निश्चय किया। १९ दिन १९ मील रोज चलने के उपरान्त १६ दिसम्बर को तराई में पहुँचे। २४ दिसम्बर १८५८ ई० को अंग्रेजी सेनाएँ इन्था पहुँच गयीं। नाना साहब का दल, बेगम व सेना की टुकड़ी सब ही नेपाल के घने जंगलों में विलुप्त होगये।[२]

लार्ड क्लाइड ने नेपाल की सीमा पर पहुँच कर नानासाहब की सेना की तोपों व बन्दकों की गरज सुनी परन्तु आगे बढ़ने का साहस न किया। २५ दिसम्बर १८५८ ई० को बैसवारा के प्रसिद्ध राणा बेनी माधो सिंह घूमते-घूमते अंग्रेजों की पीछा करने वाली टुकड़ियों से बचते-बचते, अवध की बेगमों के डेरे में आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने जंगल के मिट्टी के किले में मोर्चा बनाया व अंग्रेजी सेना की प्रतीक्षा करने

१. रसैल :—"माई इन्डियन म्यूटिनी डायरी"—पृ० २५४–२५५, १९५७ संस्करण।

होप ग्रान्ट्—"इन्सीडेन्ट्स इन दी सीप्वाय वार"–१८५७–५८, १८७३ई० में प्रकाशित।

२. रसैल: विलियम हार्वड : "माई इंडियन म्यूटिनी डायरी"—१८६० खण्ड २–पृ० ३५९, १९५७ संस्करण–पृ० २५६–२५७।

लगे। इस समय अंग्रेजों के अनुमान के अनुसार भारतीय सेना में लगभग २०,००० सिपाही थे, ९ तोपें अग्रिम भाग में व १३ पृष्ठभाग में थीं। यह डेरा दो-तीन मील जंगलों में फैला हुआ था। साथ में ८००-९०० सवार, व हाथी, ऊँट तथा बैल गाड़ियाँ भी थीं।[1] लार्ड क्लाइड की सेना का सामाचार पाते ही भारतीय सेना जंगलों की ओर बढ़ गयी। २६ दिसम्बर की सायंकाल को क्रान्तिकारियों ने सहसा ४ तोपों से गोलीबारी की और जंगलों में बढ़ गये। इस घटना में लार्ड क्लाइड का कुल्हा उतर गया। क्रान्तिकारी इतने छितरे हुए थे कि उनपर आक्रमण असंभव था।

बरजिड़िया किले में

इस संकट-काल में नाना साहब तथा उनके साथियों की चुरदा के राजा ने बहुत सहायता की। दिसम्बर माह में नाना राजा के जंगल-दुर्ग बरजिड़िया में छिपे रहे।[2] अंग्रेजों को इस गुप्त स्थान का उस समय पता चला जब नाना साहब उसे छोड़ कर चले गये। ३० दिसम्बर १८५८ ई० को नाना साहब तथा बेनी माधो ने नानपारा से २० मील उत्तर में बाँकी नामक स्थान पर डेरा डाला। जब नाना साहब को यह ज्ञात हुआ कि अंग्रेजों की सेना आगे बढ़ रही है तो उन्होंने ८ हाथियों पर अपना सामान लदवा कर राप्ती की ओर कूच किया। अंग्रेजी सेना बाँकी की ओर बढ़ी, जंगलों में चक्कर काटती रही परन्तु क्रान्तिकारी के गुप्त स्थानों का पता न चला सकी। बरजिड़िया के दुर्ग पर पहुँच कर उन्होंने बहुत छानबीन की। किले की दीवारें मिट्टी की थीं और बाहरी दीवारों पर गुम्बद बने थे परन्तु उनमें कोई तोपें नहीं थी। अंग्रेजों ने आसपास के गाँव को व दुर्ग के अन्दर के मकानों को जला दिया।

बरजिड़िया से अंग्रेज सैनिक मैंजिडिया की ओर बढ़े। उन्हें सच्ची सूचनाएँ प्राप्त नहीं हो सकीं। वहाँ भी मैंजिडिया पहुँच कर एक मिट्टी का दुर्ग ही मिला जहाँ अंग्रेजों ने अपनी भारी तोपें रखीं। दुर्ग में से क्रान्तिकारी अंग्रेजों की चालों की निगरानी कर रहे थे, वहाँ संभवतः लगभग १०,००० सैनिक थे। उनका निर्देशन एक नायक द्वारा हो रहा था जो बैंगनी रंग का रेशमी वस्त्र पहने था।[3] उसके चारों ओर अंगरक्षक थे। सहसा क्रान्तिकारियों की एक तोप

१. रसैल: माई इन्डियन म्यूटिनी डायरी पृ० ३६७–३६८, १९५७ संस्करण पृ० २६१–२६२।

२. वही : पृ० २६५, नवीन संस्करण १९५७।

३. वही : पृ० २६८–२६९, नवीन संस्करण १९५७ लन्दन।

से गोला छुटा व अंग्रेजों के ३०० गज पीछे गिरा। किले की ओर बलूची सैनिकों को बढ़ा कर अंग्रेजों ने गोलीबारी आरम्भ की : ४ बजे तक युद्ध जारी रहा। उसी के उपरान्त समाचार मिला कि दुर्ग खाली कर दिया गया। अंग्रेजों ने उस पर अधिकार कर लिया। उसमें बहुत सी युद्ध की सामग्री, रसद का सामान भी पर्याप्त मात्रा में एकत्र था। आटा, चावल तथा अन्य अनाज सभी कुछ था। एक २४-पाउन्डर तोप भी पायी गयी। दुर्ग को धराशायी कर दिया गया। नाना साहब व राजा का कहीं पता न चला।

राप्ती की लड़ाई

अंग्रेजों की बढ़ती हुई सेना से नाना साहब तथा अन्य क्रान्तिकारियों को बड़ी चिन्ता हुई। ७२वीं बंगाल पदाति सेना के एक सैनिक के कथनानुसार ज्ञात हुआ कि नाना साहब ने तोपों की आवाज सुनकर ही घने जंगलों की ओर कूच करने का निश्चय कर लिया था। नाना साहब अंग्रेजों के शिविर से दो मील जंगलों के अन्दर थे। उन्होंने अपने अंगरक्षकों व सामान से लदे हुए हाथियों को राप्ती की ओर बढ़ने की आज्ञा दी। फलस्वरूप क्रान्तिकारी राप्ती के आसपास नेपाली सीमा के किनारे-किनारे २३ मील तक फैल गये। अंग्रेजों ने बाँकी व भिगा की ओर बढ़ने की घोषणा की। भारी तोपों को पीछे छोड़ना पड़ा। सामान ले जाने के लिए १५० हाथियों का प्रयोग किया गया, लार्ड क्लाइड चोट लगने के कारण डोली में थे। गुप्त रूप से आक्रमण करने के ध्येय से रात्रि को ही कूच किया गया। सबेरा होते होते बाँकी पहुँचे। वहाँ पर क्रान्तिकारियों की अश्वारोही सेना का एक दल श्वेत वस्त्र धारण किये मुस्तैद था। ८-३० बजे प्रातःकाल गोलाबारी आरम्भ हुई। बीच में आधे मील का जंगल था। इस झड़प में अंग्रेजों ने ३ तोपें छीन लीं। परन्तु क्रान्तिकारी सैनिक दो दलों में पीछे हटे तथा राप्ती नदी के ऊपर एक गाँव में जा डटे। वहाँ से ६ तोपों द्वारा अंग्रेजों पर गोलाबारी प्रारम्भ हुई। तोपची के साथ बन्दूकची भी क्रियाशील हुए। अंग्रेजों व पंजाबियों ने नदी के इस तट से क्रान्तिकारियों का सामना करने का प्रयत्न किया। वह घोड़ों पर सवार होकर बड़ी तेजी से नदी की भाँति ऊपर नीचे दौड़े परन्तु नदी पार करना संभव न था। बहुत से घुड़सवारों ने राप्ती में घुसकर युद्ध किया। क्रांतिकारियों ने बड़ी वीरता दिखायी। पानी में घुस-घुस कर घुड़सवारों को क़त्ल किया गया। रसैल ने अपनी डायरी में बड़ा मर्मस्पर्शी वर्णन किया है।[1] इस प्रकार के दृश्य केवल

१. रसैलः "माई इन्डियन म्यूटिनी डायरी" : पृ० २७५—२७६ नवीन संस्करण १९५७

बीहड़ युद्धों में दृष्टिगोचर होते हैं। तीव्र वेग से बहने वाली राप्ती ने क्रान्तिकारियों की बड़ी सुरक्षा की। इसी संघर्ष में मेजर हार्न डूबकर मर गया तथा कप्तान स्टीस्टड नदी में बह गया। सारी नदी में सैनिक लोथ-पोथ हो रहे थे। क्रान्तिकारियों के ४०-५० सैनिक खेत आये। परन्तु अंग्रेजों की हिम्मत टूट गयी। जैसा कि रसैल लिखता है, तीस मील चलने के पश्चात वे थके हुए थे। फलस्वरूप १ बजे के लगभग अश्वारोहियों को पीछे हटने की आज्ञा मिली। वह लौटकर बाँकी पहुँचे जहाँ शिविर में अन्य सैनिक बसर कर रहे थे। ३१ दिसम्बर से ४ जनवरी तक बाँकी अंग्रेज सैनिकों का शिविर बना रहा। वापस लौटने पर वे लोग बहुत दिन तक वहाँ ठहरे रहे। प्रधान सेनापति को केवल एक चिन्ता थी कि राप्ती की पराजय के पश्चात कहीं क्रांतिकारी दर्रों से नीचे न उतर आयें। इसलिए उसे बन्द रखना आवश्यक था।

रसैल की डायरी में दिये गये विश्वस्त वर्णन से ज्ञात होता है कि क्रांतिकारियों के पास कम से कम १५ या २० तोपें अब भी थीं और वह राप्ती के उस पार अपना मोर्चा लगाये थे। अंग्रेजों के सहसा आक्रमण से उन्हें धक्का अवश्य पहुँचा परन्तु शीघ्र ही क्रान्तिकारी बेगम, वेणी माधो तथा मेंहदी हुसैन से जा मिले। अंग्रेजों को उनके गुप्त स्थानों का पता न चल सका।

नाना साहब तथा नैपाल के अधिकारी

नाना साहब तथा अवध की बेगम की राणा जंगबहादुर से लखनऊ के युद्ध में मुठभेड़ हुई थी। उस समय राणा अंग्रेजों के चंगुल में था, फलतः उसने भारतीय क्रान्ति के नेताओं की बातें न सुनीं। प्रथम पत्र-व्यवहार में भी राणा ने ब्रिजीस कद्र इत्यादि को कोरा जवाब दिया परन्तु नैपाल पहुँचने के पश्चात जब राणा को अंग्रेजों से मुंह-माँगा प्रसाद न मिला तो वह अन्यमनस्क सा हो गया। नाना साहब के दलबल सहित नैपाली सीमा में घुस आने के पश्चात भी वह चुपचाप बैठा रहा। राप्ती के ही आसपास गोरखों की दो छावनियाँ थीं—और लगभग राणा की तीन फौजें बेगम के शिविर के समीप ही थीं। परन्तु उन्होंने अंग्रेजों की कोई सहायता नहीं की। रसैल के शब्दों में राणा की मित्रता अब क्रियाशील नहीं थी। लन्दन टाईम्स के संवाददाता ने स्पष्ट लिखा है कि आश्चर्य की बात थी कि राणा से ऐसी शर्तों पर सहायता स्वीकार की गयी थी कि वह विजय के पश्चात मनमानी माँगें प्रस्तुत करने लगे। उपलब्ध प्रपत्रों से ज्ञात होता है कि सहायता लेने के समय लार्ड कैनिंग ने राणा को २०० मील का तराई का भाग देने के लिए कहा था। परन्तु लखनऊ की पराजय के पश्चात यह पूरा नहीं किया गया। इन्हीं परिस्थितियों के कारण

विवश होकर लार्ड कैनिंग ने लार्ड क्लाइड को नैपाली सीमा में प्रविष्ट होने की अनुमति नहीं दी। राप्ती की पराजय के पश्चात अंग्रेजों का लौटना स्वाभाविक ही था। प्रधान सेनापति ६ माह के अभियान के पश्चात भी न तो राणा बेनी माधो का युद्ध के मैदान में समर्पण करा सके, और न ही बेगम व नाना साहब को बन्दी बना सके। फलतः ७ जनवरी १८५९ को अंग्रेजी सेना हताश होकर नाना साहब को, अवध की बेगम, राणा बेनी माधो तथा मेंहदी हुसैन को सहस्त्रों सैनिक व तोपों के साथ राप्ती के उस पार छोड़कर, दलबल सहित लखनऊ वापस चली गयी।

अध्याय १०

तराई में निवास

राप्ती की विजय के पश्चात जब नाना साहब ने यह देखा कि अंग्रेजी सेना आगे बढ़ने में असमर्थ है और उसे लखनऊ जाने की आज्ञा दे दी गयी है, तो उन्होंने अपने साथियों से विचार विनिमय किया। तराई की कठिनाइयों से भयभीत होने वालों को छूट दे दी गयी कि यदि वह चाहें तो ब्रिटिश शासन के सम्मुख समर्पण करके जीवन-दान प्राप्त कर सकते थे। फलतः नाना साहब तथा बेगम हजरत महल ने नवाब फरुक्खाबाद मेंहदी हुसैन तथा अन्य राजाओं को ब्रिटिश विशेष आयुक्तों से आत्म-समर्पण की वार्ता करने की अनुमति दे दी।

ब्रिटिश शिविर में मेजर बैरो आत्म-समर्पण करने वालों तथा किये हुए क्रान्तिकारियों से घिरा हुआ था। ७ जनवरी १८५९ ई० को लखनऊ कूच करने से पहले नवाब फरुक्खाबाद ने अपने साथियों के साथ राप्ती पार करके मेजर बैरो के सम्मुख आत्म-समर्पण कर दिया। तत्पश्चात मेंहदी हुसैन तथा अन्य क्रान्तिकारियों ने भी समर्पण किया। रसैल ने इस दृश्य का विस्तार से वर्णन किया है और आश्चर्य प्रकट किया है कि कुछ ही समय पहले जो राप्ती पर अंग्रेजों से युद्ध कर रहे थे, वह ब्रिटिश शिविर में आकर आत्म-समर्पण कर रहे थे। इससे स्पष्ट हो रहा था कि सन् सत्तावन की क्रान्ति का अंधड़ समाप्त हो रहा था और दोनों पक्ष थक कर अपने-अपने पृथक मार्गों पर अग्रसर हो रहे थे। क्रान्तिकारियों ने यह निश्चय कर लिया था कि नैपाल की तराई में निवास करके मृत्यु का आह्वान करना अधिक युक्ति-संगत था। जो इस मत से सहमत न थे उन्हें आत्म-समर्पण करने की पूरी छूट थी। दूसरी ओर अंग्रेजों के प्रधान सेनापति ने गवर्नर-जनरल से नैपाल की तराई में आवास करने वाले क्रान्तिकारियों के साथ अग्रिम बर्ताव करने के लिए आज्ञा माँगी-विशेषतः नाना साहब के विषय में अग्रिम कार्यवाही के लिए आदेश माँगे। आदेश

१. रसेल: "माई इन्डियन म्युटिनी डायरी"—पृ० २७८-२७९ नवीन संस्करण १९५७।

आने तक ब्रिटिश सेना के एक दल को, होप ग्रान्ट के नायकत्व में राप्ती की ओर से क्रान्तिकारियों के पुनः प्रत्याक्रमण रोकने के लिए नियुक्त किया गया। यह प्रबन्ध करके लार्ड क्लाइड १८ जनवरी को लखनऊ वापिस आ गया।

राणा जंगबहादुर

बहराइच से लौटने के पश्चात ब्रिटिश शासन ने काठमाण्डू में स्थिति रेजीडेन्ट के द्वारा राणा जंगबहादुर को क्रान्तिकारियों को अपने देश से निकालने के लिए आदेश दिया। १५ जनवरी १८५९ ई० को महाराजा जंगबहादुर ने बेगम को तथा उनके अधिकारियों व अनुयायियों को पत्र लिखा। इसमें स्पष्टतः बताया गया कि ब्रिटिश शासन तथा नैपाली सरकार में मित्रता की सन्धि है, इसलिए यदि क्रान्तिकारी नैपाली सीमा में शरण लेंगे तो उनका हनन किया जायेगा। इतनी विशाल एवं शक्तिशाली सरकार के सम्मुख दुर्बल और निष्कासित राजसत्ता को कौन सहायता दे सकता है। इसके कुछ ही दिन पश्चात् राणा ने ब्रिजीस कद्र के नाम दूसरा पत्र माघ संवत ८, १९१५ दिनांक १५ जनवरी १८५९ को लिखा।[१]

उपर्युक्त दोनों पत्रों के उत्तर में ब्रिजीस कद्र की ओर से निम्नलिखित आशय का पत्र भेजा गया :——

"अपनी सेना, साथी-राजाओं ,तालुकदारों इत्यादि के सहित छितौन आने का निमंत्रण मिला। हम दलबल सहित आपके सम्मुख उपस्थित होंगे। उस समय आपको अंग्रेजों के विश्वासघात के बारे में बतायेंगे।"

उपर्युक्त पत्र भेजने के दूसरे ही दिन दिनांक २ फरवरी १८५९ ई०——२८वीं जमादी-उस-सानी—१२७५ हिजरी——को नाना धोंडो पन्त ने महाराजा जंग बहादुर राणाजी, प्रधान मन्त्री एवं प्रधान सेनापति नैपाल के नाम निम्नांकित पत्र भेजाः——[२]

"आशीश इत्यादि..............

"आपका माघ संवत ८, १९१५ वि० स० दिनांक २६ जनवरी १८५९ का पत्र जिसमें आपने लखनऊ की बेगम को संबोधित करते हुए समस्त राजाओं और तालुकदारों को सेना सहित आमन्त्रित किया था, हस्तगत हुआ, तथा उसका आशय

१. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स्——१५ जुलाई १८५९ संख्या ४१३१ नेशनल आरकाईब्ज, नई दिल्ली।

२. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन——दिनांक ३० दिसम्बर १८५९ संख्या ५४२ नेशनल आरकाईब्ज, नई दिल्ली।

दृष्टव्य हुआ। मैंने आपकी उदारता की प्रशंसा छोटों व बड़ों, सभी से सुनी परन्तु अब तो उसपर मुझे पूर्ण विश्वास है। यद्यपि आपके सातों भाई सर्व-गुण-सम्पन्न हैं परन्तु आप नव ग्रहों में सूर्य के समान हैं। वास्तव में मैंने हिन्दुस्तान के प्राचीन-युगीन सामन्तों के विषय में सुना व वर्त्तमान को देखा, परन्तु आपके समान किसी को नहीं पाया। क्योंकि आपने तो अंग्रेजों को भी सहायता देना अस्वीकार नहीं किया, जो कि सब बातों में आपके विरुद्ध हैं, यद्यपि आपने उनकी प्रार्थना तथा अपने सम्मान के लिए सब कुछ किया। आपके इस उदार कार्य के कारण मुझे पूरी आशा है कि जब मैं अन्य राजाओं व सामन्तों के साथ छितौन में आऊँगा तो हमारे और आपकी सरकार के मध्य में विद्यमान संबंधों को ध्यान में रखते हुए, आप मुझे सहायता देने से मना नहीं करेंगे। जैसा कि कवि कहता है :—

आप, जो शत्रुओं के प्रति भी उदार हैं।
अपने मित्रों को निराश नहीं कर सकते हैं।।

मुझे इस संसार में आपके सिवाय और किसी से आशा नहीं है, हर दृष्टि से आप मेरी क्रियाओं के स्वामी हैं, जो आप उचित समझें मेरे लिए वह करें। ऐसी आशाओं के साथ मैंने अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए आने का निश्चय किया है। अंग्रेजी शासन द्वारा प्रतिज्ञाएँ भंग करना, सन्धि तोड़ना तथा भारतीय राजाओं के प्रति विश्वासघात करने की बातें इतनी प्रसिद्ध हैं कि उन्हें दोहराना व्यर्थ है। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने, भारतवासियों के धर्म व मर्यादा को विनष्ट करने का प्रयत्न किया जिसके फलस्वरूप यह विद्रोह एवं महान विस्फोट हुआ। अपने चलने से पहले मैंने अपने भाई श्रीमन्त महाराजा गंगाधर राव बाला साहब पेशवा बहादुर के द्वारा एक मैत्री-पत्र आपकी सेवा में आपकी आज्ञा प्राप्त करने के लिए भेजा, वह आपको विस्तार से प्रत्येक बात बतायेंगे जबकि आप उनसे भेंट करेंगे।"

ब्रिजीस कद्र के तुरन्त पश्चात् पत्र भेजने का एकमात्र आशय यही था कि नाना साहब अपने विषय में सन्तोषपूर्ण आश्वासन प्राप्त करना चाहते थे। क्योंकि अंग्रेज अनवरत रूप से राणा पर यह प्रभाव डाल रहे थे कि किसी भांति नाना साहब बन्दी बना लिये जायें। दूसरी ओर मेजर बैरो तथा राणा इस प्रकार का भरसक प्रयत्न कर रहे थे कि बेगम हजरत महल आत्म-समर्पण कर दें। इस आशय से मेजर बैरो ने मम्मूखाँ से पत्र-व्यवहार किया और मम्मूखाँ का उत्तर ४ जनवरी १८५९ ई० को लखनऊ-स्थित चीफ कमिश्नर के पास भेज दिया गया। इस पत्र द्वारा बेगम स्पष्ट रूप से जानना चाहती थीं कि उन्हें क्षमादान दिया गया तो किन शर्तों

पर व उनके लिए क्या भत्ता निश्चित हुआ।[1] मेजर बैरो से आत्म-समर्पण संबंधी आश्वासन न मिलने पर पत्र-व्यवहार समाप्त हो गया और बेगम ने नैपाल की तराई में रहने का निश्चय किया। फरवरी १८५९ ई० में सितहा घाट पर अंग्रेजों की सेना से क्रान्तिकारियों की झड़प हुई। उसमें अंग्रेजों ने १४ तोपें छीन ली थीं परन्तु राणा जंग बहादुर ने इसका स्पष्टीकरण देते हुए बताया कि यह तोपें बेगम की मुख्य सेना से नहीं वरन् पृष्ठ भागवाले दल से छीनी गयी होंगी। इसी से अनुमान हो सकता है कि या तो यह संख्या गलत थी अथवा क्रान्तिकारियों के पास तोपें पर्याप्त मात्रा में थीं। कप्तान मेजर वीर भंजन सिंह माँझी ने अपने पत्र संख्या २२ दिनांक १४ फरवरी में बताया था कि २६ तोपें गाड़ दी गयी थीं। वीर भंजन सिंह ने यह भी बताया की अस्वस्थता के कारग समस्त दल शिवपुर में तीन-चार दिन रुक गया था, और २७ फरवरी तक सिकरोला घाट (गंडक तट पर) पर पहुँचने की आशा थी। वर्षा एवं ओले पड़ने के कारण उन्हें अत्यन्त परेशानी थी। वीरभंजन सिंह ने ५५ नायकों की एक सूची भी प्रेषित की।

जनरल बद्री नरसिंह द्वारा प्राप्त एक पत्र द्वारा ज्ञात हुआ कि मम्मू खाँ ने उसे लिखा था कि वह १५,०००) की धन-राशि नकद दे सकते थे तथा सभी राजा व सामन्त कुछ न कुछ भेंट देने के लिए तैयार थे। वह केवल राणा से भेंट करके आश्रय प्राप्त करना चाहते थे। बद्री सिंह ने ऐसी भेंट लेने से मना कर दिया।[2]

वीर भंजन सिंह तथा बद्री नरसिंह द्वारा विस्तृत सूचना प्राप्त करने के पश्चात् राणा जंगबहादुर ने फाल्गुन बदी ६ठी संवत् १९१५, दिनांक २३ फरवरी १८५९ को पुनः ब्रिजीस कद्र, बेगम, नाना साहब इत्यादि को निम्नलिखित आशय का पत्र लिखा :—

"ब्रिटिश शासन से सन्धि के अनुसार दोनों पक्षों को हत्यारों को बन्दी बनाने का 'अनुबन्ध' था। यदि क्रान्तिकारी नायक नैपाली सीमा में रहेंगे तो राणा को उनसे युद्ध करना पड़ेगा। अन्यथा दस दिन के अन्दर सीमा से बाहर हो जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो अंग्रेज व नैपाली मिल कर उन्हें देश से निकाल देंगे। तब तो हथियार डालने पर भी नैपाल में शरण नहीं दी जायेगी और २०

१. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स: १५ जुलाई १८५९: संख्या ४१३, नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

२. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश: खण्ड २ पृ० ५८९ से ५९०।

करोड़ रुपया देने पर भी आश्रय नहीं मिलेगा। जिन क्रान्तिकारियों ने कोई हत्या नहीं की थी उन्हें सिगौली के अंग्रेजों के शिविर में पहुँचा दिया जायेगा।"

परन्तु इन आदेशों का तराई में आवास करने वाले, मृत्यु से खेलते हुए, क्रान्तिकारियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह दलबल सहित मरने-मारने को तैयार थे। बीहड़ जंगल, दुर्गम पहाड़ियां उन्हें ऐसा करने पर बाध्य कर रही थीं। नाना साहब, बेगम, बालाराव इत्यादि अपने दृढ़ निश्चय पर अटल थे। अग्रिम पग उठाने से पहले राणा ने पुनः क्रान्तिकारियों की वास्तविक स्थिति का पता चलाने का प्रयत्न किया। राणा के आदेशानुसार जनरल बद्री नरसिंह ने २४ मार्च १८५९ ई० को अपनी आख्या प्रेषित की।

बद्री नरसिंह ने राणा को लिखा कि जो सूचनाएँ उनके अधिकारियों से प्राप्त हुई उनसे ज्ञात होता है कि क्रान्तिकारियों का पीछा करने के बदले अंग्रेज सैनिक नैपाली भाइयों को पीटते हैं। वह उनकी स्त्रियों को परेशान करते हैं। क्रान्तिकारियों व अंग्रेजों में कोई अन्तर नहीं था। दोनों को नैपाल तराई की ऊँची पहाड़ियों पर चढ़ने से रोकना था। नरसिंह ने बताया कि बेगम तथा नाना साहब अपने सैनिकों के मुख्य दल से आ मिले हैं। चारों ओर से भारी तोपें चलने की आवाज आती थी। ब्रिटिश सेनाएँ जंगलों में थी व क्रान्तिकारियों की सेना पहाड़ी की तलहटी में। क्रान्तिकारी तीनों ओर से—पूरब, पश्चिम व दक्षिण से घिरते जा रहे थे। यदि वह इस बार पराजित हुए तो ऊँची पहाड़ियों पर चढ़ जायेंगे। वह तारागढ़ी से नोआकोटे दुर्ग तक छाये हुए थे। क्रान्तिकारी गोरखों से लड़ना नहीं चाहते थे। कंचन खोला नामक स्थान पर १०००, १२०० क्रान्तिकारियों से झड़प हुई। उन्होंने तुरन्त हथियार डाल दिये व 'गाय' की भाँति दया-याचना की। फलतः गोरखों ने गोलाबारी बन्द कर दी।

अप्रैल में क्रान्तिकारियों की दशा और भी शोचनीय हो गयी। नाना साहब तथा बालाराव सेना सहित पहाड़ियों की प्रथम व द्वितीय शृंखला में थे। उन्हें खाद्य-सामग्री की कमी से अत्यन्त कष्ट था। उनके साथ उस समय भी ६ या ७ हजार सशस्त्र सैनिक तथा २,००० अश्वारोही थे। वह बालाराव तथा नाना के नायकत्व में थे। बेगम उनसे भी दूर सुरक्षित स्थान में थीं। गोण्डा के राजा तथा नसीराबाद की प्रसिद्ध टुकड़ी ३,००० सैनिकों के साथ पीपरही में स्थित थे।[1]

१. फारेन पोलिटिकल प्रोसीडिंग्स् : अप्रैल २२, १८५९-संख्या १४६० कन्सल्टेशन्स सं० १२५, नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

दिनांक १४ अप्रैल को दानापुर रेजीमेन्ट के कर्नल वाल्टर ने एक तार द्वारा गवर्नर जनरल को यह सूचना भेजी कि सोईनी व कुर्स घाटी के बीच बेगम व नाना साहब की सेनाओं में वृद्धि हो रही थी। नाना साहब, खान बहादुर खाँ तथा ब्रिजीस कद्र इत्यादि नया कोटे दुर्ग में, बुतवल से उत्तर की ओर, निवास कर रहे थे। उनके अंगरक्षकों की संख्या केवल २०० थी, अन्य सैनिक बुतवल के आस-पास थे। बालाराव रतनपुर के पास २,००० सैनिकों के साथ शिविर डाले थे, तथा राजा देवी बख़्श तुलसीपुर में कुछ दूरी पर, दुखारारी के पश्चिम में एक बड़ी सेना के साथ मोर्चा डाले हुए थे। इनके अतिरिक्त नाना साहब के साथ तराई के बीहड़ जंगल में, कप्तान वीर भजनसिंह द्वारा प्रेषित सूची के अनुसार, ब्रिजीस कद्र, बेगम, मम्मू खाँ के अतिरिक्त, बख्त खाँ, यूसूफ खाँ, नवाब खानबहादुर खाँ, जनरल अहसान अली, जनरल दलगंजन सिंह, राणा बेनीमाधो बख़्श, राजा उमराव सिंह, राजा दृगविजयसिंह, राजा नरपत सिंह, राजागुलाब सिंह, राजा हरदत्त सिंह, ठाकुर रामगुलाम सिंह, राजा देबी बख़्श सिंह, मीर मुहम्मद हुसैन खाँ, अली खाँ, रघुवीर सिंह, उमराव जान, राजा उदित प्रकाश सिंह, राजा ज्योति सिंह, ब्रिगेडियर-मेजर गोपालसिंह, कप्तान उमरावसिंह, रघुनाथसिंह, संगमसिंह, सूरजसिंह, राम-सिंह, औसानसिंह, माधोसिंह, दृगपालसिंह, शिवदत्तसिंह, गंगासिंह, नजरअली, रंजीत सिंह, यूसुफ़ सुल्तान, जनरल खुदाबख़्श, खान अली, ज्वाला प्रसाद, राजा उदित प्रकाश (धौना), राजा ज्योति सिंह (चुर्दा) इत्यादि थे। इससे स्पष्ट होता है कि नाना साहब तथा बेगम क्रान्तिकारी नायकों के कितने मान्य थे। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि क्रान्ति का नेतृत्व बंगाल सेना के सैनिकों के अतिरिक्त राजा, नवाबों व सामन्तों के हाथ में था। नैपाल की तराई की अनेकानेक कठिनाइयों को सहन करते हुए यह महान आत्माएँ किसी उच्च विचार-धारा से अवश्य प्रेरित थीं अन्यथा कभी के आत्म-समपर्ण कर दिये होतीं। इस दयनीय अवस्था में भी अपनी मान-मर्यादा, देशप्रेम व स्वतन्त्रता की भावना को बनाये रखने का श्रेय केवल स्वार्थी अथवा अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए लड़ने वालों को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। ऐसे महान त्याग व अद्वितीय उदाहरण पर आवरण डालने वाले इतिहास-कारों का नाना साहब व अन्य नेताओं पर लांछन, उनका स्वार्थवश व बाध्य होकर क्रान्ति में सम्मिलित होने वाला मन्तव्य पूर्णतः हास्यास्पद प्रतीत होता है।

इतना तो अवश्य सत्य है कि परिस्थितियाँ बिगड़ने से यदाकदा क्रान्तिकारी नायक ब्रिटिश शिविर में जाकर आत्म-समर्पण करते रहे। जिस समय बाला राव अपने विश्वासपात्र सैनिकों को केवल ½ सेर चावल पर पोषित कर रहे थे, मुहम्मद हुसेन तथा उनके १५० अनुयायी आत्म-समर्पण कर रहे थे। यह तो ऐसी परिस्थितियों

में अवश्यम्भावी ही होता है। क्रान्तिकारियों के शिविर में महीनों से महाराज्ञी विक्टोरिया की घोषणा के अन्तर्गत छूट (एमनेस्टी) का ज्ञान था, परन्तु नायकों के साथ अकथनीय कठिनाइयों को झेलते हुए भी इन सैनिकों ने आत्म-समर्पण करना उचित नहीं समझा। १८ अप्रैल को प्रेषित तारों से कलकत्ता में सूचना पहुँची थी कि नाना राव तथा डल्लाराम सियनार के पास आवास कर रहे थे। अन्य क्रान्तिकारी बुतवल तथा उसके समीप थे। उन्होंने एक बार फिर राणा जंगबहादुर को एक सम्मिलित अर्जी (प्रार्थनापत्र) प्रेषित की। इसमें उन्होंने आरम्भ से अंग्रेजों के अत्याचारों का वर्णन किया। दो वर्ष तक उन्हें युद्ध करने पर बाध्य किया गया। उन्होंने हिन्दू व मुसलमान धर्म की रक्षा करने के लिए युद्ध किया। अब केवल नैपाल ही एक ऐसा देश बचा था जहाँ जनेऊ तथा ब्राह्मण का मान था। इसलिए क्रान्तिकारी नैपाल की सीमा में शरणार्थियों के रूप में प्रविष्ट हुए थे।

दूसरी ओर १७ अप्रैल १८५९ को जनरल बद्री नरसिंह ने राणा जंगबहादुर को आख्या दी कि एक बार पुनः बेगम व ब्रिजीस कद्र के पास ब्रिग्रेडियर कर्नल पहलवान सिंह को संदेश लेकर भेजा जाये। उस समय ब्रिजीस कद्र बुरी तरह अस्वस्थ थे। इसलिए बेगम ने बहुत से प्रश्नों का उत्तर देने से मना किया। इस संदेश वाहक के अनुसार बेगम का विचार नैपाल में आश्रय न पाने पर लद्दाख होते हुए मक्का चले जाने का था। अन्य नायकों के परिवार की स्त्रियों ने आत्म-समर्पण कर दिया था, कुछ तो नैपाल में ही रहना चाहती थीं, अन्य को गोरखपुर भेज दिया गया था। राणा जंगबहादुर ने स्त्रियों तथा बच्चों को आश्रय देने का वचन दिया था। बेगम तथा ब्रिजीस कद्र के संबंध में राणा ने स्पष्ट रूप से आश्वासन दे दिया था। अंग्रेजों को भी इसकी सूचना मिल गयी थी। राणा को यह ज्ञात हो गया था कि बेगम के पास धन की कमी नहीं थी। थोड़ी सी आर्थिक सहायता से उनकी काठमाण्डू में आजीविका चल सकती थी। राणा ने कई बार अपने दूतों से वास्तविक परिस्थिति की जाँच करायी थी। सर्वप्रथम बद्री सिंह बेगम के शिविर में पहुँचा था। उसने राणा को बताया कि वार्तालाप के समय नाना साहब व बालाराव भी उपस्थित थे। नाना साहब के साथ लगभग ६०,००० सैनिक थे, १२,००० पैदल सेना व ५,००० घुड़सवार वर्दी में थे, अन्य सहायकों के रूप में। गुरखाली अधिकारी ने बताया कि वे सब राणा से भेंट करने काठमाण्डू आने की सोच रहे हैं। बद्रीसिंह ने राणा को यह भी बताया कि बेगम के सम्मुख उपस्थित होने से पहले उसे प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। सेना उसके स्वागत के लिए तैयार हो गयी। तत्पश्चात् उसकी सर्वप्रथम बालाराव से भेंट हुई, फिर नाना से उसके बाद मम्मू खाँ से, अन्त में अल्पवयस्क नवाब ब्रिजीस कद्र से जो शाही पोशाक पहने था, व चाँदी के सिंहासन पर विराजमान

था। इन सबके बाद बेगम से भेंट हुई। बेगम ने खुले शब्दों में बताया कि वह राणा जंगबहादुर के चरणों में गिरने को तैयार हैं परन्तु अंग्रेजों के सम्मुख आत्म-समर्पण करने को नहीं। उनके पास खाद्य सामग्री की कमी थी। जंगल में खाने-पीने को कुछ पैदा न होता था। उनके घोड़े, हाथी तथा अन्य पशु भूखों मर रहे थे। सैनिकों के साथ थोड़ा सा ही गोला-बारूद रह गया था। उनका कथन था कि यदि नैपाली शासन ने उन्हें शरण नहीं देगा तो वह सब मर जायेंगे। उनका यह भी दावा था कि यदि गोरखों ने अंग्रेजों को लखनऊ जीतने में सहायता न दी होती तो वह अंग्रेजों को परास्त कर देते।[१]

बेगम के उपर्युक्त दृढ़ निश्चय से राणा बहुत ही अधिक प्रभावित हुआ। उसने पत्र-व्यवहार में ब्रिटिश शासन को बता दिया कि वह बेगम को आत्म-समर्पण करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। और न ही वह उन्हें नैपाल की सीमा से बाहर निकालने का प्रयत्न कर सकता है।[२] फलतः काठमाण्डू स्थित अंग्रेजी राजदूत ने गवर्नर जनरल को सूचित किया कि राणा बेगम के विषय में उनका परामर्श स्वीकार नहीं कर रहे हैं। अंग्रेज अधिकारियों के पास सिवाय इसमें अनुमति देने के कोई चारा ही नहीं था। परन्तु उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि नाना साहब को किसी भी दशा में नैपाल में शरण नहीं दी जा सकती। राणा ने इस आशय की सूचना नाना साहब व बेगम के पास भेज दी। तत्पश्चात् बालाराव ने अपने तथा नाना साहब के परिवार की स्त्रियों के लिए शरण माँगी। गुरखाली अधिकारियों ने स्पष्ट कर दिया कि स्त्रियों को शरण देने में वह भेदभाव नहीं करते। फलतः स्त्रियों के निवास का प्रबन्ध किया गया।

स्त्रियों को सुरक्षा आश्वासन

चैत्र सुदी १५ संवत् १९१५ अर्थात् १७ अप्रैल १८५९ को प्रेषित अर्ज़ी (प्रार्थना-पत्र) द्वारा जनरल बद्री नरसिंह ने महाराजा जंगबहादुर को सूचित किया कि बालाराव व नाना साहब के परिवार की स्त्रियों को सुरक्षित स्थान को भेज दिया गया था। परन्तु ११ जून १८५९ ई० को सर्दार सिद्धिमन सिंह राजभण्डारी की अर्ज़ी द्वारा ज्ञात हुआ कि बालाराव से डाँग में भैसाली नामक स्थान पर बाग में

१. चार्ल्स बाल—"हिस्ट्री आव दि इंडियन म्यूटिनी"—पृ० ५८०।

२. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्सः १९ अगस्त १८५९, संख्या १८३।१८४ नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

भेंट की। नाना साहब वहाँ से कुछ दूरी पर थे। बालाराव ने स्पष्ट किया कि उनके शिविर में कोई ईसाई स्त्री नहीं थी। और वह अपनी स्त्रियों को सुरक्षित स्थान को भेजने को तैयार थे। गुरखा सरदार ने उन्हें थारा गढ़ी भेजने का वचन दिया। साथ ही साथ राणा से आज्ञा माँगी की थारा गढ़ी से स्त्रियों को तुलसीपुर भेजा जाये अथवा काठमाण्डू। १९ जून १८५९ ई० को लक्ष्मण सिंह राज-भण्डारी ने महाराजा जंगबहादुर राणा जी को सूचित किया कि नाना साहब, बालाराव तथा अन्य राजाओं की स्त्रियों को थारा गढ़ी पहुँचा दिया गया था। साथ में दो ईसाई स्त्री व पुरुष भी समर्पित हुए। उनसे पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि मम्मू खाँ के शिविर में संभवतः दो एक महिला हों। नाना व बाला के शिविर में अब कोई ईसाई नहीं थे। २२ जून १८५९ ई० को राणा की सेवा में प्रेषित सरदार सिद्धिमन सिंह राज-भण्डारी की अर्जी से ज्ञात होता है कि नाना साहब तथा बालाराव के शिविर में उनकी स्त्रियों के समर्पण करने के पश्चात् केवल उनकी माता बची थीं। बालाराव ने सफाई देते हुए अपने रनिवास की छानबीन करने तक की आज्ञा दे दी। जाँच से पता चला कि उनके शिविर में कोई भी ईसाई महिला नहीं थी। सरदार सिद्धिमन सिंह ने अपनी अर्जी में बताया कि यद्यपि उसे केवल नाना साहब तथा बालाराव की पत्नियों को ही आश्रय देने की आज्ञा थी, परन्तु जब प्रान पाधे उन्हें लेने के लिए पहुँचे तो नाना के परिवार की महिलाओं में अन्य राजाओं की स्त्रियाँ भी मिल गयीं। जब उन्हें यह बताया गया कि उन्हें ले जाने की आज्ञा नहीं थी तो उन्होंने गिड़िगिड़ाते हुए उत्तर दिया कि—

"हमने गोरखाओं की शरण ली है—यदि वह चाहें तो हमें मार सकते हैं—हम स्त्रियों ने कोई पाप (कसूर) नहीं किया और न ही ब्रिटिश प्रजा की हत्या की है।"

जब उन्हें बताया गया कि उनके साथियों ने तो हत्याएँ की हैं तब पुनः उन्होंने दोहराया कि स्त्रियों ने कोई दण्डनीय कार्य नहीं किया। इसलिए उन्हें तो आश्रय अवश्य ही मिलना चाहिए। फलतः सभी स्त्रियों को मनोनीत स्थान पहुँचा कर राणा की आज्ञा प्राप्त करने के लिए अर्जी प्रेषित की गयी।

अंग्रेजों को छानबीन करने पर यह पता चल गया था कि तराई में आने के समय तक दो ईसाई महिलाएँ क्रान्तिकारियों के शिविर में थीं। उन्हीं की छानबीन

१. फारेन पोलिटिकल प्रोसीडिंग्स : १५ जुलाई १८५९, संख्या २३१, पृ० २६५–६७, नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

में अनेक सैनिक दूत दौड़ाये गये व बालाराव तथा मम्मूखाँ से पत्र-व्यवहार हुआ। नाना साहब की ओर से बालाराव ने स्पष्ट कर दिया कि उनके शिविर में कोई ईसाई महिला नहीं थी।

इसी प्रसंग में बालाराव ने यह जानने की इच्छा प्रगट की कि उन्हें आत्म-समर्पण करने की आज्ञा किन प्रतिबन्धों के साथ मिल सकती थी। ८ जुलाई १८५९ ई० को नैपाल स्थित ब्रिटिश राजदूत को भारतीय शासन की आज्ञा मिली कि बालाराव को स्पष्टत: बता दिया जाये कि बालाराव को बन्दी बनाकर उनपर अभियोग चलाया जायेगा।[1]

नाना साहब की आत्म-समर्पण की शर्तें

कलकत्ता से प्रकाशित "दी बंगाल हरकारू और इण्डिया गजेट"——दिनांक १५ अप्रैल १८५९ में पहले ही यह घोषणा प्रकाशित हो चुकी थी कि जो व्यक्ति नाना साहब को ब्रिटिश अधिकारी के सुपुर्द करेगा उसे १ लाख रुपये की धनराशि के अतिरिक्त अभियोग से छूट भी प्रदान की जायेगी। परन्तु अंग्रेजों को यह अवसर प्राप्त न हो सका। ठीक एक वर्ष के पश्चात् गोरखपुर कमिश्नरी में स्थित सैनिक अधिकारियों ने नाना साहब के आत्म-समर्पण के लिए पुन: पत्र-व्यवहार आरम्भ किया। २० अप्रैल १८५९ को नाना साहब की ओर से एक इश्तिहारनामा मेजर रिचर्डसन, बंगाल यूमन्री अश्वारोही दल के नायक, को प्रेषित हुआ।

इश्तिहारनामा का अनुवाद

"तुमने सारे ही हिन्दुस्तान के कसूर माफ कर दिये हैं; और हत्यारों को भी क्षमा-प्रदान कर दी गयी है। यह आश्चर्यजनक है कि तुम्हारे जिन सैनिकों ने तुम्हारे ही बीवी बच्चों की हत्या की, और मम्मू खाँ तथा फरुक्खाबाद के प्रतिष्ठित व्यक्ति (अर्थात् नवाब फरुक्खाबाद) जो वास्तव में हत्यारे हैं, उन्हें भी क्षमा प्रदान की गयी है। और तुमने जंगबहादुर को यह भी लिख दिया है कि वह बेगम तथा अन्य राजाओं को अपने-अपने देश अपनी सुरक्षा में लौटा दें। यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि जब मैंने असहाय अवस्था में क्रान्तिकारियों का साथ दिया, मुझे क्षमा नहीं किया गया। मैंने कोई हत्या नहीं की। यदि जनरल हौला (ह्वीलर)

१. फारेन पोलिटिकल प्रोसीडिंग्स: १५ जुलाई १८५९, संख्या २३३, पृ० २६९, नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

ने मुझे तथा मेरे सैनिकों को बिठूर से आमन्त्रित न किया होता तो मेरे सैनिक विद्रोह न करते; इसके अतिरिक्त उसने मेरे परिवार को सुरक्षित परकोटे में नहीं बुलाया। मेरे सैनिक मेरे देश (महाराष्ट्र) के न थे, और मैंने पहले ही कहलाया था कि मुझ जैसे ग़रीब व्यक्ति (कम महत्ववाले) से अंग्रेजों को कोई वास्तविक सहायता न प्राप्त हो सकेगी। परन्तु जनरल हौला ने मेरी एक न सुनी और मुझे परकोटे में आमन्त्रित किया। जिस समय तुम्हारी सेना ने विद्रोह किया और खज़ाने पर अधिकार करने के लिए बढ़े तो मेरे सैनिक भी सम्मिलित हो गये। इस पर मैंने गंभीरतापूर्वक विचार किया कि यदि मैं परकोटे में चला गया तो मेरे सैनिक (मुझे देशद्रोही समझ कर) मेरे परिवार का हनन कर देंगे, और अंग्रेज़ मुझे मेरे सैनिकों के विद्रोह के लिए अवश्य उत्तरदायी ठहरा कर दण्ड देंगे; इसलिए मेरे लिए यह आवश्यक था कि मैं मृत्यु से खेल जाऊँ। मेरी प्रजा (रैयत) को मेरी आवश्यकता थी, इसलिए मुझे सैनिकों का साथ देना पड़ा। दो-तीन वर्ष पहले मैंने रूबकारी किया—अर्थात् सरकार के सम्मुख प्रार्थना-पत्र प्रेषित किये, परन्तु उनपर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। कानपुर में सैनिकों ने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया और अंग्रेज स्त्रियों तथा प्रजा को मारना शुरू किया। जिनको जिस भाँति बचाना संभव था, वह मैंने अवश्य किया। जब अंग्रेज़ों ने परकोटे को त्यागा उस समय मैंने उनके लिए नावों का प्रबन्ध किया जिससे वह इलाहाबाद जा सकें परन्तु तुम्हारे ही सैनिकों ने उन पर आक्रमण किया। बड़ी अनुनय एवं विनती से मैंने सैनिकों को रोका और २०० अंग्रेज स्त्री व बच्चों का जीवन बचाया। मैंने सुना कि बाद में तुम्हारे ही सिपाहियों व बदमाशों ने, जबकि हमारे सिपाही कानपुर से भागे और मेरे भाई के चोट लग गयी थी, उन्हें मार डाला। इसके उपरान्त मैंने तुम्हारे द्वारा प्रकाशित इश्तिहारनामे के विषय में सुना, और युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। मैं अब तक तुम्हारे से लड़ता रहा और जब तक जीवित रहूँगा, लड़ूंगा। तुम अच्छी तरह जानते हो कि मैं हत्यारा नहीं हूँ, और न ही अपराधी हूँ। और न ही तुमने मेरे विषय में कोई आज्ञा प्रकाशित की है। मेरे अतिरिक्त शायद तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है! यदि ऐसा है तो मैं जब तक जीवित रहूँगा तब तक युद्ध करूँगा। मैं भी एक मनुष्य हूँ। केवल मैं दो कोस दूर रहता हूँ। कितने अचम्भे की बात है कि तुम, एक महान् एवं शक्तिशाली राष्ट्र, मेरे विरुद्ध दो वर्ष से युद्ध कर रहे हो। परन्तु फिर भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं पाये!! तिस पर कि मेरे सैनिक मेरी अब आज्ञा नहीं मानते और मेरे अधिकार में मेरे देश का तनिक सा भूखण्ड भी नहीं!! तुमने सबके अपराध क्षमा कर दिये हैं। नैपाल का राणा तुम्हारा मित्र है। इतना सब होने पर भी तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ पाये। तुमने

मेरे सभी अनुयायियों को अपनी ओर फोड़ लिया है; केवल मैं ही रह गया हूँ, परन्तु तुम देखोगे कि जिन सैनिकों को दो वर्ष से मैं बचाये हुए हूँ वह क्या कर सकेंगे। हम लोग मिलेंगे !! तब मैं तुम्हारे लहू को बहाकर घुटने-घुटने गहराई की धारा प्रवाहित करूँगा। मैं मरने को उद्यत हूँ। यदि मैं अकेला ही इतने शक्तिशाली राष्ट्र का शत्रु समझा जाने योग्य हूँ तो यह मेरे लिए गौरव की बात है ! मेरी सभी हार्दिक इच्छाएँ पूर्ण हुईं। मृत्यु तो एक दिन आयेगी ही ! फिर मुझे किस चीज़ का भय है। परन्तु जिनको आज तुमने अपने पक्ष में मिला लिया है वह एक दिन तुम्हारे ही विरुद्ध उठ खड़े होंगे और तुम्हारी हत्या करेंगे। तुम बुद्धिमान अवश्य हो परन्तु अपनी चतुराई में त्रुटि कर गये हो। मैंने एक पत्र चन्द्रनगर भेजा था। परन्तु वह वहाँ नहीं पहुँचा। इससे मुझे खिन्नता हुई, अन्यथा तुम देखते कि मैं क्या कर सकता था ! फिर भी मैं चन्द्रनगर के लिए पुनः प्रयत्न करूँगा।

यदि तुम उचित समझते हो तो इसका उत्तर दो ! एक बुद्धिमान शत्रु मूर्ख मित्र से अच्छा होता है।"[1]

× × × ×

इश्तिहारनामे का उत्तर

"महाराजा बिठूर की मुहर से अंकित, दिनांक १७वीं रमज़ान १२७५ हिज़री का इश्तिहारनामा एक ब्राह्मण के हाथों, यूरोपियन घुड़सवार सेना के प्रधान नायक मेजर रिचर्डसन ने प्राप्त किया। उसने उसके विषय से (तथ्य से) अपने को अवगत कराया। मैं अब उत्तर देता हूँ कि इंगलैण्ड की महाराज्ञी द्वारा प्रकाशित घोषणा-पत्र किसी व्यक्ति विशेष या दल के लिए नहीं था; परन्तु सर्वसाधारण के लिए था। और अभिन्न प्रतिबन्धों पर नवाब फरुक्खाबाद, नवाब बाँदा, तथा राजाओं व तालुकदारों ने हथियार डाले तथा शासन के सम्मुख आत्म-समर्पण किया। वह प्रतिबन्ध तुम्हारे लिए भी प्रस्तुत है और अन्य पुरुषों के लिए जो समर्पण करना चाहें। जैसा कि तुम लिख रहे हो कि तुमने मेम (महिलाओं) और लड़कों (बच्चों) को नहीं मारा तो बिना भय के उपस्थित हो जाना चाहिए। इसका उत्तर वांछनीय है।"

× × × ×

१. फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स्—२७ मई १८५९, संख्या ६३—६९: नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

नाना साहब का उत्तर

दिनांक २५ अप्रैल १८५९ ई०। "मेरे इश्तिहार के उत्तर में जो मुझे २३ अप्रैल को प्राप्त हुआ उसमें केवल एक ही विषय पर ध्यान दिया गया है। मैं यह स्वीकार करता हूँ। परन्तु इस भाँति मैं आत्म-समर्पण नहीं कर सकता हूँ। यदि महाराज्ञी विक्टोरिया द्वारा लिखित पत्र, उनकी अपनी मुहर के साथ फ्रान्सीसियों के प्रधान सेनानायक या द्वितीय श्रेणी के नायक द्वारा मेरे पास पहुंचाया जाये, तो मैं उस पर भरोसा (विश्वास) करके, प्रतिबन्ध बिना हिचक के स्वीकार कर सकता हूँ। मैं तुम्हारा क्यों साथ दूँ—क्योंकि हिन्दुस्तान में जो तुमने दगाबाजी की है वह मैं खूब जानता हूँ। यदि वास्तव में तुम हृदय से देशव्यापी विप्लव को समाप्त करना चाहते हो तो मैं महाराज्ञी का स्वयं हस्ताक्षर किया हुआ पत्र फ्रान्सीसी प्रधान सेनानायक द्वारा प्राप्त होने पर स्वीकार करूँगा। कुछ वर्ष पहले मैंने इंगलैण्ड एक दूत (एलची) भेजा था, जिसके द्वारा महाराज्ञी ने स्वयं अपने हाथ से लिखा हुआ पत्र व अपनी मुहर के साथ भेजा था। वह मेरे पास आज तक है। यदि तुम चाहते हो तो कार्य इस प्रकार सम्पन्न हो सकता है, और इसके लिए मैं सहमत हूँ। यदि नहीं, तो जीवन तो एक दिन त्यागना ही है। फिर मैं क्यों अपमान के साथ मरूँ। जब तक कि मेरे शरीर में प्राण है तुम्हारे व मेरे बीच में युद्ध होगा। चाहे मैं मारा जाऊँ, बन्दी बनाया जाऊँ या फाँसी पर लटकाया जाऊँ, अब जो कुछ भी मैं करूँगा वह तलवार के बल पर ही। तिसपर भी यदि महाराज्ञी का पत्र जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है—मुझे प्राप्त होगा तो मैं समर्पण कर दूँगा। यदि तुम उचित समझते हो तो मुझे इसका उत्तर अवश्य भेजो।[1]"

नाना साहब को उत्तर

धुकडी शिविर—दिनांक २५ अप्रैल १८५९—"नाना साहब!! मैंने तुम्हारा पत्र प्राप्त किया—२२वीं रमजान का। जो मैंने २३वीं अप्रैल को लिखा था, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता। केवल महाराज्ञी के घोषणा-पत्र को शाही मुहर के साथ तुम्हारे पास भेज सकता हूँ। उसका अध्ययन करो, यदि तुम्हारी समझ में न आये तो लिखो, यथासम्भव मैं उसे स्पष्ट करूँगा। घोषणापत्र के प्रतिबन्ध अत्यधिक मात्रा में महान् हैं, और इसलिए उन पर विचार करने के लिए

१. फारेन पोलिटिकल कन्सलटेशन्स्: २७ मई, १८५९, संख्या ६३-६९, नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

मैं संस्तुति करता हूँ। तुम्हें यह स्पष्ट हो जायेगा, एक शिक्षित व्यक्ति होने के नाते, विरोधी शैली अपनाने से तुम्हारा मामला बिगड़ जायेगा। मैं तुमसे पूछता हूँ—क्या तुम इंगलैण्ड की महाराज्ञी जैसी महान् शक्ति से प्रतियोगिता कर सकते हो? इस घोषणापत्र को पढ़ो व अध्ययन करो, और उसके उपरान्त अपना निश्चय बताओ। किसी भी उत्तरदायी व्यक्ति को मेरे पास भेजो—मैं उसे आने-जाने के लिए सुरक्षा का विश्वास दिलाता हूँ, और किसी भी बात पर सन्देह होगा तो दूर करूंगा। तुम्हारे दूत के साथ उचित व्यवहार किया जायेगा, इससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता।"[१]

× × × ×

नाना साहब के साथ पत्र-व्यवहार करने पर मेजर रिचर्डसन स्वयं संकट में पड़ गया। जैसे ही इस पत्र की प्रतिलिपि गवर्नरजनरल को हस्तगत हुई, उन्हें मेजर रिचर्डसन द्वारा पत्र में नवाब बाँदा तथा फरुक्खाबाद के विषय पर संकेत करना असंगत प्रतीत हुआ। इसका कारण था कि संबंधित व्यक्तियों के समर्पण संबंधी अंग्रेजी शासन की गुप्त बातें उन्हें मालूम न थीं। दूसरी बात यह थी कि नाना साहब का पत्र महाराज्ञी विक्टोरिया को सम्बोधित था, उसका उत्तर देने का अधिकार रिचर्डसन को नहीं था। फलस्वरूप ७ मई १८५९ ई० को गोरखपुर जिले में स्थित बिग्रेडियर एच० रोक्राफ्ट ने मेजर-जनरल बर्च, सचिव भारतीय शासन, सैनिक विभाग कलकता को, पत्र प्रेषित करते हुए नाना साहब व बालाराव के दिनांक २५ व २६ अप्रैल १८५९ के पत्र अनुवाद सहित संलग्न किये। कर्नल पिकेनी द्वारा अधिकृत मेजर रिचर्डसन के उत्तरों की प्रतिलिपि भी साथ में भेजी। नाना साहब को महाराज्ञी की घोषणापत्र की प्रति तथा अग्रिम कार्यवाही की सूचना भेज दी गयी। गवर्नर जनरल के दृष्टिकोण से स्पष्ट हो जाता है कि जो सन्देह या भय नाना साहब ने अपने पत्र में प्रकट किये थे वह अक्षरशः सत्य थे। यदि वह अंग्रेजों की बातों में आ जाते तो अवश्य ही विश्वासघात होता व उन्हें फांसी पर लटकाया जाता।

भारतीय शासन की ओर से मई १८५९ ई० में इलाहाबाद से रिचर्डसन-नाना पत्र-व्यवहार पर टीका-टिप्पणी करते हुए बताया गया कि उसे स्पष्ट रूप से नाना साहब को बता देना चाहिए था कि उन पर अभियोग चलाया जायेगा। इस पत्र-व्यवहार से यह भी पता नहीं चलता कि नाना साहब का महारानी विक्टोरिया

१. फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश : खण्ड ४, पृ० ७७६–७७७।

को संबोधित पत्र कभी भी इंगलैण्ड भेजा गया हो। संभवतः उसे यहीं दबा दिया गया। तत्पश्चात् नाना साहब ने समझौते की आशा छोड़ कर जंगलों की शरण ली। नवम्बर १८५९ ई० में केवल उनके मृत्यु के समाचार प्रकाशित हुए।

तथाकथित मृत्यु

कलकत्ता के दैनिक समाचार-पत्र दिनांक ३ नवम्बर १८५९ ई० "दी इंगलिश-मैन" में प्रकाशित संवाद से ज्ञात हुआ कि नाना साहब की ढाँग व देवखुर के आसपास तारागढ़ी में बुखार आ जाने से मृत्यु हो गयी। वह बहुत दिन से अस्वस्थ बताये गये परन्तु २४ सितम्बर को कुछ स्वस्थ हो गये थे। बहुत से विश्वसनीय गवाहों ने उनका शव देखा और हिन्दू रीति से उनका दाह-संस्कार हुआ।[1]

"दी लखनऊ हैराल्ड" से पुनः प्रकाशित संवाद में, "दी फ्रेण्ड आव इंडिया"—दिनांक २४ नवम्बर १८५९ ई० को २२ ता० के समाचार में पुनः उपर्युक्त तथा-कथित मृत्यु को दोहराया गया। साथ ही साथ यह भी बताया गया कि एक बद्री नाम का ब्राह्मण जो मृत्यु के समय नाना के समीप था गोण्डा लौटकर आया। उसने बताया कि क्रियाकर्म के समय उसे कई स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त हुईं जो उसने प्रमाण रूप में प्रस्तुत कीं। इस पण्डित ने नाना साहब के शिविर में जासूस का भी कार्य किया था।

२२ दिसम्बर १८५९ की "दी फ्रेन्ड आव इण्डिया" की प्रति से ज्ञात हुआ कि बेगम हज़रत महल, बालाराव तथा नाना साहब के परिवारों के साथ बुतवल से भागकर अज्ञात स्थान को चली गयीं।

नाना साहब की मृत्यु के विषय में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। डा० सेन के अनुसार नाना साहब, बाला साहब तथा अजीमउल्ला खाँ की मृत्यु नैपाल की तराई में मलेरिया रोग से हुई। श्रीनिवास बाला जी हर्डिकर ने अपनी पुस्तक 'अठारह सौ सत्तावन' में लिखा है[2] कि नाना साहब के साथ उनके परिवार की स्त्रियाँ भी नैपाल गयी थीं। वह चालीस वर्ष तक वहाँ रहीं बतायी जाती हैं। काठमाण्डू में प्रचलित है कि नाना साहब की धर्मपत्नी को राणा जंगबहादुर ने अपने महल के उद्यान में शरण दी थी। उस स्थान पर अब भी एक छोटा सा बंगला व मन्दिर विद्यमान

१. दी फ्रेन्ड आव इन्डिया—नवम्बर १०, १८५९, पृ० १०६३, नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।

२. श्रीनिवास बालाजी हर्डिकर : अठारह सौ सत्तावन—पृ० १९६-१९९।

बताया जाता है। राणा जंगबहादुर ने बेगम हजरत महल, ब्रिजीस कद्र तथा नाना साहब के परिवार की स्त्रियों को शरण देकर अपना वचन निभाया।

नाना साहब की एक बहन कुसुमावती उर्फ बयाबाई आप्टे भी नाना साहब के साथ नैपाल में रहीं। उन्होंने अपनी १९१० ई० में मृत्यु से पहले रजवाड़े महोदय को बताया था कि १४ माह तक भटकने के पश्चात् नाना साहब ज्वर आने के कारण १८५९ ई० में मर गये थे। मृत्यु का स्थान देवखुर या दैवखोरी बताया गया। नाना साहब की उत्तर क्रिया कुसुमावती के सामने हुई, वह उस समय बारह वर्ष की थीं।

डा० सेन के कथनानुसार नाना साहब की धर्मपत्नी, बाला की पत्नी तथा बाजीराव की दो विधवाएँ और एक पुत्री नैपाल में नाना की मृत्यु के पश्चात् रहीं।[1] क्रान्ति की चिनगारियाँ शान्त हो जाने के पश्चात् कुसुमावती अपने पति के पास ग्वालियर लौट आयीं। उपलब्ध प्रमाणों से यही ज्ञात नहीं होता कि कुसुमावती कब वापस आयी तथा उन्होंने वापस लौटते ही कोई कथन नाना साहब की मृत्यु के विषय में नहीं दिया। श्री हर्डिकर के अनुसार मृत्यु से पहले उन्होंने रजवाड़े इतिहासकार को बताया कि नाना साहब की मृत्यु किस भांति हुई थी। परन्तु इसी के आधार पर कोई निश्चय करना संभव नहीं। बारह वर्ष की बालिका को नाना साहब की रहस्यमय चालों का क्या आभास हो सकता था। स्त्रियों से तो निश्चय ही ऐसे गूढ़ रहस्य गुप्त रखे गए होंगे।

मेघर सिंह का कथन

वाराणसी में विशेष आयुक्त के सम्मुख २७ नवम्बर १८६० ई० को गहमर निवासी मेघर राय ने अपने कथन में बताया कि बिहार में अमर सिंह के साथ युद्ध करने के पश्चात् वह नैपाल की तराई में चला गया था। वहाँ बेगम हजरत महल, राजा बेनी माधो तथा राजा देवी बख़्श इत्यादि के साथ मिल गया। १ वर्ष ३ माह पश्चात् स्वयं राणा जंगबहादुर क्रान्तिकारियों से हथियार डलवाने के लिए आया। कुछ तो भाग गये, अन्य पकड़े गये। क्रान्तिकारियों के शिविर में बीमारी का प्रकोप फैल गया। बहुत से वीर नायक मारे गये। अमरसिंह पकड़े गए व अंग्रेज़ों के सुपुर्द कर दिये गए।

नाना साहब के विषय में प्रश्नों का उत्तर देते हुए मेघर सिंह ने बताया कि नाना

१. डा० सेन : "एट्टीन फिफ्टी सेवन"–पृ० ३७०।

साहब १८५९ ई० में भादों के महीने में ज्वर तथा पेचिश से मर गये। मृत्यु-स्थान ढाँग क्षेत्र बताया। इसके बाद मेघर सिंह से पूछा गया कि क्या वह मृत्यु के समय नाना साहब के समीप थे? उत्तर में उसने बताया कि वह नैपाल सीमा में बीस मील अन्दर टोलिया नामक स्थान पर था। एक सैनिक जवाहर सिंह ने आकर बताया कि नाना साहब मर गये। उनके सभी अनुयायी जो लौट आये उन्होंने बताया कि नाना साहब तो मर गये व उनका परिवार राणा जंगबहादुर नैपाल ले गये। वास्तविकता तो यह थी कि बालाराव ने अपनी पत्नी तथा नानाराव के परिवार को पहले ही नैपाल सुरक्षित रूप से पहुँचा दिया था। मृत्यु या मृत्यु के ढोंग की घटना तो सितम्बर से नवम्बर माह के मध्य हुई। किंवदन्ती यह है कि नाना साहब की आकृति से मिलता-जुलता एक व्यक्ति मर गया था। उसी का दाह-संस्कार करके यह प्रचलित कर दिया गया कि नाना साहब मर गये। मेघर सिंह द्वारा ये कथन कि नाना का क्रियाकर्म उनकी माता ने किया यह असत्य प्रतीत होता है। बार-बार प्रश्न पूछने पर मेघर सिंह ने केवल इतना बताया कि उसके सामने केवल नाना साहब तथा अन्य नायक बीमार पड़ने लगे थे। तराई में भादों में वर्षा ऋतु के मध्य में बीमार हो जाना स्वाभाविक ही था, परन्तु उपलब्ध प्रमाणों से यह सत्य स्थापित नहीं होता कि नाना साहब निश्चय ही १८५९ में मृत्यु की गोद में सो गये थे।

अध्याय ११

मृत्यु-पर्यन्त खोज

मेजर रिचर्डसन से पत्र-व्यवहार के पश्चात् एवं बुतवल की लड़ाई के पश्चात् नाना साहब तथा बेगम की कठिनाइयाँ बढ़ती गयीं। बालाराव के अंग्रेजों व गुरखाली सरदारों से पत्र-व्यवहार से स्पष्ट हो गया कि राणा जंगबहादुर ने बेगम हजरत महल तथा पेशवा परिवार की स्त्रियों को नैपाल में शरण देने का वचन दिया। फलतः उन महिलाओं को क्रान्तिकारियों के शिविर से सुरक्षित स्थान को पहुँचा दिया गया। इसी कथन की पुष्टि पेशवा वंश के एक व्यक्ति श्री लक्ष्मण ठठ्ठे के हाल ही में प्रेषित प्रार्थना-पत्र से, जो उन्होंने राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद के नाम संबोधित किया था, से होती है।[1] इसके अनुसार नाना साहब ने राणा जंगबहादुर से अन्तिम प्रार्थना की कि वह उनकी धर्मपत्नी तथा माताओं को शरण दें व उनकी देखभाल करें। इसके पश्चात् वह अपने कुछ साथियों के साथ जिनमें दीवान अज़ीमउल्ला भी सम्मिलित थे, कहीं चले गये। उनके बिदा होने के उपरान्त पेशवा परिवार की स्त्रियों ने पेशवाई गद्दी स्थापित की व लक्ष्मण राव ठठ्ठे को गोद लिया। इसके अतिरिक्त नाना साहब की धर्मपत्नी के लिए विशेषतः एक छोटा बंगला राणा जंगबहादुर के उद्यान में बनवाया गया, जहां वह सधवा की भाँति रह कर जीवन व्यतीत करती थीं। यह भी किंवदन्ती है कि पास ही बने हुए एक मन्दिर में, जहाँ वह पूजा करती थीं, नाना साहब प्रत्येक वर्ष एक नियत तिथि को उनसे मिलने आया करते थे।

नाना साहब की खोज

जुलाई १८५७ के पश्चात् ब्रिटिश अधिकारी अपनी सम्पूर्ण विशालकाय साम्राज्यवादी शक्ति से नाना साहब को बन्दी बनाने का असफल प्रयत्न करते रहे।

१. श्री लक्ष्मण ठठ्ठे का डा० राजेन्द्र प्रसाद जी के नाम प्रेषित प्रार्थना-पत्र : दिनांक ६-६-५५ की प्रतिलिपि डा० सम्पूर्णानन्द जी के नाम।

अक्तूबर १८५९ ई० में उन्होंने राणा जंगबहादुर द्वारा अनुमोदित तथाकथित नाना साहब की मृत्यु के समाचार से, इस प्रसंग का पटाक्षेप किया। परन्तु एक ही वर्ष में पुनः ब्रिटिश अधिकारियों को वास्तविक सन्देह होने लगा कि प्रमुख क्रान्तिकारी उन्हें धोखे में डालकर लुप्त हो गये। राव साहब, फीरोजशाह शहजादा, दीवान अजीमउल्ला खाँ, इत्यादि का कोई पता नहीं था। तात्या टोपे के विषय में भी यह सन्देह उत्पन्न हो गया कि क्या जिस व्यक्ति को सिपरी में १८ अप्रैल, १८५९ ई० को फाँसी दे दी गयी थी वह वास्तविक तात्या था। मेजर मीड की तात्या को बन्दी बनाये जाने के समय की आख्या स्वयं सन्देह में डालने वाली थी। बन्दी बनाये जाने के समय जंगल में तीन व्यक्ति थे, जिनमें दो घोड़े पर सवार होकर बच कर निकल गये। कौन कह सकता है कि उन बचने वालों में से तात्या नहीं थे? तीनों व्यक्ति तात्या की ही शक्ल के थे। इसी भाँति नाना साहब भी बन्दी बनाये जाने के भय से हर समय अपने शिविर में अपनी ही शक्ल के कई व्यक्ति रखते थे। यह भी निश्चयात्मक रूप से कहा जा सकता है कि बन्दी बनाये जाने के भय से इन्होंने दाढ़ी बढ़ा ली थी और मुसलमानी रूप बना लिया था। स्वयं राव साहब ने साधू का वेष धारण करके तीर्थ-यात्रा की और फिर काश्मीर में आवास लिया। वहीं पर उन्हें एक सेवक के विश्वासघात के कारण १८६२ ई० में बन्दी बनाकर, अभियोग के फलस्वरूप फाँसी दी गयी। राव साहब से बयान लेते समय अधिकारियों ने उनसे बार-बार पूछा कि तात्या टोपे कहाँ हैं? तात्या के परिवार के आदमियों से भी यही प्रश्न पूछा गया। फीरोजशाह शहजादे के विषय में ब्रिटिश अधिकारियों को १८६० ई० में पता चल गया कि वह भारत की सीमा से निकल गये और कन्धार में सुरक्षित हैं। १८६१ ई० में वह बोखारा में रहे तथा १८६२ ई० में तेहरान में सुने गये। १८६८ ई० में वह पुनः स्वात घाटी तथा काबुल के आसपास सुने गये। १८७२ ई० में कुस्तुनतुनिया तथा १८७५ ई० में मक्का की ओर उनका पता चला। १७ दिसम्बर १८७७ ई० में वहीं उनकी मृत्यु हुई। इस प्रकार के समाचारों से ब्रिटिश अधिकारियों को वास्तविक सन्देह हो गया कि नाना साहब तथा उनके अन्य साथी अभी भी जीवित हैं।

कराची में संदिग्ध नाना साहब

नवम्बर सन् १८६१ ई० में कराची में दो व्यक्ति पकड़े गये, जिनके वास्तविक नाम हरजी भाई वल्द छेदानन्द व वृजदास भगत रामजी थे। प्रथम को धोंड़ोपन्त, नाना बिठूर समझा गया तथा द्वितीय को उनका सेवक। हुजूर कराची के अधिकारी डिप्टी मजिस्ट्रेट एच० इंग्ले ने सिन्ध के आयुक्त को पत्र संख्या ११,

दिनांक १४ दिसम्बर १८६१ ई०[1] में बताया कि २९ नवम्बर, शुक्रवार को कराची में बेट से लक्ष्मी प्रसाद नामक व्यक्ति एक नाव से उतरे। हरजी भाई ने अपने दो नाम बताये—फतहचन्द और आलमचन्द। इनसे उनके मुसलमान होने का सन्देह हुआ, परन्तु फिर हिन्दू समझ कर उन्हें छोड़ दिया गया। चुंगी कार्यालय के मि० पी० डी० सूजा ने तदुपरान्त विद्रोहियों के हुलिया विवरण को देखकर नाना साहब इत्यादि के संकेत-चिन्ह मालूम किये। उसे सन्देह हुआ कि संभवतः वह नाना ही न हो। फलतः दूसरे दिन प्रातः उन्हें खोजा गया और सब्जी खरीदते समय ९ बजे उन्हें बन्दी बना लिया गया। एक बजे दिन में उनके कथन लिये गये।

हरजी भाई ने अपने कथन में बताया कि वह किसी मन्दिर में १२ वर्ष से रहता था। वहाँ वह गीता लिखता था। बृजदास ने बताया कि दोनों बेट से आये थे व यात्रियों से जो कराची, हैदराबाद व शिकारपुर से बेट आये हुए थे, चन्दा एकत्र करने आये थे। दोनों के कथनों में कुछ अन्तर पाया गया। फलतः अग्रिम जाँच के लिए दोनों को बन्दी बनाये रखा गया।

संदिग्ध नाना साहब को पहचानने के लिए उनसे परिचय रखनेवालों से पत्र-व्यवहार एवं व्यक्तिगत जाँच आरम्भ हो गयी। सर्वप्रथम निम्नलिखित गवाहों के कथन लिये गये :—

(१) मार्टिन मर्नर—बंगाल फ्यूजीलियर्स—हर मैजस्टी की १०१ टुकड़ी का एक प्राइवेट। उसने बताया कि हरजी भाई ही नाना साहब थे।

(२) मनोहर बीहरा—निवासी जिला आज़मगढ़—तीन वर्ष कानपुर में रहा। उसने बिठूर व कानपुर में नाना को देखा था। उसने हरजी भाई को देखते ही कहा कि वह नाना साहब बिठूर थे। वही महाराज थे। उसे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं था। बायें नेत्र के नीचे के चिन्ह से वह पहचान सकता था, कराची में वह एक हस्पताल में इलाज करा रहा था।

(३) गुलाब खाँ—वह कानपुर की ७०वीं रेजीमेन्ट में मेजर इनफोर्ड की सेवा में था। गुलाब खाँ के कथनानुसार हरजी भाई नाना नहीं थे। विशेष जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि हरजी भाई सरलता से गुजराती बोल सकते थे। वह हिन्दुस्तानी भी समझ लेते थे। अंग्रेजी व मराठी से अनभिज्ञ थे।

१. फारेन डिपार्टमेंट-(पोलिटिकल) प्रोसीडिंग्स, भारतीय शासन-दिनांक २७ मार्च १८६२ : संख्या ३०२।

(४) माइकेल कीगान—भूतपूर्व सैनिक, अब कराची पुलिस में एक कान्सटेबुल था। उसने बिठूर के राजा को १८५० ई० में देखा था। उसके कथनानुसार हरजी भाई शक्ल-सूरत में व ऊँचाई में बिठूर के राजा से मिलते-जुलते थे।

(५) टिन्डेल—ने बताया कि बेट में उसने हरजी भाई को ६ या ७ वर्ष से देखा था। वह बच्चों को दवाई दिया करता था।

(६) नौ अन्य लोगों ने बताया कि हरजी भाई गीता लिखा करता था और दवाई बांटता था। हरजी भाई हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति था। उसकी छाती पर पर्याप्त बाल थे। उसकी ऊँचाई ५ फुट ८ इंच थी, यह नाना साहब की ऊँचाई थी। वह ३८ या ४० वर्ष का प्रतीत होता था।

दो व्यक्तियों को फोटो लेकर जांच के लिए कानपुर भेजा गया। अन्य फोटो सहायक आयुक्त सिन्ध के द्वारा बम्बई भेजे गये। प्रारम्भिक जाँच के पश्चात् मजिस्ट्रेट ने हरजी भाई व बृजदास के लिए वारन्ट जारी किये और उन्हें बन्दीगृह भिजवा दिया। शासन की आज्ञा के बिना उन्हें छोड़ने की मनाही कर दी गयी। इसके बाद जो जाँच हुई उसका विवरण निम्नांकित पत्रावली में उपलब्ध है :—

(१) जी०केम्बेल—कलक्टर तथा मैजिस्ट्रेट कराची का पत्र आयुक्त सिन्ध को। दिनांक २७ जनवरी सं० ५८।

(२) जी० ई० लान्स--मैजिस्ट्रेट कानपुर का पत्र डिप्टी मैजिस्ट्रेट कराची को। संख्या ९ दिनांक ६ जनवरी १८६२ ई०।

(३) जे० डी० इन्वरटी—आयुक्त सिन्ध का पत्र सर जार्ज आर० क्लार्क तत्कालीन गवर्नर व अध्यक्ष कौंसिल बम्बई को। संख्या ७, दिनांक जनवरी १८६२।

उपर्युक्त सूचना प्राप्त करने के पश्चात् बम्बई के गवर्नर ने भारतीय शासन से अग्रिम कार्यवाही के लिए आदेश मांगे। उत्तर में स्थानापन्न सचिव, कर्नल एच० एस० ड्यूरेण्ड ने बम्बई के गवर्नर को बताया कि कराची में बन्दी बनाये गये व्यक्तियों को पूर्ण परीक्षण एवं पहचाने जाने के लिए कानपुर भेज दिया जाये। परन्तु बम्बई शासन के कृते सचिव स्टीवार्ड के पत्र संख्या १८८, दिनांक ८ मई १८६२ से ज्ञात होता है कि बन्दियों को २९ अप्रैल को पांडो कम्पनी स्टीमर—सालसेठी के द्वारा कलकत्ता रवाना कर दिया गया। परन्तु बन्दी द्वारा गुजराती बोलने व नाना साहब को मराठी का ज्ञान न होने से सन्देह उत्पन्न हो गया और फलतः अग्रिम जाँच की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। फलस्वरूप सचिव भारतीय शासन ने पत्र संख्या ५०७, दिनांक २७ मई १८६२ को बन्दियों के पुनः बम्बई भेजे

जाने की आज्ञा दी। साथ ही में यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि यदि उनकी संदिग्धता प्रमाणित होती हो तो रिहा कर दिया जाये और उनको इतने दिन बिना किसी प्रमाण के बन्दी बनाये रखने के लिए कुछ हरजाना भी दिया जाये।

परन्तु इसी मध्य में पुलिस आयुक्त कलकत्ता के पत्र संख्या ४६२ व ४७७ दिनांक १५ व १७ मई १८६२ से ज्ञात हुआ कि दोनों बन्दी सकुशल कलकत्ता पहुँच गए व उनके वाराणसी होते हुए कानपुर भेजने का प्रबन्ध होने लगा। परन्तु १७ मई के पत्र से पता चलता है कि बन्दियों को हारमुसजी बैरामजी मोदी ने, जो कलकत्ता में सीततोला गली-मकान सं० २६ में रहते थे, देखकर निम्न-लिखित कथन दिया:—

"......मैं बहुत दिन तक नाना की सेवा में था—७ जुलाई १८५२ से दिसम्बर १८५५ तक–उनके कार्य से मैं दो बार इंगलैण्ड गया था। मैं उन्हें खूब जानता हूँ। परन्तु जो व्यक्ति मुझे दिखाया गया है वह नाना नहीं है—वह उनसे तनिक भी नहीं मिलता।" इसी प्रकार एक दूसरे व्यक्ति फिलिप अलकन्तारा ने भी संदिग्ध नाना साहब को भिन्न व्यक्ति बताया। लाला ईश्वरी प्रसाद तथा मेजर ब्राउटन ने भी इसी सन्देह की पुष्टि की।

उपर्युक्त चार कथनों के आधार पर भारतीय शासन के सचिव ने पत्र संख्या ४१ में दिनांक–फोर्ट विलियम—२७ मई १८६२ द्वारा आज्ञा दी कि बन्दियों को बम्बई लौटा दिया जाये। बन्दियों के जो फोटो कानपुर जाँच के लिये भेजे गय थे, उन पर भी यह राय दी गयी कि फोटो किसी अन्य व्यक्ति के थे। फलत: तथाकथित नाना साहब को तथा उनके तथाकथित सेवक को बम्बई लौटा दिया गया व रिहा कर दिया गया। इस पर १८६१-६२ का नाना साहब को पुन: बन्दी बनाने का प्रयास असफल रहा।

अजमेर में तथाकथित नाना : २२ जून १८६३ ई०

अजमेर के डिप्टी कमिश्नर मि० एण्डरसन को प्रेषित पत्र में दिनांक ९ अप्रैल १८६३ ई० को सी० फिरजेट ने बताया कि बम्बई में १८५७ की क्रान्ति के कुछ नायकों की उपस्थिति के विषय में कुछ समाचार मिले थे। पूना में एक मन्दिर में निवास करते हुए दो साधुओं का पता चला जो नाना साहब एवं बिठूर से जानकारी रखते थे। उनमें से गयाप्रसाद कानपुर का निवासी था और अक्सर बिठूर जाया करता था। वहाँ पुरुषोत्तम भट्ट से उसकी भेंट होती थी। पूना में जब दोनों की भेंट हुई तो भट्ट ने गुप्त रूप से गया प्रसाद को बताया कि नाना साहब जयपुर में एक नदी

के किनारे मन्दिर में रहते थे।[1] वहाँ नाना साहब नैपाल से ६ माह पहले आये थे, रास्ते में बद्रीनारायण के जंगल पड़े थे। उसमें नाना साहब की पत्नी के स्वर्गवास का वर्णन किया गया था, परन्तु वह केवल भ्रामक था। इस कथन के अनुसार नाना ने नैपाल में बेगम हज़रत महल, ब्रिजीस कद्र तथा अपनी माता को छोड़ा। यह वर्णन देते हुए फिरज़ेट ने बताया कि तथाकथित तथ्यों का परीक्षण नितान्त आवश्यक था। तदनुसार गुप्तचरों द्वारा अजमेर, जयपुर आदि स्थानों में नाना साहब के विषय में पता चलाना आवश्यक हो गया। फलतः बम्बई से चार गुप्तचर इस आशय से रवाना किये गये और पुरुषोत्तम भट्ट को बन्दीगृह में डाल दिया गया। जयपुर स्थित पोलिटिकल एजेन्ट को पत्र संख्या १३-१८६३ दिनांक २७ अप्रैल से सूचित किया गया कि वह गुप्तचरों को आवश्यकीय सहायता प्रदान करें।

मेजर डेविडसन, डिप्टी कमिश्नर अजमेर ने अपने २३ जून १८६३ ई० के पत्र में बताया कि उपर्युक्त गुप्तचर किस भाँति उसके न्यायालय में २ बजे दिन को आये। उनके पास दो पत्र थे जिनमें एक के ऊपर बम्बई शासन के सचिव की मुहर थी जो जयपुर स्थित पोलिटिकल एजेन्ट को संबोधित था। पत्र खोलने के पश्चात् गुप्तचरों के परामर्श पर तथाकथित नाना साहब को बन्दी बनाने की तैयारी की। सायंकाल के समय मेजर डेविडसन स्वयं सिपाहियों के साथ मुण्डा स्थान कुण्डों के समीप पहुँचा। चारों ओर खोज करने के उपरान्त समस्त मस्जिदों, दालानों इत्यादि को देखते-भालते वह पुरानी तहसील के समीप पहुँचे जहाँ एक अँधियारे दालान में एक लम्बे व्यक्ति का सामना हुआ जिससे चिल्ला कर पूंछा गया कि वह कौन है ? गुप्तचर ने तुरन्त चिल्ला कर बताया कि वह पण्डित अर्थात् तथाकथित नाना हैं। यह सुनते ही डेविडसन ने सारजेन्ट को उन्हें बन्दी बनाने की आज्ञा दी। आज्ञा मिलते ही नाना साहब तथा अन्धे पुजारी को तुरन्त बन्दी बना लिया गया। उनको तोपखाने ले जाकर वस्त्रहीन करके तलाशी ली गयी। तदुपरान्त उन्हें पहनने को दूसरे वस्त्र दिये गये और यूरोपियन सिपाहियों के संरक्षण में बन्द कर दिया गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल नानाराव तथा उनके परिवार के हुलिए निकलवा कर तथाकथित नाना साहब से तुलना की गयी। सब लोग मिलावट—सादृश्य पर

१. संभवतः उसका तात्पर्य गलता जी से हो जहाँ इस प्रकार के कई मन्दिर हैं और वह स्थान नगर से भी दूर है।

आश्चर्य करने लगे। बन्दी की अवस्था ४५ वर्ष की थी और वह दक्षिणी ब्राह्मण होना स्वीकार करता था। परन्तु उसके इस कथन की कि वह २८ वर्ष से फकीर था—उसके तलुओं से पुष्टि नहीं होती थी। उसकी ऊँचाई लगभग ५ फुट ६ इंच थी। उसकी नासिका भी सुडौल व सीधी थी और चेहरा मराठा से मिलता-जुलता था। उसने दाढ़ी बढ़ायी हुई थी और ठोढ़ी पर गाँठ लगी थी। हाव-भाव से ज्ञात होता था कि वह शिष्ट समाज में विचरण कर चुका था। संभवतः वह अंग्रेजी भी समझता था। अंत में पत्र में डेविडसन ने बताया कि बन्दी की सुरक्षा के लिए यूरोपियन सैनिक नसीराबाद से बुला लिये गये हैं। यदि यह समाचार कि तात्या-टोपे भी जीवित थे सत्य था और वह बीकानेर में निवास कर रहे थे तो संभव था कि नाना साहब को छुड़ा ले जाने का प्रयास हो। निश्चयपूर्वक यह कहना तो कठिन था कि नाना साहब ही पकड़े गये क्योंकि यह समाचार कई बार असत्य साबित हो चुका था। फलतः डेविडसन ने उपर्युक्त पत्र द्वारा उत्तरपश्चिमी प्रान्त के शासन-सचिव, नैनीताल से आवश्यकीय आदेश माँगे।[1]

उपर्युक्त पत्र के उत्तर में शासन-सचिव ने अपने पत्र नैनीताल-दिनांक २ जुलाई १८६३ में मेजर डेविडसन डिप्टी कमिश्नर अजमेर तथा मारवाड़ को बताया कि तथाकथित नाना साहब को बन्दी बनाना सराहनीय कार्य था। परन्तु शासन उसकी पूर्ण परीक्षा तथा फोटो की तुलना की आख्या देखकर ही विश्वास कर पायेगा, वाराणसी के डा० चेको सिविल सर्जन तथा मेजर राउटन फैजाबाद के पहचानने के पश्चात् ही अपना निश्चय देगी। यदि अजमेर में परीक्षण में कठिनाई हो तो कानपुर में बन्दियों को लाकर सुरक्षित रूप से परीक्षण व पहचान करायी जा सकती थी। इस उत्तर की प्रतिलिपि भारतीय शासन के सचिव को पत्र संख्या २८९ए-१८६३—वही तिथि—को प्रेषित कर दी गयी।

दूसरी जुलाई को ही अजमेर से डेविडसन ने तथाकथित नाना साहब के दो फोटो—एक दाढ़ी के साथ द्वितीय हजामत बनवाने के पश्चात् के—लेकर उत्तर-पश्चिमी-प्रान्तीय शासन-नैनीताल को प्रेषित किये गये। इस पत्र में यह भी सूचना दी गयी कि बन्दियों के सामान का परीक्षण करने पर ६ प्रकार के विष तथा कुछ पत्र जो पढ़े नहीं जा सकते मिले। गुप्तचर गया प्रसाद के सम्मुख आने पर बन्दी चीखता व चिल्लाता था और कहता था कि नाना साहब तो कभी के मर गये।

१. कानपुर कलेक्टरी रिकार्ड्स—बस्ता संख्या : ७३८, संदिग्ध नानासाहब अप्पाराम अजमेर का अभियोग।

फोटो की जाँच करके मि० कोर्ट ने, जो नाना को खूब जानते थे, बताया कि वह वास्तविक नाना नहीं थे। इसी आशय का परामर्श डा० चेको ने दिया इसलिए यह नितान्त आवश्यक था कि जनता के आवेश को बचाने के लिए शीघ्र निश्चय हो जाना चाहिए था कि नाना साहब संदिग्ध थे। इसके लिए उन्हें शीघ्र कानपुर पहुँचाया जाये जहां अब भी बहुत से व्यक्ति उन्हें पहचान सकते थे।[1] पत्र भेजने के पश्चात शासन ने कानपुर के जिला मजिस्ट्रेट को आवश्यकीय परीक्षण के लिए प्रबन्ध करने का आदेश दिया। बन्दियों के कानपुर आने की सूचना शासन को तुरन्त देने की आज्ञा दी गयी।

गोपाल जी अन्धे पुजारी का कथन : (केवल सारांश)

तीन वर्ष पहले वह द्वारका में एक मुण्डा में नाना साहब से मिला था, जिन्होंने अपना नाम अप्पा राम बताया था। उन्होंने यह भी बताया कि यद्यपि उनका नाम नाना भट्ट था परन्तु उनको केवल अप्पाराम कह कर ही पुकारा जाये। तत्पश्चात् वह कच्छ भूज में राजा के पास गये जहाँ उसकी कन्या का विवाह हो रहा था। राजा ने भिखारियों को १५) दान दिया। वहाँ दो माह रहने के पश्चात् वह सूबेदारों से भिक्षा मांगते रहे। इस प्रकार कराची पहुँच गये जहाँ ३ दिन रहे। सिन्ध में हैदराबाद नामक स्थान पर वह लगभग एक माह रहे। स्थान-स्थान पर अंग्रेजी राज्य के विषय में बात होती रही परन्तु नाना अपना भेद नहीं बताते थे। वहाँ सेशक्कर व शिकारपुर होते हुए वह मुल्तान पहुँचे। मुल्तान में नाना साहब दो माह रहे तथा बहावलपुर जाकर एक माह बिताया। तदुपरान्त् रावलपिण्डी जाकर हुकुम चन्द खत्री की सराय में ८ दिन रहे। वहाँ से नाना एवं नारोपन्त काश्मीर-लाहौर व अमृतसर गये। अन्धा पुजारी रावलपिण्डी ही ठहरा रहा। तब नाना वापस लौट आये। लौटने पर नाना ने बताया कि काश्मीर के महाराजा ने सहायता देने का वचन दिया। काश्मीर का ठंडा पानी पीने से दोनों के दाँत गिर गये थे।

रावलपिण्डी से पेशावर जाकर नाना ने सेना के भारतीय नायकों से भेंट की। वहाँ उन्हें ज्ञात हुआ कि अफगानिस्तान के अमीर दोस्त मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् विप्लव होगा। उन्होंने यह भी बताया कि दोस्त मुहम्मद अपने लड़के हैदर के साथ पेशावर आया और नाना से भेंट की। पेशावर से नाना नौशेरवाँ गये जहाँ

१. पत्र संख्या ३०५–१८६३, आर० सिम्सन, सचिव प्रान्तीय शासन, उत्तर पश्चिमी प्रान्त का मेजर डेविडसन को पत्र, दिनांक २१ जुलाई १८६३ ई०।

कर्नल दुलीराज से भेंट हुई। तत्पश्चात् अटक के दुर्ग में सूरदास मुण्डा में रेजीमेन्ट के सूबेदार भवानीसिंह से भेंट हुई। वहाँ से हज़ारा गये जहाँ एक रिसाला था। उसके बाद नाभा होते हुए बीकानेर पहुँचे, जहाँ ४ माह रहे।

तात्या से भेंट

बीकानेर में एक उद्यान में तात्या रहते थे। उनके साथ १० सवार थे। नाना साहब ने बीकानेर नरेश से तात्या की देखभाल करने के लिए प्रार्थना की। राजा ने नाना को आश्वासन दिया। राजा ने नाना साहब की आवभगत की। नाना ने बीकानेर नरेश से सहायता माँगी और बताया कि सिन्धिया, होल्कर तथा काश्मीर महाराजा उनकी सहायता करेंगे। परन्तु राजा ने स्पष्ट बताया कि सिंधिया व होल्कर तो नाना साहब पेशवा के सेवक हैं, वह तो केवल दिल्ली के नरेश को ही सहायता दे सकते थे। तत्पश्चात् बीकानेर छोड़कर नागोइ पहुँचे और पाली, कुछवाँ होते हुए किशनगढ़। वहां एक माह रहे। राजा ने भिखारी समझ कर १०) भेंट किये। वहाँ से नसीराबाद पहुँचे जहाँ वहडिग्गी के समीप मुण्डा में ठहरे। नसीराबाद से भिवाई मसौदा, बदनौर, असीन, भिकलाना, तथा उदयपुर का भ्रमण किया। इन सभी स्थानों पर कोई नहीं जान सका कि वह ब्राह्मण से भी अधिक कुछ और थे। उदयपुर से सलुम्बा पहुँचे जहाँ ठाकुर ने नाना की आवभगत की। वह नाना को पहचानता था। सलुम्बा में तात्या, रावसाहब तथा बेगम रहते थे। तात्या टोपे को फाँसी नहीं हुई थी। वह तो कोई और ही व्यक्ति था। सलुम्बा में १२ या १५ हजार व्यक्ति, जिनमें अधिकतर पुरबिया सिपाही थे, रहते थे। वह सलुम्बा में १५ दिन ठहरे। ठाकुर नाना साहब को वर्षा ऋतु में वहीं रोकना चाहते थे। आवा के ठाकुर खुशालसिंह भी सलुम्बा में थे। वहाँ युद्ध के लिए तोपें, हथियार, तथा अन्य सामग्री तैयार थी। यह कहना कठिन था कि युद्ध कब आरम्भ हो जाये। सुलम्बा के सैनिक दशहरे पर तात्या टोपे के नेतृत्व में विद्रोह करने को तैयार थे। आवा का ठाकुर पुनः आवा जीतने को प्रस्तुत था। नाना साहब ने दशहरे का समय उचित नहीं समझा। वह सलुम्बा छोड़कर पोखर आ गये। सलुम्वा के राजा व आवा के ठाकुर ने नाना को चित्तौर की दिशा में पहुँचा दिया। उनके साथ अनेक सैनिक थे। भीलना में गुप्तचर उनके साथ हो लिये। जब नाना साहब फकीर के वेष में भिक्षा माँगने जाते थे तब उन्हें कोई नहीं पहचानता था। समस्त रजवाड़ा उन्हें भिक्षुक के रूप में जानता था। असीन व बदनूर होते हुए वह बियावर पहुँचे। एक रात्रि सराय में ठहर कर अजमेर पहुँच गये जहां वह बन्दी बना लिये गये।

असीन में ठाकुरों ने हथियार जमा कर रखे थे। नाना साहब ने अपना परिवार

राम राजा के पास छोड़ दिया था, जिसे ८० लाख रुपये सहायता के लिए दिये थे।

उपर्युक्त कथन में इतनी अधिक तथ्य की बातें दी हैं कि उन्हें एकदम असत्य कहना भी कठिन है, परन्तु उन पर विश्वास करना उससे भी अधिक दुष्कर है। नाना के परिवार संबंधी बातें, सलुम्बा में सैनिकों का जमघट इत्यादि मनगढ़ंत जान पड़ती हैं, परन्तु राव साहब व तात्या का गुप्त रूप से बीकानेर तथा रजवाड़े में नाना साहब से भेंट करना नितान्त कपोल-कल्पित नहीं हो सकता। राव साहब के स्वयं अपने दिनांक ४ जुलाई १८६२ के कथन से ज्ञात होता है कि वह फकीर के वेष में पुष्कर जी, अजमेर व जयपुर होते हुए जम्बू काश्मीर गये थे, जहाँ बन्दी बनाये गये। इतना तो स्पष्ट है कि राव साहब जैसे प्रतिष्ठित व अग्रणी नेता ने फकीर के वेष में विचरण किया था। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि संभवतः तात्या टोपे तथा नाना साहब व अन्य नेताओं ने भी यही नीति अपनायी हो। इतना उपर्युक्त कथन से और निश्चय होता है कि क्रान्तिकारी नेता अंग्रेजों के सम्मुख आत्मसमर्पण करने के स्थान पर दर दर भटक कर, व भीख माँग कर जीवन व्यतीत करना कहीं अच्छा समझते थे। फीरोजशाह शहजादा तो सीमा पार करके विदेशों की राजधानियों में भटकते रहे। उनके विषय की जाँच से पता चलता है कि वह किसी धुन में थे—बोखारा, काबुल, तेहरान, कुस्तुनतुनिया इत्यादि स्थानों में जाकर सहायता की याचना करना संभवतः व्यर्थ अवश्य था परन्तु प्रयत्न हुआ अवश्य; तब यह कल्पना भी की जा सकती है कि नाना साहब यदि जीवित थे तो जयपुर, पेशावर, जम्मू इत्यादि घूम कर सैनिकों से सम्पर्क स्थापित करें या दोस्त मुहम्मद से वार्ता करें। उक्ति प्रसिद्ध है—मरता क्या न करता। नाना साहब इत्यादि नायकों ने यह तो समझ ही लिया था कि उनका सब कुछ खो गया। फिर भी प्रयत्नशील रहना व पुनः विद्रोह, क्रान्ति या युद्ध के स्वप्न देखना असंगत नहीं था। तीर्थस्थानों में सहस्रों व्यक्तियों की भीड़ में प्रचार का भी अच्छा अवसर रहता है व छिपने का भी। इसी प्रसंग में १८६२ ई० में हरिद्वार में कुम्भ मेले के अवसर पर, 'पायनीयर' समाचार पत्र के एक संवाददाता द्वारा यह प्रसिद्ध हो गया था कि पुनः क्रान्ति होने वाली थी और जम्बू के राजा गुलाबसिंह उसमें भाग लेंगे। देशी राजाओं व राज्यों का इतिहास भी यह बताता है कि वैसे तो उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के सम्मुख समर्पण कर दिया था, परन्तु यदाकदा राजा-रजवाड़े अपनी आन पर अड़ जाते थे व रेजीडेन्ट से लड़ बैठते थे, फिर चाहे उनकी गद्दी ही छिन जाये। नाना साहब व्यक्तिगत रूप से राजाओं से सम्पर्क स्थापित करके सहायता माँग सकते थे। मिलना या न मिलना दूसरी बात थी। इस दृष्टिकोण से अन्धे पुजारी के कथन में सत्यता

की खोज करना असंगत नहीं। अतिशयोक्ति तो संभावित है ही—साथ ही साथ सत्यता को छिपाने के लिए कुछ मिथ्या कथन भी हो सकते हैं। परन्तु ऐसे फकीरों के विषय में यह अधिक संभावित था कि वह स्वयं नाना साहब न होकर अंग्रेज अधिकारियों को धोखे में डालने के लिए नाना साहब के सम्पर्क में रहे हुए उन्हीं से मिलते-जुलते अन्य सेवक हों।

परीक्षण आख्या

उत्तर-पश्चिमी शासन के सचिव ने मेजर डेविडसन, डिप्टी कमिश्नर अजमेर को पत्र संख्या ३५-दिनांक नैनीताल २१ जुलाई १८६३ द्वारा बताया कि लेफ्टीनेन्ट गवर्नर को यह निश्चित नहीं था कि बन्दी बनाये हुए व्यक्ति नाना ही थे। क्योंकि डा० चेखो तथा मि० कोर्ट, जो नाना साहब को व्यक्तिगत रूप व घनिष्टता से जानते थे, तथाकथित नाना की आकृति असली नाना साहब से भिन्न बताते हैं। फोटो भी हुलिए के विवरण से तुलना में ठीक नहीं उतरते। इसलिए उन्होंने बन्दियों को शीघ्र कानपुर लाकर जाँच कराने का आदेश दिया। फलस्वरूप कानपुर में विस्तृत परीक्षण हुआ जिसका फल इस प्रकार था :—

यूरोपियन गवाहों का बयान

कप्तान कैडवेल ने बताया कि बन्दी केवल भिखारी थे। डा० चेखो ने बयान दिया कि बन्दी असली नाना से १५ वर्ष उम्र में बड़ा था व मामूली आकृति का था। डा० ज्यूरस ने भी इसकी पुष्टि की। अजमेर के डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलीस ने बताया कि बन्दी के रूप में उन्होंने कोई ऐसी बात नहीं देखी जिससे यह प्रतीत हो कि वह नाना साहब ही थे।

तथाकथित नाना साहब का बयान

स्वयं बन्दी ने बताया कि वह मध्य प्रान्त में एलिचपुर के पास मुगलई जिला परतवाड़ी में नेरी थाना में पैदा हुआ था। यह गाँव वर्धा नदी के किनारे बसा हुआ था व तीन वर्ष हुए बह गया था। बन्दी ने बताया कि वह जब १० वर्ष का था तब बिठूर गया था और १३ वर्ष की अवस्था से भिखारी का रूप धारण किये था। वह अपने को ब्राह्मण बताता था। डिप्टी कमिश्नर एलिचपुर ने जाँच करने के पश्चात् १५ सितम्बर १८६३ ई० के पत्र के प्रसंग में उत्तर दिया कि वहाँ नेरी नाम का गाँव ही नहीं था। वर्धा व एलिचपुर के अधिकारियों ने एक सा ही उत्तर दिया।

दोनों ने सितम्बर व अक्तूबर १८६३ ई० में पूरी जाँच करके बताया कि वर्धा नदी के किनारे ऐसा कोई गाँव नहीं था।

देशीय व्यक्तियों का कथन

अधिकतर कथनों में बताया गया कि असली नाना साहब बन्दी व्यक्ति से लम्बे थे व कहीं अधिक हृष्ट-पुष्ट। दाढ़ी अवश्य कुछ मिलती-जुलती थी। निम्नलिखित व्यक्तियों ने २४ अगस्त १८६३ ई० को नाना साहब विषयक कथन दिये :—

नूर मोहम्मद, कानपुर होटल का मालिक; ठाकुर हृदयसिंह, बिठूर निवासी; गणेश शास्त्री, बिठूर निवासी; शिवचरन दीक्षित भीकाजी पन्त, बिठूर निवासी; चमनसिंह चौधरी व जमींदार, बिठूर; गुलाम रसूल खाँ इत्यादि। इन सब ने बन्दियों को असली नाना साहब से बिलकुल भिन्न बताया। केवल गया प्रसाद ब्राह्मण, निवासी सचेन्डी, जिला कानपुर ने बन्दी को असली नाना साहब बताया। उसके कथन की पुष्टि द्वारिका तिवारी, गोण्डा बहराइच के निवासी ने की। परन्तु इन दोनों कथनों के ऊपर विश्वास करना असंभव हो गया। नाना साहब की ऊँचाई, रूपरंग इत्यादि सभी में अन्तर बताया गया। फलतः कानपुर के मैजिस्ट्रेट ने अपनी २७ अगस्त १८६३ की आख्या में शासन को सूचना दे दी कि बन्दी असली नाना नहीं थे।

इलाहाबाद कमिश्नर को अपने अर्द्धशासकीय पत्र संख्या ५४ दिनांक २९ अगस्त १८६२ को मैजिस्ट्रेट ने बताया कि बन्दियों के फोटो को २०० व्यक्ति भी देखकर पहचान न सके। उसके विचार से वास्तव में एक बहुत बड़ी चाल खेली जा रही थी। दक्षिण व राजपूताने में क्रान्तिकारियों से मिलती-जुलती आकृति वाले फकीर भ्रमणार्थ छोड़ दिये गये थे जिससे शासन का ध्यान असली नायकों व नेताओं की ओर से कृत्रिम बन्दियों की ओर लग जाये। यह फकीर बिल्कुल अनभिज्ञ नहीं थे। वह क्रान्तिकारियों के विषय में जानकारी रखते थे परन्तु अपने कथनों में नमक-मिर्च मिला कर सही व गलत बताते थे।

इसी मध्य में ३० अगस्त को मेजर डेविडसन ने पत्र संख्या ५७ बम्बई से प्राप्त सूचना देते हुए बताया कि बन्दी संभवतः नाना न हों परन्तु परीक्षण के पश्चात् यह जान लेना आवश्यक था कि गुप्तचरों का कथन कहाँ तक मिथ्या था।

इतनी जाँच व उद्विग्नता के पश्चात् उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों के शासन सचिव आर० सिम्सन ने राजाज्ञा सं० ४२७ए दिनांक नैनीताल ५ नवम्बर १८६३ ई० द्वारा कानपुर मैजिस्ट्रेट को सूचित किया कि यद्यपि अजमेर में बन्दी बनाये गये व्यक्तियों के विषय में जो कथन एकत्र हुए हैं उससे बन्दियों का नाना साहब होना

अध्याय १२

पुनः खोज

कानपुर के प्रथम युद्ध के पश्चात् ही जुलाई माह में कानपुर तथा बिठूर पर अधिकार प्राप्त हो जाने के फलस्वरूप नाना साहब की अतुल चल व अचल धन सम्पत्ति अंग्रेजों के हाथ आ गयी। अंग्रेज सैनिकों को आज्ञा दी गयी कि बिठूर में नाना साहब के महल में आग लगा दें। इतना ही नहीं उसे धराशायी करके उस स्थान पर हल चलवा दिया गया। तदुपरान्त लूट का सामान कानपुर ले आया गया। लायी गयी सम्पत्ति में निम्नलिखित वस्तुएँ मुख्य थीं:—

६ सोने की मुद्राएँ। ३ सोने के टुकड़े।

१ गलाये हुए रुपयों की ढेरी। १५ ढेरियाँ शाल के पल्लों से निकली हुई ज़री की चाँदी थी।

३६ रुपये — ५४ चौअन्नी

६८ पैसे— — भारतीय तथा योरोपियन

१ चौड़ी पट्टेदार पायल—तोल—११० रु० भर।

१ चाँदी की तुतही ढक्कन व जँजीर के साथ।

१ चाँदी की तुतही बिना ढक्कन व जंजीर के।

१ चाँदी की खूँटी या हुक।

१ चांदी के थालों की तोडी-मरोड़ी ढेरी।

२२ प्याले व प्लेट।

३ चाँदी व गिलट के शीशे इत्यादि के साथ के टुकड़े।

यह सब वस्तुएँ नाना साहब के महलों के खण्डहरों से प्राप्त हुईं थीं। उन्हें शेरेर द्वारा २१ जनवरी १८५८ ई० को बिठूर से कानपुर व इलाहाबाद भेजा गया था। महलों के अतिरिक्त कुओं से प्राप्त वस्तुएँ भी इलाहाबाद पहुँचायी गयीं। समस्त सामग्री को नीलाम द्वारा जनवरी व जुलाई माह में क्रय कर दिया गया।

शासन ने कुओं से उपलब्ध वस्तुओं को प्राप्त करने का समाचार सुनते ही उसके विषय में पूर्ण जाँच की आज्ञा पत्र संख्या ४८७-१८५८ दिनांक ८ जुलाई १८५८ई० से दिलवायी। भारतीय शासन ने भी पत्र संख्या २६४-१८५८, दिनांक २४ जून

१८५८ द्वारा यह सूचना माँगी। इस कार्य में सेना के ठेकेदार ग्रिन्डले एण्ड कम्पनी ने सहायता की और कुओं से नाना साहब की सम्पत्ति में लखनऊ के जवाहरात भी मिले। यह सब जून में इलाहाबाद पहुँचा दिये गये थे। इनमें सोने-चाँदी के थाल इत्यादि बर्तन भी शामिल थे। नाना साहब परिवार सहित बिठूर से विदा होते समय बहुत ही सीमित बहुमूल्य सम्पत्ति अपने हाथ ले जा सके थे। फिर भी आभूषण इत्यादि तथा बहुमूल्य पेशवाई हीरे जवाहरात वह अपने साथ अवश्य ले गये थे क्योंकि नैपाल की तराई में राणा द्वारा जाँच के समय भी उनके पास करोड़ों की सम्पत्ति थी।

क्रान्तिकारी संग्राम के मध्य से ही उनकी सम्पत्ति अपहरण का क्रम आरंभ हो गया था। मिर्जापुर के मैजिस्ट्रेट सार्जेन्ट जी० टकर ने वाराणसी के आयुक्त (कमिश्नर) एच० सी० टकर को पत्र संख्या १२२ मिर्जापुर दिनांक ७ सितम्बर १८५७ ई० में ही बताया कि उसने नाना साहब द्वारा अधिकृत एक गोदाम को, जो २०,०००) से २५,०००) की लागत का था, अपने अधिकार में ले लिया था।[१] नाना साहब के नौकरों को छुट्टी दे दी गयी थी, और उनकी एवज में किराया वसूल करने तथा उसकी देखभाल करने के लिए अन्य सेवक नियुक्त किये गये। इसी प्रकार वाराणसी व अन्य स्थानों पर की सम्पत्ति का भी अपहरण किया गया। इसकी विस्तृत सूची वाराणसी कलेक्टरी के रिकार्ड रूम में १८६० ई० के रजिस्टर में पंजीकृत है। उस सूची के अनुसार काशी में कबीर चौरा उद्यान, भैरों बाजार के ५ मकान, २ अन्य खपरैलवाले मकान, मणिकर्णिका घाट पर मुहल्ला गढ़वासी टोला में भवन, बंगाली टोला में चौरासी घाट पर पक्का भवन तथा मन्दिर शासन द्वारा हड़प कर लिये गये। लक्ष्मणवाला भवन जो बड़ा प्रसिद्ध था, ग्वालियर के सिन्धिया को भेंट में दे दिया गया।[२]

इसी प्रकार १८५८ ई० में नाना साहब की सम्पत्ति की कानपुर स्थिति भूमि को हड़प कर लिया गया और उसे सितम्बर माह में राजकीय उद्यान के मैदान में सम्मिलित कर लिया गया। नवाबगंज मुहल्ले में स्थित भवन को इस प्रकार जला दिया गया कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। उसकी केवल कच्ची दीवारें शेष रह गयीं।[३]

१. मिर्जापुर कलेक्टरी में सुरक्षित क्रान्ति सम्बन्धी अभिलेख—खण्ड २२३।

२. वाराणसी कलेक्टरी, बस्ता संख्या ११, १८६० का रजिस्टर।

३. कानपुर कलेक्टरी म्यूटिनी बस्ता—पत्रावली संख्या १४९३–१९५८ ई० राजाज्ञा दिनांक इलाहाबाद—२० सितम्बर, १८५८ ई०।

फरार नायकों की सूची

शासन सम्पत्ति हरण करके व नाना साहब, उनके परिवार तथा सेवकों के हुलिए प्रकाशित करके तथा उनको बन्दी बनाने के लिए १ लाख पुरस्कार घोषित करके भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। समस्त जिलों की भाँति क्रान्ति में अंग्रेजी शासन के प्रति भक्ति न रखने वालों में प्रमुख व्यक्तियों की सूची बनायी गयी, उनमें नाना साहब का नाम सर्वप्रथम रखा गया। उनके अतिरिक्त उस सूची में बाबा भट्ट, बालासाहब; राव साहब; अजीमउल्ला; मौलवी सलामत उल्ला; इत्यादि नाम थे। इनमें बन्दी बनाये जाने के लिए केवल नाना साहब के लिए १ लाख रुपये का पुरस्कार था। यह सूची उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों के सचिव के पास अप्रैल माह १८६२ ई० में पहुँच गयी थी। उसकी प्राप्ति स्वीकार करते हुए सर जार्ज कूपर ने इलाहाबाद के आयुक्त को दिनांक नैनीताल २६ अप्रैल १८६२ ई० के पत्र संख्या २७० [A of १८६२] २७०–ए–१८६२ ई० में बताया :—

"लेफ्टीनेन्ट गवर्नर का विचार है कि इस प्रकार के पुरस्कार ३ या ४ वर्ष से घोषित होने पर भी कोई फल नहीं निकला।" इससे यह विचार दृढ़ होता है कि आर्थिक प्रलोभन वाले पुरस्कारों से कभी भी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी बन्दी बनाये नहीं जा सकते थे। इनके अप्रभावशाली प्रकाशन के कारण लेफ्टीनेन्ट गवर्नर कोई इसका प्रमाण पाते कि इस प्रलोभन को जारी रखना आवश्यक नहीं था। इसलिए उन्होंने आज्ञा दी कि नाना साहब को छोड़कर अन्य क्रान्तिकारियों के लिए घोषित इनामों को वापस ले लें। केवल नाना साहब के बन्दी बनाये जाने के विषय में छूट दी गयी क्योंकि एक लाख रुपयों की धनराशि अवश्य ऐसी थी कि किसी भी व्यक्ति को प्रलोभन दिला सकती थी। परन्तु सराहनीय बात यह है कि देशभक्ति की इतनी भावना उस समय भी थी कि इतने बड़े प्रलोभन को देशवासियों ने तिलाजंलि दे दी।

कानपुर जिले के क्रान्तिकारी विद्रोहियों की सूची में नाना साहब का सर्वप्रथम नाम था और बिठूर के बाबा भट्ट, बालासाहब, राव साहब, अजीमउल्ला खाँ, मौलवी सलामत उल्लाह, राजा सतीशप्रसाद, ठाकुर शिवराजपुर, राजा दुँगा प्रसाद सचेण्डी, माधोसिंह, राजा करिन्दरगिरि, शाह अली, अहमद उल्ला, अहमद अली, राजा भाउ इत्यादि उल्लिखित थे। इस सूची के अनुसार नाना साहब पर नामी-ग्रामी विद्रोही होने व कानपुर के हत्याकाण्ड का उत्तरदायी होने व उस समय भी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध स्थिति में होने का अभियोग लगाया गया था। बालासाहब, राव साहब व बाबा भट्ट पर नाना साहब को सहयोग देने का अभियोग था। अजीमउल्ला पर नाना साहब के साथ मिलकर क्रान्ति कराने का अभियोग था।

लेफ्टीनेन्ट गवर्नर के उपर्युक्त परामर्श के अनुसार केवल नाना साहब को बन्दी बनवाने वाले के लिए १ लाख का पुरस्कार रखा, अन्य पर से वापस ले लिया।

नाना के सहायकों से पूँछ-ताँछ

सूची प्रकाशित करने के पश्चात् शासन ने कानपुर जिले के क्रान्तिकारियों, निम्नवर्गीय अधिकारियों व सहायकों को बन्दी बनाकर जाँच आरम्भ की। १८५९ ई० में ही अहमद अली, तहसीलदार बन्दी बनाये गये व उनपर अभियोग चलाया गया। वह अकबरपुर के तहसीलदार नियुक्त हुए थे। उन्होंने, जिस समय नाना साहब सफीपुर व फतहपुर चौरासी निवास करते थे, उस समय काल्पी से पत्र-व्यवहार बनाये रखने का कार्य किया।

इसी प्रकार मीर वारिस अली तहसीलदार डेरा मंगलपुर जिला कानपुर से बन्दी बनाये जाने के पश्चात् पूंछताछ की गयी। उस पर नाना के शासन काल में कानपुर में आने और डिप्टी रामलाल की आज्ञा मानने का दोषारोपण किया गया। उसके सफाई पेश करने के पश्चात् भी उसे बिल्कुल निर्दोष नहीं समझा गया व सेवा से मुक्त कर दिया गया।

१८६४ ई० में सूबासिंह व झोरामाऊ के चौकीदार पर नाना साहब की ओर से जासूसी करने का अभियोग लगाया गया। उसने अपने कथन में बताया कि नाना साहब की मृत्यु हो गयी। इसी प्रकार जस्सासिंह क्रान्तिकारी के एक सहायक को गुप्तचर होने के कारण बन्दी बनाने का प्रयत्न किया गया। परन्तु वह मनुष्य फरार हो गया। इसका मुख्य कारण यह था कि उससे शासन नाना साहब को बन्दी बनाने के लिए कहते थे। उन्नाव के डिप्टी कमिश्नर ने सुझाव दिया कि शायद यदि उस गुप्तचर को यह ज्ञात हो कि यदि वह नाना साहब को बन्दी बनवा देगा तो स्वयं पकड़े जाने की जगह पुरस्कार पायेगा तो वह पुनः उपस्थित हो जाये।[1] परन्तु यह प्रयत्न भी विफल रहा।

नारोपन्त मामा

बम्बई शासन के स्थानापन्न सचिव को नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज़ शासन सचिव द्वारा प्रेषित पत्रावली संख्या १२, १८६२—शिविर कुबरायठी-दिनांक १७ जन-

१. कानपुर कलेक्टरी इंगलिश रिकार्ड रूम—पत्रावली संख्या ७२९ XIII विभाग, ब—ईल्लत ग़दर।

वरी १८६२ से ज्ञात होता है कि नारोपन्त मामा के विरुद्ध क्रान्ति में नायक होने के आरोप सिद्ध नहीं हो पाये थे। इसलिए उसे रिहा करना उचित समझा गया होगा। नारोपन्त के विरुद्ध क्रान्ति में तार तोड़ने का अभियोग लगाया गया था। नारोपन्त नाना साहब की तृतीय धर्मपत्नी के मामा थे व क्रान्ति में सम्मिलित हुए थे। उन्हें सब लोग नारोपन्त मामा कहते थे। उन्हें कानपुर-दिल्ली मार्ग पर तार काटने का कार्य सुपुर्द था। परन्तु इससे अधिक और कोई आरोप सिद्ध नहीं हो पाया।

नाना साहब के सहायकों एवं सम्बन्धियों को भी बन्दी बनाने व पूंछताछ करने के पश्चात् नाना साहब के रहस्यमय गुप्त आवास का पता नहीं चल पाया। १८६४ ई० के पश्चात् भी उन्हें बन्दी बनाने का शासन द्वारा प्रयत्न बराबर जारी रहा। भारतीय शासन राणा जंगबहादुर पर तराई में बसे हुए क्रान्तिकारियों को एक-एक करके बन्दी बनाने पर बाध्य करता रहा। अनेक क्रान्तिकारी बन्दी बनाये गये और कालापानी भेज दिये गये।

सहसा २३ अक्टूबर सन् १८७४ ई० में दैनिक समाचार पत्र 'पायनियर' ने प्रकाशित किया कि—"प्रमुख विद्रोहियों में भी परम विद्रोही—शायद गदर के प्रवर्त्तक जो सफलतापूर्वक बचकर निकल गये थे"—अब पकड़ गये थे।[1] 'पायनियर' के अनुसार तार द्वारा यह ज्ञात हुआ कि "नाना साहब न केवल पकड़े गये हैं वरन् उन्होंने सब कुछ स्वीकार भी कर लिया है। पकड़ा हुआ व्यक्ति अपने को नाना साहब बताता है।" एक-एक करके क्रान्ति के सभी नेता पकड़े जा चुके थे अथवा मर चुके थे। बहुत से व्यक्तियों का विश्वास था कि वे मर गये; अन्य व्यक्ति उनको नैपाल में ही आवास करते हुए बताते थे।

मुरार में तथाकथित नाना

बन्दी बनाये जाने के पश्चात् संदिग्ध नाना साहब ने परीक्षण के समय दिये गये कथन में बताया कि उसका नाम हनवन्ता-मराठा क्षत्रीय था। वाराणसी में उसका जन्म हुआ था, और ७ माह की अवस्था में वह चित्रकूट ले जाया गया था। बुन्देलखण्ड में सिरोहाँ के निकट एक लश्कर में उसके पिता सिवायत राय की सेवा में अश्वारोही थे। १० वर्ष की अवस्था में वह इन्दौर गया। और महन्त सिया रामदास का शिष्य हो गया। यह महन्त पीलियाकार मन्दिर एवं धर्मशाला के अध्यक्ष

१. इलाहाबाद से प्रकाशित 'दि पायनियर'—शुक्रवार दिनांक २३ अक्तूबर १८७४ ई० की प्रति तथा २६ अक्तूबर १८७४ ई० की प्रति।

थे और होल्कर महाराजा के राजगुरु कहलाते थे। परीक्षण में द्वितीय कथन में उसने बताया कि वह घर से भाग आया था क्योंकि मराठी पढ़ने में वह असमर्थ था। उसके कथनानुसार सिन्धिया की दूसरी अश्वारोही सेना में उसका भाई लक्ष्मण राव सवार था। ग्वालियर में उसने अनेक संबंधियों के नाम बताये। इंदौर में ५ वर्ष राजगुरु के पास रहने के पश्चात् वह तीर्थ करने निकला। द्वारका, बद्रीनाथ तथा जगन्नाथ पुरी भ्रमण किया। इसमें दो वर्ष का समय लग गया। असम में कमच्छा भी गया। वहाँ कर्नल जैन्किन ने उसे अपने बंगले में एक कुटी डालने दी और वह वहाँ १३ वर्ष रहा। उस समय उसकी अवस्था १५ या १६ वर्ष की रही होगी। वह १८५७ व ५८ ई० तक जैन्किन की शरण में रहा। वह जैन्किन के परिवार इत्यादि के विषय में भी कुछ तथ्य बताता था। उसके कथनानुसार उसने १८७१ ई० में असम छोड़ा। दो वर्षा ऋतुओं में वह बंगाल रहा और १८७३ ई० की पावस ऋतु में बरेली में निवास किया। बरेली से इन्दौर जाते समय वह ग्वालियर में ठहरा हुआ था जबकि उसके बन्दी बनाये जाने की दुर्घटना घटी।

बन्दी बनाया जाना

संदिग्ध नाना ने बताया कि ग्वालियर में महन्त अयोध्यादास की छोटी धर्मशाला में ठहरा हुआ था। यह महन्त महाराजा सिन्धिया के मन्दिर में पूजा करता था। वहाँ रहते हुए सिन्धिया के निःसन्तान होने पर वार्ता चली। एक ने सुझाव दिया कि महाराजा को पत्र लिखा जाये कि यदि सिन्धिया कुछ दान-दक्षिणा दें तो संभवतः उनके सन्तान हो जाये। फलस्वरूप अक्तूबर माह में सायंकाल के समय महाराजा अपने सेवकों के साथ धर्मशाला में पधारे। वहाँ उन्हें हनवन्ता तथा कथित नाना से परिचित कराया गया, जिन्होंने सन्तानोत्पत्ति का आश्वासन दिया। महाराजा ने कहा कि वह उन्हें महलों में ले जायेंगे तथा उनकी सेवा करेंगे। तदुपरान्त महन्त अयोध्यादास के साथ एक पालकी में संदिग्ध नाना महल में पहुँचे। वहां उन्हें दालान में बैठाया गया व उन्हें भोजन तथा गाँजा का सेवन कराया गया। जैसे ही नशा चढ़ा वहाँ एक अंग्रेज अधिकारी का प्रवेश हुआ। वह उसी के समीप वार्ता करता रहा और कुछ कागज पर लिखता रहा। परन्तु हनवन्ता को उसका कुछ स्मरण नहीं था क्योंकि उसी के उपरान्त नशे की दशा में उसे खींच कर बाहर पहुंचा दिया गया। दूसरे दिन महन्त ने उसके एक साथी द्वारा दिये गये पत्र के साथ महाराजा को एक पत्र भेजा परन्तु साथ ही में बताया कि हनवन्ता को फूलबाग दूसरे निवास-स्थान जाना था। परन्तु उसी दिन उसे फूलबाग की जगह मुरार ले जाया गया और बन्दी बना लिया गया।

हनवन्ता ने बताया कि उसे बाबा आप्टे तथा आना साहब पहचानते थे। आना साहब नाना साहब के सगे भाई बाबा भट्ट का पुत्र था और बाबा आप्टे भी उनके निकट संबंधी थे।

बन्दी को पहचानने का प्रयत्न

३१ अक्टूबर १८७४ ई० को शासन ने कानपुर के जिलाधीश को सूचित किया कि संदिग्ध नाना को कानपुर भेजा जा रहा है, उनके स्वागत का वहाँ प्रबन्ध किया जाये। उनके संरक्षण के लिए यूरोपियन पुलिस नियुक्त की जाये। साथ ही मुरार में ही उन्हें पहचानने के लिए नाना साहब के कानपुर के महाजन को तथा बिठूर के नारायण राव को बुलाया गया। मुरार में गवर्नर जनरल के एजेन्ट ने बिठूर से ३० नवम्बर को एक मराठा को बुलाया। परन्तु इतने में शासन का यह निश्चय हो गया कि वह कानपुर भेजे जायें। कानपुर के मजिस्ट्रेट ने विश्वास दिलाया कि संदिग्ध नाना साहब की सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर लिया गया है और आवश्यकता पड़ने पर एक पूरी रेजीमेन्ट प्रस्तुत हो जायेगी। नैनीताल से उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों के शासन सचिव ने कानपुर मजिस्ट्रेट को आदेश दिया कि यूरोपियन कथानकों से नाना की पूर्ण जाँच व पहचान करायी जाये। हनवन्ता के साथ बन्दी बनाये गये मुंशी पेमराज को, उसके द्वारा सिन्धिया को भेजे गये मूल पत्र के साथ मुरार से कानपुर बुलवाया गया। बन्दी के अभियोग के संचालन के लिए भारतीय शासन की ओर से एक कानूनी अधिकारी नियुक्त किया गया।

७ नवम्बर १८७४ ई० को बन्दी कानपुर पहुँच गया था। वहाँ उसको ऐसी कोठरी में रखा गया कि कोई बाहर से उसे देख न सके। केवल ४ सहायक स्थानीय अधिकारीगण को उस तक जाने की आज्ञा थी। एक ब्राह्मण को उसे पानी-खाना देने के लिए नियुक्त किया गया था। बालिक राम तहसीलदार कानपुर को उसके भोजन का प्रबन्ध करने के लिए आदेश दिया गया। इसी आशय का पत्र कानपुर मजिस्ट्रेट ने भारतीय शासन को १० नवम्बर को सूचनार्थ प्रेषित किया। तत्पश्चात् स्थानीय गवाहों से नाना को पहचनवाने का प्रयत्न किया गया। नाना की भांति ६ अन्य मनुष्यों को जिनकी आकृति उनसे मिलती-जुलती थी, सातवें बन्दी के साथ एक स्थान पर बैठाया गया। पहचानने वालों का बहुत सोच-विचार करके चुनाव हुआ। उनमें निम्नलिखित मुख्य थे :—

(१) नारायण राव—आत्मज रामचन्द्र सूबेदार, बिठूर निवासी, नाना साहब का परम शत्रु।

(२) मुसम्मात मुसलमानी अदला—नाना साहब की सेवा में तीन वर्ष रहीं थीं।

(३) मुण्डे गंगापुत्र तथा सदैक—गंगा स्नान के समय नाना के सम्पर्क में आते थे।

(४) केशोराव वैद्य—नाना साहब के कई वर्ष चिकित्सक रहे।

(५) छेदी मिस्त्री—सुरेश शास्त्री—सेवक बाजीराव के।

(६) जुगल किशोर जौहरी—नाना साहब का महाजन था व उनसे प्रत्येक माह मिलता था।

(७) होरमुसजी मोदी—बम्बई से नाना साहब के वकील होकर इंगलैण्ड गये थे।

(८) जीवन राम—बरेली निवासी—बिठूर में नाना साहब को गल्ला उपलब्ध कराते थे।

उपर्युक्त कथनों के आधार पर केवल इतना निश्चय हुआ कि नाना साहब को पहचानना अत्यन्त कठिन था। इनं कथनों से वास्तविक नाना साहब के संबंध में पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है क्योंकि संदिग्ध नाना साहब को पहचानने वाले अनेक व्यक्तियों ने अपने कथन दिये। उनके आधार पर नाना साहब की आकृति, उनके आचार-विचार, आचरण इत्यादि के विषय में बहुत सी बातें उपलब्ध हो गयी हैं जो कभी भी जानकारी में नहीं आतीं। पहचानने के समय अधिकतर कथन-दाताओं ने संदिग्ध नाना साहब को वास्तविक नाना से भिन्न बताया। केवल नारायण राव ने उसे वास्तविक नाना बताया। परन्तु अन्य लोगों के कथनों के बताये जाने पर उसने भी स्वीकार किया कि संदिग्ध नाना साहब की आकृति वास्तविक नाना से नहीं मिलती थी, सातों व्यक्तियों में से नाना को पहचानने में सब असफल रहे। मुसम्मात अदला ने बड़े आश्चर्य से कहा कि कहीं ऐसा साधारण व्यक्ति भी नाना हो सकता था ? केशोराव वैद्य ने भी यह मत प्रगट किया। फल-स्वरूप परीक्षण अपूर्ण व असफल रहा। तत्पश्चात् यूरोपियन जानकारों को तथा संदिग्ध नाना के साथी प्रेमराज को कानपुर बुलाया गया।

इसी मध्य में स्थानापन्न एडवोकेट जनरल ने भारतीय शासन के सचिव को परामर्श दिया कि उपलब्ध प्रमाण इतने पर्याप्त थे कि संदिग्ध नाना साहब पर अभि-योग चलाया जा सकता था। एडवोकेट जनरल ने निम्नलिखित प्रमाणों पर विशेष ध्यान दिया :—

१. महाराजा सिन्धिया का कथन।

२. बाबा साहब आप्टे, जामाता बाजीराव पेशवा का कथन।

३. आना साहब, आत्मज बाबा भट्ट—नाना के अपने (निजी) भ्राता का कथन।

४. बन्दी का कर्नल आसबोर्न के सम्मुख यह कथन कि वह बाजीराव पेशवा का पुत्र था।

५. कर्नल माउब्रे थामसन का कथन।

६. डा० ट्रेसीडर का विश्वसनीय कथन।

इनके आधार पर उन्होंने बताया कि महाराजा सिन्धिया का पुनः परीक्षण आवश्यक था। यह अभियोग सेशन्स में चलते रहने पर भी हो सकता था। इसके अतिरिक्त नाना साहब के तथाकथित पत्र पर के हस्ताक्षरों की जाँच आवश्यक थी।

जब मुरार, ग्वालियर तथा कानपुर में संदिग्ध नाना साहब को पहचानने का प्रयत्न हो रहा था, उसी समय नवम्बर माह में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि वास्तविक नाना साहब ने निराश होकर गंगा में शरीर त्याग दिया। उनके साथी रोते रह गये। एक वर्ष हुआ आजमगढ़ में मरते समय एक व्यक्ति ने कथन दिया था कि वह नैपाल के जंगलों में नाना साहब के क्रिया-कर्म के समय उपस्थित था। कलकत्ता के दैनिक समाचारपत्रों के एक संवाददाता ने इस विषय में प्रकाश डालते हुए बतलाया कि वह व्यक्ति शायद जीवित नाना के दिखावटी दाह-संस्कार के समय उपस्थित रहा हो। ३० नवम्बर १८७४ ई० की "पायनियर" की प्रति में मध्य भारत से एक संवाददाता ने प्रकाश डालते हुए बताया कि बन्दी व्यक्ति मराठा था। वह नाना साहब न हो परन्तु उनके साथ रहा अवश्य होगा।[1] फलतः दिसम्बर माह में यह निश्चय हो गया कि बन्दी व्यक्ति नाना साहब न होकर, कोई ऐसा व्यक्ति है जिसकी हुलिया बिल्कुल उनसे मिलती-जुलती है। इस प्रकार मुरार में पकड़े गये तथाकथित नाना साहब नकली निकले जिसका वास्तविक नाम हनवन्ता ही था।

१८ दिसम्बर, मंगलवार, सन् १८७४ के 'पायनियर' में पुनः यह समाचार प्रकाशित हुआ कि नाना साहब की धर्मपत्नी नैपाल में सधवा के रूप में रह रही थीं। अभी हाल ही में नैपाल स्थित भारतीय राजदूत द्वारा छानबीन करने पर यह ज्ञात हुआ कि १८५९ ई० के पश्चात् पर्याप्त समय तक नाना साहब की धर्मपत्नी

१. इलाहाबाद से प्रकाशित 'दि पायनियर' दिनांक ३० नवम्बर १८७४ की प्रति में यह संवाद छपा था :—

"A correspondent in Central India explained that the man in custody, (the supposed Nana), was Mahratta, was not doubted however, and if he was not the rose, he had lived near it."

को राणा जंगबहादुर ने अपने महल के उद्यान में एक कुटीर में आश्रय दिया था। नाना साहब की धर्मपत्नी वहाँ एक मन्दिर में पूजा करती थीं। वर्ष में एक बार नाना साहब अपनी पत्नी से मन्दिर में उत्सव के समय मिलने जाते थे। इसी प्रकार की अन्य कथाएं प्रसिद्ध थीं। परन्तु इस विषय में अग्रिम व पूर्ण जांच हुए बिना निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

ग्वालियर में संदिग्ध नाना साहब

पर्याप्त छानबीन के पश्चात भारतीय शासन के न्याय विभाग के उप-सचिव डी फिट्ज पैट्रिक ने फोर्ट विलियम, कलकत्ता, से १५ दिसम्बर १८७४ ई० के पत्र में बताया कि तथाकथित नाना जिनका नाम जमुना दास प्रमाणित हुआ, तथा प्रेमराज के विरुद्ध आरोप सिद्ध नहीं हुए। पहचानने वाले किसी विशेष निर्णय पर नहीं पहुँच पाये इसलिए वह प्रयत्न नितान्त निष्फल रहा। अस्तु, उन्होंने मिस्टर गोड़ को उनकी रिहाई के लिए प्रार्थना-पत्र देने का परामर्श दिया। और उन्होंने १० दिसम्बर को ऐसा ही किया। मजिस्ट्रेट ने प्रार्थना-पत्र स्वीकार भी कर लिया।

उपलब्ध प्रमाणों में केवल कर्नल माब्रे थाम्सन, बाबा आप्टे, आना भट्ट व दादा भट्ट के कथनों से कुछ संदिग्धता का पता चलता था। परन्तु माब्रे ने स्वयं नाना को अपने जीवन में केवल दो बार देखा था। इसलिए १८६२ ई० में उसकी स्मरण-शक्ति विश्वसनीय नहीं कहीं जा सकती थी। और १८७४ ई० में उस कथन के आधार पर कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता था। बाबा आप्टे ने अपने मूल कथन में संशोधन किया था। आना भट्ट ने कर्नल आसबोर्न के सम्मुख दिये गये कथन को वापिस ले लिया। दादा भट्ट ने यह अवश्य कहा कि उन्हें विश्वास है कि वही नाना था परन्तु उनका कथन सीधे ही स्वीकार नहीं किया जा सकता।

इन प्रमाणों के आधार पर छानबीन अधूरी ही रही। केवल महाराजा सिन्धिया के कथन के आधार पर कोई निर्णय नहीं किया जा सकता था। सिन्धिया ने केवल इतना बताया था कि वह १८५७ ई० से पहले एक बार नाना से मिले थे, जबकि नाना साहब ने उसे एक अमूल्य "सोशन पट्ठा" नामक तलवार भेंट की थी। केवल इसी भेंट की स्मृति के आधार पर वह पहचानने की धृष्टता कर सकता था। परन्तु अन्य प्रमाणों की पुष्टि न होने के कारण सिन्धिया भी अपने कथन से विचलित होने लगा।

छानबीन के मध्य में शासन ने कुल २७ गवाहों के कथन लिये। किसी ने कहा कि बन्दी की आकृति नाना से कुछ-कुछ मिलती थी, अन्य ने बिल्कुल विपरीत बताया

फलतः उप-सचिव इस निर्णय पर पहुँचे कि नाना की अवस्था १७८४ ई० में ५० के लग-भग रही होगी, और ३४० नार्मन शेवर्स तथा अन्य चिकित्सकों के मतानुसार बन्दी की आयु ३५ से ४५ वर्ष की रही होगी। इसके अतिरिक्त नाना साहब कान में "भिकबाली" पहनते थे, तो उसके चिन्ह किसी भी दशा में लुप्त नहीं हो सकते थे। स्वास्थ्य के विषय में भी बन्दी का स्वास्थ्य वास्तविक नाना की भांति नहीं था। अन्त में उन्होंने मुसम्मात अदला की भांति बतलाया कि बन्दी की आकृति एवं हावभाव एक निम्नवर्गीय पुरुष के थे न कि राजसी ठाठबाट वाले व्यक्ति के। बन्दी ने यह भी बताया कि वह न तो मराठी लिख सकता था और न पढ़ ही सकता था।

उपर्युक्त आख्या के संदर्भ में स्थानापन्न सचिव भारतीय शासन ने अपने पत्रांक १६४८ फोर्ट विलियम ३१ दिसम्बर १८७४ द्वारा बताया कि शासन उनसे पूर्णतः सहमत है कि बन्दी नाना साहब नहीं था। बन्दियों को रिहा करने की आज्ञा दी जायेगी। परन्तु साथ ही साथ ग्वालियर महाराज ने इस मत में सहमति नहीं दी। फलस्वरूप ग्वालियर स्थित रेजीडेन्ट (पोलिटिकल एजेन्ट) ने १८७२ के अधिनियम ११ की धारा ११ के अन्तर्गत बन्दियों को ग्वालियर पकड़ कर बुलाने के लिए वारन्ट जारी कर दिये। गवर्नर जनरल ने १२ जनवरी १८७५ के आदेश द्वारा उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों के शासन सचिव को बन्दियों को ग्वालियर पहुँचाने का आदेश दे दिया। बन्दी के अस्वस्थ होने के कारण विशेष देखभाल करने के लिए डाक्टरों के साथ व एक स्पेशल रेल के डिब्बे में उन्हें कानपुर से आगरा भेजने के आदेश दिये गये। फलस्वरूप बन्दी को २४ जनवरी तक आगरा रेल द्वारा व ग्वालियर तक डाक गाड़ी से पहुँचा दिया गया।

अध्याय १३

१८७९ में

१८५९ ई० से १८७५ ई० तक अनवरत प्रयत्न करने पर भी भारत में अंग्रेजों के साम्राज्यवादी एवं शक्तिशाली शासन को नाना साहब तथा अन्य अग्रणी क्रान्तिकारी नेताओं को बन्दी बनाने में सफलता न मिल पायी। राव साहब को १८६२ ई० में बन्दी बना कर फाँसी दे दी गयी। इससे अन्य नेता अवश्य सतर्क हो गये होंगे। फीरोजशाह शहजादा भारतीय सीमा को पार कर गये। १८६० ई० से १८६८ ई० तक वह कन्धार, बोखारा, तेहरान, हेरात, काबुल इत्यादि स्थानों में भ्रमण करते रहे। उन्होंने स्वात के अमीर से भेंट की परन्तु अंग्रेजों के रुष्ट होने के भय से अमीर ने फीरोज को बदख्शाँ चले जाने का परामर्श दिया। कुछ ही समय पश्चात वह समरकन्द पहुँच गया। अक्तूबर १८७२ ई० में कुस्तुनतुनिया स्थित अंग्रेजों के राजदूत ने फीरोज शाह को कुस्तुन तुनिया में आवास करते हुए बताया। वहाँ, फीरोज के अतिरिक्त अनेक अंग्रेजों के विपक्षी मुसलमान भी रहते थे। परन्तु अस्वस्थता, गरीबी, तथा कठिनाइयों के कारण फीरोज इस योग्य नहीं था कि उनका नेतृत्व कर सकता।

जून १८७५ ई० में मध्य एशिया से अंग्रेजों को संवाद मिला कि फीरोज शाह मिर्जा मुहम्मद बे के साथ मक्का पहुँच गया। उस समय लगभग वह अन्धा, काना एवं लंगड़ा सा हो चला था, यद्यपि उसकी अवस्था केवल ४५ वर्ष की थी।[१] इसी दयनीय दशा में १७ दिसम्बर १८७७ ई० में मक्का में ही फीरोज शाह की मृत्यु हो गयी। केवल उसकी बेगम शेष रही। अन्तिम दिनों में मक्का के शरीफ तथा अन्य दाताओं से उसे कुछ भिक्षा दान मिल जाता था।

फीरोज की विधवा बेगम नवाब तुकलखा सुल्तान जमानी बेगम ने भारतीय शासन से उदारता के नाते पेन्शन की प्रार्थना की। नवम्बर १८८१ ई० में ५) प्रति माह उसके लिए स्वीकृत हुआ। साथ में यह शर्त थी कि वह कभी भी दिल्ली

१. फारेन डिपार्टमेन्ट—सीक्रेट प्रोसीडिंग्स, संख्या ५–१०, और 'कीप विद' (K. W.) सितम्बर १८७७ ई०।

वापस नहीं आयेगी। लार्ड रिपन ने इस हास्यास्पद धन राशि को १००) प्रति मास में परिगत कर दिया। यह स्पष्ट कर दिया गया कि वह केवल बेगम के लिए ही स्वीकृत थी। यह पेन्शन बेगम को १० नवम्बर १८८१ ई० से प्रदान की गयी।

इसी भाँति मक्का में नवाब फर्रुखाबाद की मृत्यु भी १८८१ ई० में दयनीय अवस्था में हुई थी, नैपाल की तराई में नाना साहब से पृथक होने के पश्चात अमर सिंह (कुंवर सिंह के भाई) का पीछा राणा जंगबहादुर ने किया और १८५९ ई० में वह बन्दी बना लिये गये। गोरखपुर जेल में अस्वस्थ अवस्था में अभियोग चलाये जाने के पहले ही ५ फरवरी १८६० ई० को चल बसे। इसी प्रकार इलाहाबाद के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता मौलवी लियाकत खाँ भी १८७१ ई० में बम्बई में बन्दी बना लिये गये और उन पर अभियोग चलाया गया।[1] २७७ व्यक्तियों ने अपने कथन दिये और फलस्वरूप १८७३ ई० में उन्हें कालापानी आजन्म कारावास का दण्ड दिया गया।[2] इस प्रकार १८७५ ई० तक उत्तर प्रदेश के क्रान्तिकारियों की पकड़-धकड़ होती रही। सैकड़ों व्यक्तियों को आजन्म कारावास का दण्ड देकर कालापानी भेजा गया।

१८७७-७८ ई० में समस्त प्रान्तों में १८५७ की क्रान्ति से संबंधित अभियुक्तों के मामलों पर पुनः विचार किया गया। फलस्वरूप बहुतों का दण्ड क्षमा या कम कर दिया गया और कुछ को १८७७ ई० में दरबार के समय छूट देने का प्रस्ताव था। परन्तु तत्कालीन उत्तर प्रदेशीय प्रान्तीय शासन ने अभियुक्तों को किसी प्रकार की छूट देने का परामर्श नहीं दिया। बार-बार पूछने पर समय से भारतीय शासन को संस्तुति भी नहीं भेजी। शासन को तथाकथित नाना साहब इत्यादि की छानबीन से वास्तविक भय हो चला था, इसलिए वह कोई जोखिम नहीं उठाना चाहती थी। पोर्ट ब्लेयर (काला पानी-एन्डमेंड निकोबार द्वीप) की प्रोसीडिंग्स तथा वार्षिक आख्या देखने से ज्ञात होता है कि आजन्म कारावास के दण्डित बन्दियों को अपने घर से सहस्रों मील दूरी पर क्या कठिनाइयाँ व यातानाएँ भोगनी पड़ीं।[3]

१. होम डिपार्टमेन्ट—पब्लिक ३१–३५, १४ अक्तूबर १८७१ : नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

२. वही : १८७१ तथा १८७३ जुडीशियल १७९–१९० फरवरी पृ० ४४७–४५६।

३. होम डिपार्टमेन्ट—जुडीशियल A जनवरी १८७७ ई० ३०९–३१० पृ० ३९९, नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

१८७७ ई० में निम्नलिखित क्रान्तिकारी नेता अपनी देशभक्ति के लिए बन्दीगृह में जीवन-यापन कर रहे थे--उनमें केवल अवध से यह थे :—

१. गौस मुहम्मद खाँ
२. राजा हर प्रसाद
३. राशेफ अली सैय्यद
४. इनायत खाँ
५. गुलाब सिंह
६. हीरत सिंह
७. राजा दृग्विजय सिंह
८. अनन्दी कुर्मी
९. दाराजात ईमाद अली
१०. मौलवी मस्तन
११. राजा अब्बास अली
१२. आमा सैय्याद
१३. राम गुलाम सिंह
१४. बिस मोहन सिंह
१५. दलीप सिंह
१६. भगवान् बक्श

परन्तु इतने क्रान्तिकारी नेताओं में से किसी के भी विषय में दण्ड में कमी या छूट उत्तर पश्चिमी प्रान्तीय शासन ने उचित नहीं समझा।[१] फलतः भारत के अन्य प्रान्तों से अभियुक्तों को १८७७ ई० में छूट मिल गयी, इस प्रान्त के देशभक्त कारावास में पड़े रह गये।

नाना साहब मक्का में

१८७६ ई० में यूरोप की राजनीति में 'पूर्वी प्रश्न'—अर्थात मध्य एशियाई देशों से संबंधित कूटनीति का प्रश्न सबसे प्रधान था। सर्विया, बल्गेरिया में विद्रोह हो रहे थे। तुर्की यूरोपियनों से बदला लेने के लिए तानाशाही बरत रहे थे। रूसी पर-राष्ट्रनीति से सभी आतंकित थे। ब्रिटेन की नीति अनिश्चित थी, रूसी सेनाओं ने यूरोप व एशिया में तुर्की साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया था। १८७७ ई० में कुस्तुन-

१. होम डिपार्टमेन्ट–जुडिशियल–A–: जून १८७७, ५०–६२पृ० ८३७–८४३, विद्रोह के नेता शीर्षक में, नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

तुनिया पर ही धावा बोल दिया गया। फलतः १८७८ ई० में प्रसिद्ध बर्लिन की सन्धि हुई। इसमें ब्रिटेन रूस में मतभेद हो गया था, उसको बर्लिन सम्मेलन द्वारा सुलझाया गया। इस समय मध्य एशियाई देशों में स्वभावतः कुस्तुनतुनिया, मक्का तथा काहिरा ऐसी नगरी थी जहाँ अंग्रेजों के विपक्षी सरलता से शरण पा सकते थे।

१८७७-७८ ई० में जद्दा में स्थित ब्रिटिश एजेन्ट ने ब्रिटिश शासन को संवाद भेजा कि मक्का में लगभग २३ ऐसे व्यक्ति थे जो सन् १८५७ की भारतीय क्रान्ति से सम्बन्धित थे और किसी भाँति भारतीय सीमा लाँघ कर अरब पहुँच गये थे। इनमें से दिलावर शेख तय्यब ने अपने कथन में बताया कि सुल्तान इब्राहीम ने उसके सम्मुख अनेक कथन दिये थे जिनसे नाना साहब के मक्का में आवास का पता चलता था, तथा उनके द्वारा विभिन्न षड्यन्त्रों में भाग लेने का भी प्रमाण मिलता था।[1]

१८७९ का रहस्यमय पत्र

२५ अप्रैल १८७९ ई० को वाईसराय के व्यक्तिगत सचिव ने भारतीय शासन के सचिव को फारेन डिपार्टमेन्ट में आवश्यकीय कार्यवाही हेतु एक बिठूर के नाना साहब द्वारा प्रेषित प्रार्थना-पत्र (पेटिशन-वास्तव में एक लम्बा पत्र) भेजा।[2]

फारेन डिपार्टमेन्ट के सामान्य विभाग में २९ अप्रैल का प्रार्थना-पत्र पंजीकृत किया गया। उसमें कार्यालय की ओर से निम्नलिखित टिप्पणी अंकित की गयी।

"कहते हैं कि नाना साहब मृत्यु-शय्या पर हैं और जब तक यह पत्र पहुँचेगा तब तक वह मर चुकेंगे। आश्चर्यजनक रहस्यों को पत्र में देते हैं। देश को ईसाइयों से (विदेशियों से) मुक्त कराने की अपनी योजना की रूपरेखा देते हैं। साथ ही साथ सुरजुजा के साथ अपने संबंध का बखान करते हैं जिसे कि उन्होंने जयपुर से चुराया था। और जो वास्तव में जयपुर गद्दी का न्याय-संगत अधिकारी था। छिपे हुए खजाने के स्थानों का भेद बताते हैं। प्रार्थना करते हैं कि उसे खोद निकाला जाये और सुरजुजा को भेंट कर दिया जाये, जो उस समय इंगलैण्ड में था।"

१. फारेन डिपार्टमेन्ट : सीक्रेट—फरवरी १८७८, कन्सल्टेशन्स् संख्या ६१–११६, नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

२. फारेन डिपार्टमेन्ट—जनरल डाकेट संख्या ४११७–१८७९ ई०, प्रोसीडिंग्स मई संख्या ४०८, संबंधित संख्या ७७०। नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली। देखिए : पत्र के अन्तिम पृष्ठ की फोटोस्टैट प्रति।

१८७७ ई० में निम्नलिखित क्रान्तिकारी नेता अपनी देशभक्ति के लिए बन्दीगृह में जीवन-यापन कर रहे थे--उनमें केवल अवध से यह थे :—

१. गौस मुहम्मद खाँ
२. राजा हर प्रसाद
३. राशेफ अली सैय्यद
४. इनायत खाँ
५. गुलाब सिंह
६. हीरत सिंह
७. राजा दृग्विजय सिंह
८. अनन्दी कुर्मी
९. दाराजात ईमाद अली
१०. मौलवी मस्तन
११. राजा अब्बास अली
१२. आमा सैय्याद
१३. राम गुलाम सिंह
१४. बिस मोहन सिंह
१५. दलीप सिंह
१६. भगवान् बक्श

परन्तु इतने क्रान्तिकारी नेताओं में से किसी के भी विषय में दण्ड में कमी या छूट उत्तर पश्चिमी प्रान्तीय शासन ने उचित नहीं समझा।[1] फलतः भारत के अन्य प्रान्तों से अभियुक्तों को १८७७ ई० में छूट मिल गयी, इस प्रान्त के देशभक्त कारावास में पड़े रह गये।

नाना साहब मक्का में

१८७६ ई० में यूरोप की राजनीति में 'पूर्वी प्रश्न'—अर्थात मध्य एशियाई देशों से संबंधित कूटनीति का प्रश्न सबसे प्रधान था। सर्विया, बल्गेरिया में विद्रोह हो रहे थे। तुर्की यूरोपियनों से बदला लेने के लिए तानाशाही बरत रहे थे। रूसी पर-राष्ट्रनीति से सभी आतंकित थे। ब्रिटेन की नीति अनिश्चित थी, रूसी सेनाओं ने यूरोप व एशिया में तुर्की साम्राज्य पर आक्रमण कर दिया था। १८७७ ई० में कुस्तुन-

१. होम डिपार्टमेन्ट—जुडिशियल—A—: जून १८७७, ५०—६२ पृ० ८३७—८४३, विद्रोह के नेता शीर्षक में, नेशनल आरकाईव्ज़, नई दिल्ली।

तुनिया पर ही धावा बोल दिया गया। फलतः १८७८ ई० में प्रसिद्ध बर्लिन की सन्धि हुई। इसमें ब्रिटेन रूस में मतभेद हो गया था, उसको बर्लिन सम्मेलन द्वारा सुलझाया गया। इस समय मध्य एशियाई देशों में स्वभावतः कुस्तुनतुनिया, मक्का तथा काहिरा ऐसी नगरी थी जहाँ अंग्रेजों के विपक्षी सरलता से शरण पा सकते थे।

१८७७-७८ ई० में जद्दा में स्थित ब्रिटिश एजेन्ट ने ब्रिटिश शासन को संवाद भेजा कि मक्का में लगभग २३ ऐसे व्यक्ति थे जो सन् १८५७ की भारतीय क्रान्ति से सम्बन्धित थे और किसी भाँति भारतीय सीमा लाँघ कर अरब पहुँच गये थे। इनमें से दिलावर शेख तय्यब ने अपने कथन में बताया कि सुल्तान इब्राहीम ने उसके सम्मुख अनेक कथन दिये थे जिनसे नाना साहब के मक्का में आवास का पता चलता था, तथा उनके द्वारा विभिन्न षड्यन्त्रों में भाग लेने का भी प्रमाण मिलता था।[1]

१८७९ का रहस्यमय पत्र

२५ अप्रैल १८७९ ई० को वाईसराय के व्यक्तिगत सचिव ने भारतीय शासन के सचिव को फारेन डिपार्टमेन्ट में आवश्यकीय कार्यवाही हेतु एक बिठूर के नाना साहब द्वारा प्रेषित प्रार्थना-पत्र (पेटिशन-वास्तव में एक लम्बा पत्र) भेजा।[2]

फारेन डिपार्टमेन्ट के सामान्य विभाग में २९ अप्रैल का प्रार्थना-पत्र पंजीकृत किया गया। उसमें कार्यालय की ओर से निम्नलिखित टिप्पणी अंकित की गयी।

"कहते हैं कि नाना साहब मृत्यु-शय्या पर हैं और जब तक यह पत्र पहुँचेगा तब तक वह मर चुकेंगे। आश्चर्यजनक रहस्यों को पत्र में देते हैं। देश को ईसाइयों से (विदेशियों से) मुक्त कराने की अपनी योजना की रूपरेखा देते हैं। साथ ही साथ सुरजुजा के साथ अपने संबंध का बखान करते हैं जिसे कि उन्होंने जयपुर से चुराया था। और जो वास्तव में जयपुर गद्दी का न्याय-संगत अधिकारी था। छिपे हुए खजाने के स्थानों का भेद बताते हैं। प्रार्थना करते हैं कि उसे खोद निकाला जाये और सुरजुजा को भेंट कर दिया जाये, जो उस समय इंगलैण्ड में था।"

१. फारेन डिपार्टमेन्ट : सीक्रेट—फरवरी १८७८, कन्सल्टेशन्स् संख्या ६१–११६, नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

२. फारेन डिपार्टमेन्ट—जनरल डाकेट संख्या ४११७–१८७९ ई०, प्रोसीडिंग्स मई संख्या ४०८, संबंधित संख्या ७७०। नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली। देखिए : पत्र के अन्तिम पृष्ठ की फोटोस्टैट प्रति।

तदुपरान्त पत्र होम डिपार्टमेन्ट भेजा गया और लेखन-शैली का परीक्षण कराया गया। तदनुसार विशेषज्ञों के मतानुसार टीप में अंकित किया गया कि लेखन-शैली पश्चिमी भारत की प्रणाली की थी और बंगाली लेखन-शैली से बिल्कुल भिन्न थी। यह छानबीन एवं कार्यवाही २० मई तक सम्पन्न हो गयी थी।

पत्र का रहस्य

दुर्भाग्यवश पत्र का प्रथम पृष्ठ उपलब्ध नहीं है, इसलिए यह कहना कठिन हो गया है कि वह किसको संबोधित था। द्वितीय पृष्ठ से ज्ञात होता है कि आरम्भ से ही नाना साहब ने सुरजुजा का वर्णन किया है। यह भी कहना कठिन है कि सुरजुजा कौन था तथा उससे नाना का क्या संबंध था। हाँ, इतना आभास मिलता है कि सुरजुजा पर नाना की बहुत आशाएँ थीं। संभवतः नाना ने जयपुर से बच्चे को चुराकर उसे पादरियों की सहायता से इंग्लैण्ड भेज दिया था। पत्र लिखने के समय उन्हें यह भी ज्ञात नहीं था कि बच्चा जीवित था या नहीं। वह भाग्य की दुहाई देते हुए कहते हैं कि यदि विधाता की इच्छा उसे महान व्यक्ति के रूप में देखने की होगी तो उसके जीवन के अनेक दुःखों का निवारण हो जायेगा। और दुखों तथा यातनाओं का किसी महान उद्देश्य की पूर्त्ति की ओर संकेत होगा। यदि वह भाग्यवान जीवित होगा तो अपने देश के लिए हर प्रकार से राजनैतिक तथा धार्मिक रूप में लाभप्रद सिद्ध होगा। परन्तु और चाहे कुछ भी हो परन्तु नाना को भय था कि वह अब उस उद्देश्य की पूर्त्ति न करेगा जिसके लिए उसका सृजन किया गया था। परन्तु आवेश में आते हुए नाना कहते हैं कि;

"कोई चिन्ता नहीं, चाहे जो कुछ हो, मैं अपना मन्तव्य—देश को ईसाइयों के चंगुल से स्वतन्त्र कराने का पूर्ण करूँगा।

"मैं अब अपने महान एवं आदरणीय राष्ट्र व शासन को अपनी मंत्रणाओं को अर्पित करता हूँ......

"अब मैं अपने को दर्शाने के लिए कभी भी जीवित नहीं रहूँगा। परन्तु आपको मेरे चल बसने के पश्चात् अधिकांश संभावना यह है कि मेरे अध्ययन कक्ष में ऐसी पत्रावलियों के टुकड़े हस्तगत होंगे जो कि प्रचलित साहित्यिक तथा ऐतिहासिक धारणाओं के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होंगे, विशेषतः इंग्लैण्ड के।

"यहीं बहुत से तथ्य वर्णित हैं।"

इसके उपरान्त नाना साहब पुनः बच्चे के विषय में लिखते हैं कि उनकी योजना किस भाँति सफल हुई। संभवतः एक और शहजादे के साथ मिल जाने से उनकी महान परन्तु भयानक योजना और भी सफल हो जाती। परन्तु फिर भी जितनी

सफलता मिली वह पर्याप्त थी और वह उनका दुर्भाग्य था कि अब केवल वह महान बच्चा ही उनकी एकमात्र आशा थी, व एकमात्र सहारा जिससे वह सिर उठा सकते थे। फिर उन्हें बच निकलते समय के संकट स्मरण हो आये—तीन बार उनके विश्वासपात्र देबी (?) ने एक भ्रमणकारी भिखारी के वेष में उनकी गुप्त आवास की नगरी काशी से कानपुर जाते समय रात्रि को सराय में संकट का सामना किया था। बच्चे ने बड़ी वीरता से बर्त्ताव किया। उन्होंने और अधिक विस्तृत विवरण छोड़ दिया। जैसा जीवन उन्होंने व्यतीत किया उससे यह स्पष्ट नहीं होता कि उस अवस्था के बच्चे से वार्तालाप से तथा जीवन के वांछित स्तर से पुलीस को कोई संदेह हो सकता था। वह यह भी कहने में असमर्थ थे कि बच्चे ने ऐसी कोई बात बेसुध अवस्था में कही हो जिससे पुलीस को संदेह हो जाये। परन्तु वास्तव में बात यह है कि पुलीस ने संदेह अवश्य किया था, और देबी व सुरजुजा को पुनः कानपुर वापस किया गया था। अधिकारियों ने देबी को बच्चे से पृथक कर दिया।

अग्रिम पृष्ठों में उन्होंने बताया है कि देबी से बच्चे को पृथक करने के पश्चात् वह बच्चा कभी अकेला नहीं देखा गया। उस बच्चे को चित्रित करते हुए वह कहते हैं कि वह राजसी नेत्रों वाला बालक विद्यालय में अन्य बच्चों के साथ मेहनत कर रहा होगा। यह दयनीय दृश्य था परन्तु अफसोस, सुधार के लिए अत्यन्त विलम्ब हो गया था। तत्पश्चात् वह बिल्कुल ही आँखों से ओझल हो गया। और कैसे ? एक ऐसी घटना से जो कभी या कभी नहीं हुई थी। कानपुर के पादरी ने—जिनका नाम हाल, हील या हिल साहब था—उसे इंगलैण्ड भिजवा दिया।

बच्चे की माता का वर्णन करते हुए नाना साहब लिखते हैं कि बेचारी माता को दूसरा मरा हुआ बच्चा वास्तविक की जगह दिखा दिया गया था। वह स्तब्ध महिला इस भय से चुप रही कि कहीं यह पता चल जाये कि उसके गर्भ से मरा हुआ बच्चा उत्पन्न हुआ था। इससे संभवतः उसके पति उस पर अत्यन्त रुष्ट होते। यही असली कारण है कि अभी तक रहस्य प्रकाश में नहीं आया। वास्तव में इसमें भी संदेह है कि अब कभी भी उसे इसका ध्यान हो—उस समय वह बहुत ही अधिक अस्वस्थ थी और उसको यदि ऐसा कोई ध्यान भी होगा तो वह स्वप्न तुल्य होगा जिससे उसका मस्तिष्क भूत, पिशाच की भाँति आक्रान्त होगा। उसका मन अशान्त होगा। इसी के साथ नाना ने अपना प्रसंग भी छेड़ा। समस्त विवरण इतना गूढ़ एवं रहस्यमय है कि जब तक अन्य तथ्य सम्मुख नहीं आते तब तक इस विषय में कुछ निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता है।

आप-बीती लेखबद्ध करते हुए नाना साहब कहते हैं कि इस महान देश में एक

ओर से दूसरी ओर तक उनका शासन ने पीछा किया। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया परिस्थितियाँ क्रमशः व शीघ्रता से परिवर्त्तित होती गयीं एवं गंभीर बन गयीं। स्वाभाविक रूप से वह स्वेच्छाचारी एकान्तवास में विलीन हो गये। एकान्त निर्जन स्थान में आवास की अकर्मण्यता में वह अनेक धारणाओं का अध्ययन करने में बाध्य हुए। संभवतः इसी बीच में उन्होंने अंग्रेजी का अध्ययन किया तथा फारसी कला व साहित्य से परिचय प्राप्त किया।

अग्रिम पृष्ठों में पुनः सुरजुजा का वर्णन आता है। नाना साहब की उसे जीवित देखने तथा उससे मिलने की उत्कट इच्छा थी।

बच्चे, व उसकी माता तथा आप-बीती वर्णन करते-करते नाना साहब ब्रिटेन व भारत के संबंध पर अपने विचार लेखबद्ध करने लगे। एक ओर महान ब्रिटिश विश्वव्यापी साम्राज्यवाद था, दूसरी ओर निःसहाय, अस्त्र-शस्त्रहीन, देश सम्पत्ति विहीन नाना साहब थे। कैसा विस्मयकारी सामना था। ब्रिटिश राष्ट्र को संबोधित करते हुए उन्होंने बताया कि न्याय तो सभी के लिए एक व समान है। और न्याय एक राज्य की नींव भी होती है। संसार में कार्य तो ईश्वर ही विभक्त करता है। और उसका संपादन मानपूर्वक होना चाहिए। यदि इंगलैण्ड अपनी त्रुटि मानने में असमर्थ है तो उसे कुछ प्राप्त न होगा। नाना का तो कुछ नहीं बिगड़ेगा ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अवश्य किसी दिन धक्का पहुँचेगा।

अन्त में नाना साहब ने लिखा :—

"मैं अपने को तुम्हारे सम्मुख प्रदर्शित करते हुए डरता हूँ—क्योंकि मैंने सुना है कि तुम यूरोपियनों का पक्ष लेते हो। दस वर्ष हो गये जब से कि बच्चा अंग्रेजों के अधिकार में है।....."

"यदि इस मध्य में बच्चे के विरुद्ध कुछ कार्यवाही हो गयी तो वह संभवतः संकल्पित थी। उसको प्रभु की असीम अनुकम्पा में परिणत होना चाहिए था, परन्तु दुर्भाग्यवश वह अभिशाप बन गयी। यह पाप नाना साहब के ऊपर से पूर्णतः उतर जाता यदि वह बच्चा जीवित होता तथा मिल जाता।" इसी आशा के साथ पत्र समाप्त होता है। अन्त में इस प्रकार संबोधन होता है :—

"बिदाई! प्रिय भाई!!
बिदाई!!!
विपदा एवं अवनति में तुम्हारा ही!!!
नाना साहब—बिठूर निवासी!!!"

पत्र की अन्तिम संबोधन शैली अत्यन्त मर्मस्पर्शी है। यदि नाना साहब के पत्र की १८७९ के पत्र से तुलना की जाये तो शैली में बड़ा सादृश्य मिलता है।

१८५९ ई० के नाना साहब की दृढ़ प्रतिज्ञता एवं देशभक्ति दोनों में स्पष्ट है। दोनों ही पत्र विदेशियों के प्रति विरोध की भावना से ओत-प्रोत हैं। दोनों से उनके अज्ञातवास व कठिन जीवन का आभास मिलता है। कहाँ तराई के जंगलों का जीवन और कहाँ ब्रिटिश साम्राज्यवादी राजसत्ता के ठीक नीचे काशी जैसी नगरी में गुप्त आवास! आजकल तो इसकी कल्पना भी स्वप्नतुल्य एवं भयंकर प्रतीत होती है। वास्तविकता, सत्यता, समय के काले आवरण से एकदम ढक गयी है। विश्वास करना कठिन है कि नाना साहब १८७९ में एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में, जयपुर, कानपुर तथा काशी जैसे स्थानों में कैसे विचरण कर सकते थे।

पत्र में वर्णित सुरजुजा की कथा दृष्टव्य रूप से एकदम काल्पनिक प्रतीत होती है, परन्तु प्रमाणित प्रतिलिपि पर एक बार सन्देह भी हो सकता है, मूल पर नहीं। देश के कोने कोने में नाना की खोज व छानबीन, संदिग्ध नानाओं के बन्दी बनाये जाने एवं उन से संबंधित सर्वव्यापी खोज से, प्रमाणित हो ही जाती है। मृत्यु-गोपन का रहस्य फीरोजशाह का देश-विदेश भ्रमण तथा मृत्यु से खेल, व राव साहब का वेष बदल कर तीर्थाटन, बन्दी बनाया जाना तथा फाँसी पर लटकाया जाना पाठक को शंका में डाल देते हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि १८६१ ई० से १८७५ तक भारत में अंग्रेजी शासन नाना साहब के नाम से आतंकित रहा हो। और नाना साहब यह सब सुनते व देखते रहते हुए भी अज्ञात वास करते रहे हों। इतिहास में ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं।

इन सबसे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि १८७९ ई० का इतना रहस्यमय व महत्त्वपूर्ण पत्र भारतीय शासन ने दबा दिया। उस पर कोई छानबीन नहीं की। संभवतः उसकी सूचना भी ब्रिटिश शासन अथवा महारानी विक्टोरिया को नहीं दी। १८५९ ई० व १८७९ के दोनों महत्वपूर्ण पत्र ब्रिटिश कूटनीति के प्रमाण हैं। नाना साहब की मृत्यु का समाचार प्रकाशित करने के पश्चात् शासन यह सूचना ब्रिटिश शासन को कैसे देता कि १८७९ ई० में नाना साहब जीवित थे व पत्र लिख सकते थे। निश्चय ही किसी रहस्य के उद्घाटन के भय से इसका गोपन किया गया था। इस पर वायसराय व गवर्नर-जनरल ने न तो कोई छानबीन की और न कोई पत्र-व्यवहार ही किया।

पत्र में वर्णित पादरी, व जयपुर के राजघराने के बच्चे का भी रहस्य स्पष्ट नहीं होता। केवल इतना आभास मिलता है कि यदि नाना साहब वास्तव में १८७९ में जीवित थे तो उनके मस्तिष्क की कितनी आक्लान्त एवं भयंकर दशा थी। ऐसे वातावरण में, ऐसे क्लेश में तो एक-एक पल, एक एक युग के समान हो जाता है। क्या ऐसी अवस्था में नाना साहब जैसा व्यक्ति बीस वर्ष जीवित रह सकता था?

अभी तक तो नाना साहब का जीवित रहना प्रमाणित करना एक समस्या थी, परन्तु इस रहस्यमय पत्र की मूल प्रति उपलब्ध होने के पश्चात् उनके जीवित रहने पर अविश्वास करना कठिन है। १८५९ व १८७९ दो ऐसे तिथि-स्तम्भ मिल जाते हैं कि उनके मध्य की घटनाओं की कल्पना करना दूभर है। वास्तविकता की झलक मिल रही है—प्रकाश दिखायी दे रहा है—शायद सत्य की खोज अन्य अविश्वसनीय रहस्यों के उद्‌घाटन का श्रीगणेश करे। समय लग सकता-है परन्तु सत्य प्रदर्शित अवश्य होगा।

अध्याय १४

तथाकथित वंशज

इधर कुछ वर्षों से प्रतापगढ़ तथा पूना से कुछ व्यक्तियों ने अपने को पेशवा वंश से सम्बन्धित बताते हुए नाना साहब के १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत लौट आने पर प्रकाश डाला है।

प्रतापगढ़ निवासी श्री सूरजप्रताप ने अपने को नाना साहब के वंशज होने के विषय में कुछ प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, इनमें एक नाना साहब की सम्पत्ति के विषय में उत्तराधिकार पत्र भी है। श्री सूरज प्रताप का कथन है कि उनके पिता श्री रामसुन्दर लाल नाना साहब के पुत्र थे। उन्होंने इसके पक्ष में दो कथन दिलवाये थे। प्रथम कथन इस प्रकार था[1] :—

"चूंकि मेरे पूर्वज पूना के राजवंश पेशवा सरकार के खैरख्वाह रिसालदार थे, जिससे पेशवा वंशीय नाना साहब से पूर्ण तथा पूर्व, मेरे बाबा का परिचय था। नाना साहब अपनी अज्ञात अवस्था में मेरे घर पर मेरे पूर्वज के प्रेमवश आया करते थे। मेरी समझ में सन् १९२१ ई० में प्रथम बार वह अपने इसी पुत्र के मृत्युकर्म में जाते समय आये थे और वह मेरे घर पर ठहरे थे। पुनः द्वितीय आगमन सन् १९२४ ई० में मेरे घर पर अपनी धर्म-पत्नी की मृत्यु-क्रिया में जाते समय हुआ था और अपने साथ वह मुझे भी मढ़रामऊ ले गये थे। वहाँ पर कुछ लोगों को उनको माधोलाल कहते सुना और मेरे घर पर मरहठा राजा कहे जाते थे। मुझे वहीं

१. प्रतिलिपि बयान—हरिश्चन्द्र सिंह, सुत बृजेन्द्र बहादुर सिंह, निवासी जगदीशपुर, तह० सदर, जिला प्रतापगढ़, अवस्था ४६ वर्ष। श्रीमान् हाकिम महोदय तहसील कुण्डा, जिला प्रतापगढ़, आज्ञानुसार श्रीमान जिलाधीश महोदय, व माह जुलाई सन् १९५५ ई०। बाबत ऐतिहासिक जानकारी, बाबत १८५७ ई० के प्रमुख सेनानी, बिठूर के पेशवा सरकार नाना बाजीराव नाना पेशवा।

नस्ती, स्वतंत्रता इतिहास समिति कार्यालय, लखनऊ—प्रतापगढ़ निवासी श्री सूरजप्रताप संबंधी छानबीन।

आशंका हुई थी। तत्पश्चात् घर को वापस आने पर अपने पितामह ठाकुर जदुनाथ सिंह से उपर्युक्त बात बतायी तो हमारे पितामह ने उनके जीवन-चरित्र और उनको बिठूर के नाना साहब पेशवा होने को तथा राजा बाजार के सन्निकट मढ़रामऊ गाँव में माधोलाल नाम व जात बदले होने की और नैमिषारण्य में अयोध्याकुटी आश्रम में राजाराम शास्त्री, रिटायर्ड जज बनकर रहने की बात बतलाया था। तृतीय बार माघ मास में पूर्वीय तीर्थों से यानी गंगासागर आदि से लगभग डेढ़ साल की तीर्थयात्रा के बाद मेरे यहाँ आये थे। और मेरे यहाँ से नैमिषारण्य की तरफ चले गये थे। नैमिषारण्य जाते समय मेरे बाबा ठाकुर जदुनाथ सिंह को भी वह अपने साथ लिवा ले गये थे और मेरे बाबा के लौटने के बाद उनको १ फरवरी सन् १९२६ ई० को उनकी आँखों की देखी मृत्यु-घटना घर पर बतलायी थी। मुझे भली-भाँति मालूम है और वह यह भी बतलाये थे कि अकस्मात नदी की बाढ़ आ जाने से वह लापता हो गये थे। उनके साथ अजीमउल्ला खाँ नाम का एक मुसलमान जो दाहिनी आँख तथा दाहिने हाथ का जख्मी था और ऊँचा, लम्बा और गोरे बदन का था, अक्सर रहता था और नाना साहब पेशवा बहुत ही ऊँचे, सुन्दर व गोरे बदन के थे। उनके द्वितीय आगमन में जब मैं मढ़रामऊ उनके साथ गया था तो उनके पुत्र रामसुन्दर तथा पौत्र बाजीराव सूर्यप्रताप को भी देखा था और उनसे परिचित हुआ था। नाना साहब पेशवा ने स्वयं इन सबको अपना पुत्र और पौत्र होने की शिनाख्त दी थी।

अतः इस बयान द्वारा मैं शिनाख्त देता हूँ कि यही बाजीराव सूर्यप्रताप नाना साहब पेशवा के पौत्र और इनके बाबा माधोलाल ही बिठूर के नाना साहब पेशवा थे।

प्रार्थी हरिश्चन्द्र सिंह सुत बृजेन्द्र बहादुर सिंह

ता० १८-१०-५५ ह० हरिश्चन्द्र सिंह स्वयं १८-१०-५५

ह० हरिश्चन्द्र सिंह सुत ठा० बृजेन्द्र बहादुर सिंह नि० ग्राम जगदीशपुर परगना व तहसील व जिला प्रतापगढ़ अवध ता० १८-१०-५५

द्वितीय बयान भी इस प्रकार है[१] :—

"मेरे बाबा हनवत सिंह व नाना साहब पेशवा व उनके परम स्नेही अजीमउल्ला

१. प्रतिलिपि कथन—परमेश्वर बख्श सिंह, ग्राम रायगढ़ प० पट्टी जिला प्रतापगढ़ सन १८५७ ई० के निमित्त प्रमुख नेता बिठूर के नानासाहब पेशवा अर्थात् पेशवा सरकार नाना बाजीराव।

खाँ में पूर्व परिचय तथा प्रेम था। और कभी-कभी आया करते थे। मेरे बाबा उनको मरहठा राजा कहा करते थे। उनका पूर्ण परिचय मुझको मेरे बाबा ही से हुआ था। सन् १९१४ ई० में मुझको अपने बाबा के साथ स्थान मढ़रामऊ में उनके पौत्र के जन्मोत्सव में शामिल होने का अवसर मिला था। उसमें मैंने उनको राजा बाजार के राजा सिंधरामऊ के राजा के साथ राजसी शक्ल में दाढ़ी लगाये बैठे देखा था। उसके बाद सन् १९१५ के लगभग मेरे बाबा की मृत्यु हुई। उसके बाद मैं बम्बई चला गया। सन् १९१६ के अन्त में मुझसे फिर बम्बई में मुलाकात हुई तो आप अकेले साधुवेश मे थे। सन् १९१७ के आरम्भ में मैं और नाना साहब व उनके शिष्य देहली तक साथ-साथ आये और वह देहली में रुक गये और मैं घर चला आया था। उसके बाद वह अपने साथी अजीमउल्ला खाँ के साथ दिल्ली की वापसी में मेरे यहाँ होते हुए एक साल के बाद घर पहुँचे थे।

"उसके पश्चात् सन् १९४७ ई० में मैं दलीपपुर में मुलाजिम था। तब बाजीराव सूर्यप्रताप ने भी किसी संकटापन्न अवस्था में वहाँ शरण पायी थी। उस समय मैंने स्वयं तथा राजा साहब से मदद करायी थी।

"अतएव मैं यह प्रमाणित करता हूँ कि यह बाजीराव सूर्यप्रताप बिठूर के नाना साहब पेशवा के ही नाती हैं और वही नाना साहब नाम जात बदल कर उपर्युक्त ग्राम में छिपे थे।"

पि० परमेश्वर बख्श सिंह, ग्राम रामगढ़, प० पट्टी—जिला प्रतापगढ़ दि० २९-७-५५ ई०।

× × ×

उपर्युक्त कथनों से सर्वप्रथम प्रमाणित करने का प्रयत्न नाना साहब के प्रतापगढ़ में गुप्त आवास करने के संबंध में है। उपलब्ध प्रमाणों से ज्ञात होता है कि नाना साहब सन् १८५९ ई० में नैपाल की तराई में थे। तथाकथित मृत्यु के समाचार प्रकाशित हो जाने के पश्चात् संभवतः उन्होंने तराई को छोड़ दिया हो। संदिग्ध महानुभावों के कथनों पर यदि कुछ विश्वास किया जा सके तो नाना साहब जयपुर, पुष्कर जी, जम्मू, हरिद्वार व काशी स्थानों पर अवश्य गये होंगे। राव साहब के स्वयं अपने कथन से यह ज्ञात होता है कि संभवतः इन लोगों का वेष बदल कर तीर्थ-स्थानों में गुप्त आवास करना एक पूर्व-निश्चित बात रही हो। इसी प्रकार की दन्त-कथाएं तात्या टोपे के विषय में भी प्रचलित हैं। १८७९ ई० के पत्र में स्पष्ट रूप से काशी को अज्ञात वास का स्थान बताया है। तात्या के वंशज भी उनके गोपन के स्थान को काशी ही अधिकतर बताते हैं। तीर्थ-स्थानों में ऐसा संभव भी था। और इस प्रकार अज्ञातवास एक से अधिक व्यक्तियों के एक साथ

रहने पर ही हो भी सकता था। अस्तु, प्रतापगढ़ में आवास का समय १८७९ ई० के कुछ वर्ष पश्चात् ही हो सकता था।

द्वितीय तथ्य नाना साहब द्वारा अपना नाम माधोलाल में परिणत करना है। वेष बदल कर रहने में नाम परिवर्तन करना अवश्यम्भावी ही था। परन्तु इसी प्रकार के नाम का एक व्यक्ति, जिसका फोटो भी उपलब्ध है, अपने को राव साहब कहता हुआ बन्दी बनाया गया था। उसने अपना नाम "माधोराम" बताया था। और वह फोटो कानपुर कलक्टरी के रिकार्डरूम से रामू संबंधी पत्रावली से उपलब्ध हुआ है। संभवत: यह भी उन्हीं व्यक्तियों में से रहे हों जो नाना साहब द्वारा देश के कई कोनों में संदिग्ध नाना साहब के रूप में प्रदर्शित होने के लिए नियुक्त हुए हों। फोटो को देखने से इतना स्पष्ट हो जाता है कि वह व्यक्ति कभी भी नाना साहब नहीं हो सकते थे। संभवत: उनके सेवकों में से रहे हों। यह सेवक उनके विषय की सभी बातें जानते थे और अपने स्वामी के प्रति सच्चे भी थे। यदि ऐसा न होता तो नाना साहब अवश्य बन्दी बना लिये गये होते। इस विषय में और अधिक छानबीन के बाद ही पता चल सकता है कि माधोलाल नाम के व्यक्ति कौन थे?

तीसरा तथ्य नाना साहब द्वारा विवाहित जीवन व्यतीत करना तथा श्री राम सुन्दर लाल नाम के व्यक्ति का उनका पुत्र होना है। श्री सूरज प्रताप ने इस विषय में अपने पिता के पटवारी परीक्षा उत्तीर्ण होने की सनद में बाप का नाम माधोलाल दिखलाया है और उसमें नाना साहब का नाम भी लिखा हुआ है। इस पर प्रतापगढ़ के जिलाधीश तथा अन्य अधिकारियों ने पर्याप्त छानबीन की। पटवारी परीक्षा की वास्तविक-सनद की प्रतिलिपि उपलब्ध है, उसमें श्री राम सुन्दर लाल के पिता का नाम केवल माधोलाल तथा उनकी जाति कायस्थ लिखी है। इससे ज्ञात होता है कि सनद में कुछ काटछांट की गयी है। इस कारण से यह प्रमाण सर्व-मान्य नहीं हो सका है।

इसी से सम्बद्ध एक और प्रश्न उठता है कि विश्वस्त प्रमाणों से तो ज्ञात होता है कि नाना साहब की धर्मपत्नी नेपाल में रह रही थीं व राणा जंगबहादुर ने उन्हें काठमाण्डू में शरण दी थी। उनका भारत में लौटना अभी तक प्रमाणित नहीं हो पाया है और यह भी निश्चित नहीं कि वह वहाँ कितने समय तक रहीं। संभवत: नैपाल के अभिलेख-कक्ष से इस विषय में कुछ जानकारी प्राप्त हो सके अथवा राणा जंगबहादुर के वंशजों के प्रपत्रों से कुछ पता चल सके। काठमाण्डू में यह प्रचलित है कि नाना साहब की धर्मपत्नी तथा अन्य पेशवाई महिलाओं द्वारा वहाँ अनेक अमूल्य रत्न क्रय हुए। उनमें एक बहुमूल्य रत्न राणा के शिरमौर मुकुट में, जो काठमाण्डू के म्यूजियम में है, बताया जाता है। नाना साहब के परिवार की

महिलाओं में केवल उनकी एक धर्मपत्नी कृष्णबाई का; काशीबाई--बाला की धर्मपत्नी का; रमाबाई--राव कीधर्मपत्नी का; मैनाबाई व सेवीबाई---बाजीराव की विधवा पत्नियों का; तथा बैजासाहब---बाजीराव की पुत्री का हुलिया (शारीरिक विवरण) उपलब्ध है। इससे बाजीराव की पत्नियों की आयु १९ व १८ वर्ष ज्ञात होती है जब कि नाना की धर्मपत्नी की आयु १७ वर्ष की है और बाला की धर्मपत्नी की २३ वर्ष। इस विषय में छानबीन करने व पूंछताछ करने से ज्ञात हुआ कि बाजीराव की तथाकथित धर्मपत्नियाँ संभवतः वह थीं जो मूल रूप से नाना साहब के लिए पुत्रवधू के रूप में बाजीराव के सम्मुख आयी थीं। परन्तु अस्वीकार होने पर वह बाजीराव ने अपने महल में रख लिया था। सन् १८५१ ई० में तो उनकी आयु केवल १० वर्ष के लगभग रही होगी। क्योंकि नाना के परिवार की स्त्रियों का हुलिया संभवतः १८५९ ई० का प्रकाशित ज्ञात होता है।

नारोपन्त मामा के अभियोग से पता चलता है कि वह नाना साहब की तीसरी धर्मपत्नी के मामा थे। यह कहना कठिन हो रहा है कि नाना साहब की दो और धर्मपत्नियाँ कौन सी थीं। यह संभव हो सकता है कि तथाकथित बाजीराव की विधवा पत्नियाँ कुछ लोगों द्वारा नाना साहब की धर्मपत्नियाँ समझी जाती हों। आयु की दृष्टि से तो उन्हें ऐसा ही होना चाहिए था। परन्तु नैपाल में शरण पाने वाली स्त्रियों में केवल एक का वर्णन मिलता है। विवरण के अनुसार ये विधवाएँ (अंग्रेजों की) शुभचिंतिका थीं एवम् नाना के विरुद्ध कटुतापूर्वक शिकायत करती थीं जिन्होंने उन्हें ढोगढ़ी में बाजीराव की पुत्री के साथ बन्दी बना रखा था; वह शासन द्वारा स्वतंत्र किये जाने की कामना करती थीं। यह सब मनगढ़ंत प्रतीत होता है। इन स्त्रियों की आयु ही ऐसी थी कि उन पर कड़ा नियंत्रण न रखने से उनके बन्दी होते ही नाना के रहस्यों का पता अंग्रेजों को चल सकता था। अस्तु, इन तथ्यों के सम्मुख यह विश्वास करना तो कठिन है कि नाना साहब की धर्मपत्नी नैपाल से लौट आने पर प्रतापगढ़ रही हों और श्री राम सुन्दर लाल उनके पुत्र हुए हों। स्पष्ट है कि तथाकथित माधोलाल की धर्मपत्नी वास्तविक नाना की स्त्री से भिन्न थी। श्री सूरज प्रताप जी इस विषय में अभी कुछ विश्वसनीय प्रमाण प्रस्तुत करने में असमर्थ रहे हैं।

चौथा तथ्य अजीमउल्ला खाँ की एक डायरी है जिसकी उर्दू प्रतिलिपि श्री सूरज प्रताप ने प्रेषित की है। उसकी एक प्रति हिन्दी में प्रकाशित है। इसमें दो तरह की भाषा शैली का प्रयोग किया गया है। एक तो हिंदी उर्दू की मिश्रित शैली तथा दूसरी ब्रजभाषा अथवा स्थानीय बोलचाल की भाषा थी। इसका अधिक भाग अंशतः सत्य प्रतीत होता है। उसमें वर्णित तथ्य प्रमाणित भी हो चुके हैं।

केवल डायरी के नाना साहब के १९२६ तक जीवित रहने तथा तथाकथित वंशजों से संबंधित तथ्यों का परीक्षण आवश्यक है। वर्तमान रूप में अन्तिम पृष्ठों में श्री सूरज प्रताप का नाना साहब से सम्बन्ध दिखाने का भाग पूर्णतया क्षेपक मालूम होता है। उनके साथी अजीमउल्ला खाँ का भी कुछ पता नहीं चलता। नैमिषारण्य सीतापुर जिले में गोमती तट पर अकस्मात नदी में बाढ़ आ जाने के कारण मृत्यु हो जाने वाला भाग अवश्य ही अजीमउल्ला खाँ के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति ने डायरी में बाद में बढ़ाया होगा। हो सकता है कि डायरी की यथार्थ प्रति प्राप्त होने पर इन रहस्यों पर प्रकाश पड़े।

नैमिषारण्य में पूंछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि वहाँ के पण्डा श्री जगदम्बा प्रसाद तिवारी के पास बिठूर के पेशवा-परिवार के कुछ व्यक्तियों के नीमसार आने तथा ठहरने का उल्लेख है। वह श्री जगदम्बा के पूर्वजों के पास संवत् १९४५ अर्थात् १८८७-८८ ई० में आये थे। उन व्यक्तियों के मोरी में हस्ताक्षर है जो प्राप्य हैं। नैमिषारण्य में सन् १९५४ ई० में कुछ वृद्ध पुरुषों से पूछताछ भी की गयी। उन्होंने एक कैलाशन बाबा के बारे में बताया, जो ललिता देवी के मन्दिर में रहते थे तथा जंगल में गड़ी हुई सम्पत्ति से उस मन्दिर में संगमरमर के पत्थर आदि लगवाया करते थे। वह अपने को राजा बताते थे। अन्य व्यक्तियों ने उन्हें अपने को पूना तथा सतारा का राजा बताते हुए सुना था। इन कथनों से भी कुछ भी निर्णय नहीं हो सकता। यह कैलाशन बाबा सन् १८८८ ई० में मन्दिर में आये थे। वे लगभग २० वर्ष वहीं रहें।

इलाहाबाद में तीर्थ-पुरोहितों से नाना साहब के आने के विषय में कुछ नहीं मालूम हुआ। केवल रत्नागिरी से नारायण विश्वनाथ भट्ट शक संवत् १८१६ में प्रयाग आये थे। उनके साथ उनके पुत्र महादेव राव विनायक राव, पुरुषोत्तम राव तथा वामनराव तथा दो भतीजे वासुदेव और कृष्ण भट्ट थे।[1] संवत् १९२८ में श्रीमती रामाबाई पेशवा प्रयाग आयी थीं। वे अपने को बिठूर से आयी बताती थीं।[2]

फलतः नाना साहब के नैपाल से भारत चले आने के उपरान्त १८७९ ई० के पश्चात् उनके गुप्त निवास-स्थानों के विषय में तथा उनकी मृत्यु के बारे में कुछ निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता।

१. श्रीरामप्रसाद मिश्र—बिठूर परिवार के प्रयाग में पण्डा की बही नं० ३, पृ० १७०।

२. वही : बही नं० ४, पृ० १८२–८३।

उपसंहार

दरिद्र-नारायण की छत्रछाया में जन्मे, दरिद्रावस्था में पालित-पोषित, नाना साहब दरिद्रता की ही गोद में सुप्तावस्था को प्राप्त हुए। जैसा कि उन्होंने स्वयं अपने १८७९ ई० के रहस्यमय पत्र में संकेत किया है वह सचमुच "गरीब" थे। वह अन्तिम दिनों में वास्तव में अत्यन्त दयनीय अवस्था में रहे होंगे। प्रारंभ से ही उनके माता-पिता पर आर्थिक संकट मँडरा रहा था। उनके पिता बाजीराव पेशवा के सगोत्री होने के कारण कृपापात्र थे तथा उनके पूना से निष्कासन के उपरान्त उन्हें अपना भरण-पोषण करना भी दूभर हो गया था। फलत: उन्हें पुन: पेशवा का आश्रय प्राप्त करने के लिए मेथेरान की पहाड़ियाँ छोड़ कर लगभग १८२७ ई० में बिठूर आना पड़ा।

नाना राव के दत्तक पुत्र स्वीकार हो जाने के पश्चात् उनकी तथा उनके परिवार की आर्थिक परिस्थिति परिवर्तित हुई। बचपन का दारिद्र्य शीघ्र ही पेशवाई सम्पत्ति, वैभव तथा ऐश्वर्य-मय जीवन में लुप्त हो गया। नाना ने अपने को पूर्णतया राजसी ठाटबाट में रंग लिया। रियासत उनका पेशा बन गया। वह व उनके भाई सभी पेशवाई छत्रछाया में पलने लगे। स्वभावत: उनकी आकांक्षाएँ उच्च शिखर पर पहुँच गयीं। वह पेशवाई गद्दी के सफल एवं वास्तविक उत्तराधिकारी बनने के स्वप्न देखने लगे। उन्होंने अवध के नवाब, महाराजा सिन्धिया इत्यादि राजा-रजवाड़ों से संपर्क एवं पारस्परिक व्यवहार स्थापित किया। यदि उन्हें ८ लाख रुपये वार्षिक की पेशवाई पेन्शन स्वीकृत हो जाती, और उन्होंने १८५७ ई० की महान् क्रान्ति में भाग न लिया होता, तो संभवत: वह अन्य राजा-रजवाड़ों की भांति सुख व ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करते रहते।

परन्तु नाना साहब का जीवन विधि ने किसी और लक्ष्य के लिए ही सृजित किया था। सुख व ऐश्वर्य का जीवन उनके लिए नहीं था। उनके लिए संघर्ष, क्लेश, विपदा, युद्ध तथा दर-दर का भटकना ही विधि का विधान था। उनके दत्तक पुत्र बनने की घटना, मिटते हुए पेशवाई राज्य-वैभव की अन्तिम टिमटिमाती दीपशिखा थी। आरम्भ से ही महान् लक्ष्यों की कल्पना करते-करते नाना साहब को सहसा अपने स्वप्नवत् महलों का विध्वंस एवं धराशायी होना दिखायी देने लगा। पेशवाई पेन्शन बन्द होने से वह अपने सहस्रों आश्रितों के भरण-पोषण की चिन्ता से उद्विग्न

हो उठे। भारतवर्ष में वह भरसक फड़फड़ाये, इंग्लैण्ड में भी जा टकराये और इधर-उधर भी हाथ-पैर फेंके, परन्तु केवल चोट पर चोट पायी। फल जो होना चाहिए था वही हुआ। अंग्रेजों के विरुद्ध तीव्र कटुता, भीषण स्पर्धा तथा अमिट शत्रुता का उनके हृदय में स्थायी स्थान हो गया। इसका आभास ५७ मई माह में प्रसारित दिल्ली घोषणा-पत्र के कानपुर के मन्तव्य से, नाना साहब के स्वयं के कानपुर के घोषणा-पत्र; १८५९ ई० तथा १८७९ ई० के पत्रों के एक-एक शब्द से मिलता है। इनसे ज्ञात होता है कि नाना साहब के रोम-रोम में विदेशी सत्ता का विरोध, घोर एवं अत्यन्त भीषण विरोध, तथा ईसाई शासकों को निकाल बाहर करने की उत्कट इच्छा व्याप्त थी। इस ध्येय की पूर्ति में नाना साहब की दृष्टि में क्रान्ति, युद्ध, संहार एवं लहू की नदियाँ बहाना सभी न्याय-संगत था।

नाना साहब ने १८५७ ई० की महान् क्रान्ति का नायकत्व किया। योजना उनकी थी या नहीं, यह निश्चित नहीं, परन्तु इतना समकालीन दैनिक समाचारपत्रों व अभिलेखों से प्रमाणित है कि एक महान् राजसी पद पर आसीन नाना साहब पेशवा का आशीर्वाद बंगाल सेना के क्रान्ति संयोजकों व संदेशवाहकों को प्राप्त था। यह उन्नीसवीं शताब्दी की मध्यकालीन भारत की क्रान्ति थी। उसमें सार्वजनिक भाषणों, जुलूस निकलना, या जनता की प्रदर्शनकारी तथा उत्तेजना-पूर्ण कार्यवाहियाँ ढूँढ़ना व्यर्थ है, क्रान्ति की योजना गुप्त, अत्यन्त गुप्त रूप से बनी, व अन्तिम क्षण तक शत्रुओं को वास्तविकता का पता न चल सका। इस पर क्रान्ति प्रारम्भ होने के पश्चात् भी नाना साहब की कूटनीतिपूर्ण चालें रहस्यमय बनी रहीं। इस प्रकार क्रान्ति का गुप्त रूप से संपन्न हो जाना केवल किसी महान् मेधावी व्यक्ति का ही कार्य हो सकता था। केवल किसी महान् प्रेरणा से इतनी व्यापक क्रान्ति सम्पन्न हो सकती थी।

नाना साहब में नायकत्व का अद्वितीय गुण था। उनकी लोक-प्रियता तथा उनके प्रति असाधारण स्वामिभक्ति बड़े उच्च स्तर की थी। उनकी तथा अजीम-उल्ला खाँ की मित्रता अन्तिम क्षणों तक स्थायी बनी रही बतायी जाती है। उनके प्रति उनके अनुयायियों का कितना विश्वास था, कितनी श्रद्धा थी, यह केवल एक बात से प्रमाणित हो जाती है कि १८५७ ई० से लेकर उनकी मृत्यु-पर्यन्त उन्हें बन्दी बनाने के निमित्त ५०,०००) से १ लाख रुपये तक का पुरस्कार उनके किसी भी निकटतम विश्वासपात्र साथी को लालच में नहीं डाल सका। उनके सेवकों को भी अपनी स्वामिभक्ति के पथ से डांवा-डोल न कर सका। इसका सादृश्य विश्व इतिहास में नहीं मिलता।

दुर्भाग्यवश अभी १८५७ ई० की महान् क्रान्ति तथा युद्ध का मूल्यांकन नहीं

हो पाया है। जैसे-जैसे इतिहास के प्रेमी नवीन आधारभूत सामग्री को पढ़ेंगे, वास्तविकता आप से आप बोल उठेगी, उनके १८७९ ई० के पत्र से स्पष्ट ज्ञात होता है कि नाना ने क्रान्ति के २० वर्ष पश्चात् तक कितने कष्ट झेले तथा कितनी भयंकर तथा कष्टप्रद कार्यवाहियों में वह दत्तचित्त रहे। इतने महत्त्वपूर्ण, गूढ़ एवं आश्चर्यजनक जीवन कार्यक्रम को सही आँकना सरल नहीं है। विशेषतः जबकि गत सौ वर्षों की मिथ्या बातें सर्वमान्य बनी हुई हैं। परन्तु समय व्यतीत होने पर सत्य स्वयं प्रकाशित एवं मान्य होगा।

नाना साहब ने सब प्रकार की यातनाएँ सहन करके अपना जीवन बिताया। उन्होंने महान् लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया। उन्होंने जो प्रयत्न किये वह अधिकांशतः सफल न हुए परन्तु उन्होंने फल की चिन्ता नहीं की। वह क्रान्ति के विफल होने के पश्चात भी देश को ईसाई शासकों के चंगुल से मुक्त करने का स्वप्न देखते रहे। नाना साहब का जीवन आदि से अन्त तक विपरीत परिस्थितियों का सम्मिश्रण रहा। एक ओर धनाभाव व दूसरी ओर पेशवाई अतुल धन सम्पत्ति। एक ओर अपनी असहायता एवं निर्भरता, दूसरी ओर सहस्रों व्यक्तियों का उन पर आश्रित होना। कोई आश्चर्य नहीं कि स्वयं आर्थिक संकट अनुभव किये हुए होने के कारण नाना साहब अपने आश्रितों के भार का पूर्ण महत्व समझते थे। नाना साहब एक ओर पूर्णरूपेण युद्ध का आवाहान दे रहे थे; दूसरी ओर स्त्रियों व बच्चों की सुरक्षा का भी उन्हें बहुत ध्यान था। एक ओर कानपुर में परकोटे में घिरे हुए अंग्रेजों से उन्होंने युद्ध किया; दूसरी ओर उन्हें इलाहाबाद पहुँचाने के लिए नावों द्वारा प्रबन्ध किया। एक ओर उन्होंने सेना का प्रबन्ध स्वयं करने का भार ग्रहण किया, वह सैनिकों के विश्वसनीय नेता समझे जाने लगे; दूसरी ओर सैनिकों ने उनकी आज्ञा की अवहेलना की। क्रान्ति की विफलता के पश्चात् भी सैनिकों ने उनके प्रति स्वामिभक्ति नहीं छोड़ी; दूसरी ओर तराई में एक-एक करके उन्होंने नाना साहब का साथ भी छोड़ दिया। नाना साहब एक ओर तो राणा जंगबहादुर से पत्र-व्यवहार करते पाये जाते हैं; दूसरी ओर उनसे लड़ने को प्रस्तुत रहते हैं। एक ओर नैपाल के राणा से आश्रय माँगते हैं तो दूसरी ओर राणा की सेना से लड़ मरने को उद्यत रहते हैं। अन्त में एक ओर अंग्रेजों से पत्र-व्यवहार करते हैं, तो दूसरी ओर उनसे युद्ध का आवाहन करते हैं, मर-मिटने की तैयारी करते हैं, खून की नदियाँ बहाने की धमकी देते हैं। एक ओर दुःख व अवनति की अवस्था से प्रार्थना-पत्र प्रेषित करते हैं तो दूसरी ओर उसी पत्र में अंग्रेजों के प्रति चुनौती अथवा ललकार की झंकार गूंजती है। वास्तव में उनके जीवन का घटना-क्रम इतना रहस्यमय है कि उसका सादृश्य सरलता से नहीं मिलता।

नाना साहब वीर एवं साहसी थे। सन् सत्तावन की क्रान्ति अथवा युद्ध अहिंसात्मक नहीं था। क्रान्ति सेना के बल पर ही सम्पन्न हो सकती थी। उसका श्रीगणेश सेना के विद्रोह से ही हो सकता था तथा उसकी गतिविधि में मारकाट अवश्यम्भावी थी। हाँ, स्त्रियों व बच्चों एवं साधारण प्रजा की सुरक्षा का ध्यान नाना साहब को सदैव रहता था। आज भी युद्धों में स्त्रियों व बच्चों तथा निःशस्त्र प्रजा पर बम फेंकना या किसी नगर पर (एटम) आणविक बम डालना उतना ही अमानुषिक है जितना कि सौ वर्ष पहले उन्हें तलवार के घाट उतारना था। अस्तु, नाना साहब पर हत्यारे होने संबंधी आरोप तथा लांछन जिन्हें अधिकांश अंग्रेज अधिकारियों एवं इतिहासकारों ने बढ़ा-चढ़ा कर लिखा है प्रधानतः मिथ्या एवं काल्पनिक गाथाओं पर आधारित हैं। वास्तविकता तो कुछ और ही थी। प्रस्तुत सामग्री तथा हाल ही में प्रकाशित आधारभूत सामग्री से पाठक वृन्द स्वयं उसका पता चला सकते हैं। इतना तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि १८५७ ई० में स्वतंत्रता की रणभेरी बजाने का श्रेय उन्हीं को था। जहाँ उन्होंने एक ओर मराठा स्वराज्य का पटाक्षेप किया, वहाँ आधुनिक भारत का अरुणोदय भी घोषित किया। जहाँ एक ओर मध्यकालीन भारतीय राजनीति के प्रतीक मुगल सम्राट् को क्रान्ति का नेता स्वीकार किया वहीं पर जनता एवं सैनिकों द्वारा राजाओं को अधिकृत करने की भी लखनऊ, ग्वालियर तथा झाँसी में दुंदभी बजायी। व्यापक दृष्टि से नाना साहब का महान् प्रयास, व्यक्तिगत त्याग इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

परिशिष्ट—१

भट्ट परिवार की वंशावली[1]
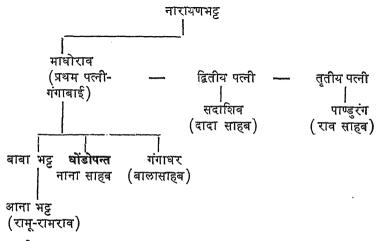
स्पष्टीकरण :—

१. सदाशिव का देहान्त १८५७ ई० से पहले ही हो गया था। उनकी धर्म-पत्नी रोहिणी बाई ने पांडुरंग-राव साहब को गोद लिया ले था।

२. बाजीराव पेशवा ने नाना साहब, बालासाहब, तथा सदाशिव को गोद लिया था, परन्तु दादा साहब की मृत्यु के पश्चात् राव साहब को अपना पौत्र समझा।

३. राव साहब जो नाना साहब के सौतेले भाई थे, तत्पश्चात् उनके भतीजे कहलाये ।

४. नाना साहब की धर्मपत्नी का नाम कृष्णा बाई तथा बाला साहब की पत्नी का नाम काशी बाई था।

१. स्रोत : फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश—खण्ड ३, परिशिष्ट १, ४ और ५ के आधार पर : पृ० सं० ६९५; ६९८; ६९९।

परिशिष्ट

नाना राव उनके परिवार और सेवकों

जाति और वर्ण	आयु	रंग	कद और शारीरिक बनावट	चेहरे का आकार	नेत्रों का आकार	दाँत
दक्षिणी ब्राह्मण	३६	गोरा	५ फीट ८ इंच, शक्तिशाली गठन एवं बलिष्ठ	चपटा और गोल	विशाल गोल नेत्र	सम
वही	२८	साँवला	लम्बा एवं कृश	लम्बा	गोल	सामने के दाँत नहीं हैं।
वही	३०	गोरा	वही	वही	विशाल	—
वही	५५	पीत	लम्बा और सुडौल	—	छोटे	दीर्घ
वही	५५	साँवला	छोटा व गठा हुआ	चौड़ा	गोल	सम
कन्नौज जो कानपुर से कुछ दूरी पर है का ब्राह्मण	४०	—	लम्बा और कृश	लम्बा	वही	वही
गोसाँई	५०	—	छोटा और कृश	गोल	विशाल	छोटे एवं सम

--२

के शारीरिक विवरण (हुलिये)

वक्षस्थल पर चिन्ह	चेहरे पर चिन्ह	केशों का रंग	नासिका का आकार	कानों में बालियों के चिन्ह	अन्य विवरण
बालों से ढका	—	काला	सीधी और सुडौल	हाँ	मराठी विशेषताएँ स्पष्टतया विद्यमान हैं। पैर के अँगूठे में सूजे के आघात का चिन्ह है। और अब दाढ़ी बढ़ा लेने के कारण मुसलमानी रूप है। एक कटे कान का सेवक कभी उनका साथ नहीं छोड़ता।
कुछ बालों से ढका हुआ	चेचक के चिन्ह	वही	बड़ौल	वही	वक्षस्थल पर एक छोटी सी गोली लगने का चिन्ह है और दाढ़ी बढ़ा लेने के कारण मुसलमानी रूप है।
—	—	वही	लम्बी एवं मोटी	वही	विशाल मस्तक है। गलित कुष्ट के चिन्ह दृष्टिगोचर होना प्रारम्भ हो गये हैं। इनका भी मुसलमानी रूप है।
वक्षस्थल पर कुछ श्वेत केश	—	श्वेत एवं अत्यन्त थोड़े रह गये हैं।	वही	वही	
—	—	—	विशाल	वही	अपने दायें तथा बांयें दोनों हाथों का प्रयोग कर सकते हैं। नाक से बोलता है और लम्बे बालों की लटें रखता है। उसका भी मुसलमानी रूप है।
वही	चेचक के चिन्ह	—	लम्बी एवं पतली	कोई नहीं	
—	—	—	सीधी एवं मोटी	वही	मुसलमानी रूप हैं। दाढ़ी बढ़ी हुई हैं।

परिशिष्ट--

नाना राव उनके परिवार और

नाम	जाति और वर्ण	आयु	रंग	कद और शारीरिक बनावट	चेहरे का आकार	नेत्रों का आकार	दाँत
आभा धनुकधारी (बख्शी)	दक्षिणी ब्राह्मण	६०	गोरा	छोटा एवं स्थूल	गोल और भारी	भूरी एवं छोटी	लगभग सब गिर गये
नारायण मराठा (मुसाहब)	वही	४२	—	छोटा	गोल	भूरी एवं विशाल	सम
तात्या टोपे (कप्तान)	वही	४२	साँवला	मझोला कद एवं मोटा	फूला हुआ	विशाल	—
झुमरीसिंह (जमादार)	कन्नौज का ब्राह्मण कानपुर से कुछ दूरी पर	६०	—	छोटा एवं चौड़ा	गोल	छोटी	—
गंगाधर तात्या	वही	२३	गोरा	छोटा और सुडौल	वही	भूरी	छोटे एवं सुन्दर
रामू तात्या बाबा भट्ट का पुत्र	वही	२५	पीत	मझोला कद एवं कृश	—	काली	सम
अज़ीमुल्ला	मुसलमान	—	वही	लम्बा एवं सुडौल	—	—	—

स्रोत—नार्थ वेस्टर्न प्रांविन्सिज प्रोसीडिंग्स पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट जनवरी से जून १८६४ न० ७२, दिनांक जुलाई, १८६३, उत्तरप्रदेश के सचिवालय अभिलेख-कक्ष में सुरक्षित।

२ (क्रमशः)

सेवकों के शारीरिक विवरण (हुलिये)

वक्षस्थल पर चिन्ह	चेहरे पर चिन्ह	केशों का रंग	नासिका का आकार	कानों में बालियों के चिन्ह	अन्य विवरण
—	—	बहुत कम रह गये हैं	चपटी	हाँ	गलमुच्छे नहीं हैं।
—	—	काला	सीधी	वही	दायीं आँख पर तलवार के घाव के चिन्ह हैं और देखने में सुन्दर व्यक्ति हैं।
कुछ काले बाल	चेचक के दाग	—	चपटी	—	कानपुर में क्रान्ति का प्रणेता।
कुछ नहीं	वही	श्वेत	भारी	—	"नाना" का पुराना सेवक। बिठूर का थानेदार नियुक्त किया गया था। वह उस समय इटावा से १० मील एक मलहाउज ग्राम के निकट अपने पुत्र के श्वसुर के घर में छिपा है।
कोई नहीं	कोई नहीं	काले	लम्बी व चपटी	हाँ	बापू आप्ते का पुत्र है। उसका वक्षस्थल नारियों की भाँति है।
—	—	वही	सीधी	नहीं	क्रान्ति में अपने पिता के साथ भाग लिया है।
—	—	—	चपटी	—	बनावटी स्वरों में बोलता है।

तक, जनवरी १८६४ भाग १, पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट—ए. पृ० १९ इंडेक्स न० १७, प्रोसीडिंग्स

परिशिष्ट—३

नाना के परिवार की स्त्रियों का शारीरिक विवरण (हुलिया)

नाम	जाति एवं वर्ण	आयु	कद और शारीरिक बनावट	रंग	चेहरे का आकार	नासिका का आकार	मस्तक पर चिन्ह	नेत्रों का आकार	चेहरे पर चिन्ह	अन्य विवरण
नाना की धर्मपत्नी	दक्षिणी ब्राह्मण	१७	स्थूल और छोटी	गोरा	चौड़ा	विशाल	—	गोल	चेचक के चिन्ह	नत शीश चलती हैं।
काशी बाई—बाला की धर्मपत्नी	वही	२३	लम्बी	वही	लम्बा	सुकोमल एवं लम्बी	—	विशाल	वही	अत्यन्त लम्बे एवं काले बाल हैं।
रमाबाई—राव की धर्मपत्नी	वही	२५	स्थूल एवं मझोला कद	वही	गोल	चौड़ी एवं चपटी	मस्तक पर केश नहीं हैं	गोल	चेचक के चिन्ह	—
मैना बाई—बाजीराव की विधवा	वही	१९	कृश एवं छोटी	वही	छोटा	छोटी और चपटी	—	वही	—	—
सेवी बाई—बाजीराव की विधवा	वही	१८	लम्बी एवम् चपटी	वही	लम्बा	मोटी एवम् लम्बी	—	विशाल	—	—
बैजा साहब—बाजीराव की पुत्री	वही	१२	लम्बी एवम् कृश	वही	गोल	सीधी	—	गोल	—	—

*यह विधवाएँ—अंग्रेजों-की शुभचिंतक थी एवम् नाना के विरुद्ध कटुतापूर्वक शिकायत करती हैं। क्योंकि नाना ने उन्हें ढोर गढ़ी में बाजीराव की पुत्री के साथ बन्दी बना रक्खा था और वह शासन द्वारा स्वतंत्र कराये जाने की कामना करती हैं।

स्रोत—नार्थवेस्टर्न प्रान्त-प्रोसीडिंग्स डिपार्टमेन्ट, पोलिटिकल, जनवरी से जून १८६४; भाग १, जनवरी १८६४, पोलिटिकल डिपार्टमेन्ट ए०. पृ० १८। जुलाई ४, १८६३ नं० ७२, इंडेक्स नं०—१७ तथा म्यूटिनी बस्ते : कानपुर कलक्टरी अभिलेख—कक्ष : नाना साहब के पहचानने सम्बन्धी नस्तियाँ।

परिशिष्ट—४

बाजीराव पेशवा का उत्तराधिकार-पत्र

यह इंग्लड की माननीया सम्राज्ञी, माननीया ईस्ट इंडिया कम्पनी तथा प्रत्येक व्यक्ति को भिज्ञ कराने के हेतु लिखा गया। यह कि धोंडोपन्त, मेरे ज्येष्ठ पुत्र तथा गंगाधर राव, मेरे कनिष्ठतम एवं तृतीय पुत्र तथा सदाशिव पंत दादा, मेरे द्वितीय पुत्र के पुत्र, पांडुरंग राव मेरे पौत्र हैं; यह तीनों मेरे पुत्र तथा पौत्र हैं। मेरे पश्चात् मेरे ज्येष्ठ पुत्र धोंडोपंत नाना, मुख्य प्रधान मेरे उत्तराधिकारी होंगे तथा पेशवा की गद्दी, राज्य, सम्पदा, देशमुखी आदि कौटुम्बिक सम्पत्ति, कोष एवं मेरी समस्त वास्तविक एवं निजी सम्पत्ति के एकमात्र उत्तराधिकारी होंगे। तथा वह, धोंडोपन्त नाना एवं उनके उत्तराधिकारी पेशवा की गद्दी, राज्य आदि के अधिकारी होंगे तथा उनके कनिष्ठ भ्राता, गंगाधर राव, एवं उनके भतीजे पांडुरंग राव सदाशिव एवं उनकी सन्तानें; पीढ़ी दर पीढ़ी तथा सेवक एवं प्रजा आदि, जैसा कि उचित है, उनसे अवलम्बन एवं पोषण पाने के अधिकारी होंगे : तथा गंगाधर राव, एवं पांडु-रंग राव, सेवक, प्रजा इत्यादि धोंडोपन्त नाना, मुख्य प्रधान, के प्रति आज्ञाकारिता प्रदर्शित करेंगे तथा ईमानदारी से उनकी सेवा करते रहेंगे एवं उनके अधीन रहेंगे। तथा यदि अब मेरे स्वयं के रक्त से कोई पुत्र उत्पन्न हो तो ऐसी अवस्था में पूर्व कथन के अनुसार वह एवं उसके उत्तराधिकारी, पीढ़ी दर पीढ़ी मुख्य प्रधान एवं पेशवा की गद्दी के उत्तराधिकारी होंगे तथा राज्य, सम्पदा, देशमुखी इत्यादि, वतनदारी, कोष तथा मेरी अन्य जो भी सम्पत्ति हो, के अधिकारी होंगे। तथा वह अपने भ्राताओं, सेवकों एवं प्रजा के हेतु जीवन-यापन के साधन उपलब्ध करेंगे ; तथा धोंडोपन्त नाना एवं अन्य सभी उसके व उत्तराधिकारियों के प्रति आज्ञाकारिता प्रदर्शित करेंगे। मैंने यह उत्तराधिकारपत्र अपनी स्वतंत्र इच्छा से एवं सहर्ष ४थी शव्वाल मिती अहगन बदी ५, शाके १७६१ तदनुसार ११ दिसम्बर १८३९ को लिखा। इसके पश्चात् इससे और अधिक क्या कहा जा सकता है।

गवाह : रामचन्द्र वेंकटेश, सूबादार

गवाह : कर्नल जेम्स मैनसन, इग्लैण्ड में

प्रथम : यह प्रपत्र मेरी देखरेख में लिखा गया तथा मेरी उपस्थिति में आज,

अप्रैल के ३०वें दिवस, १८४१ को महाराजा द्वारा इस पर हस्ताक्षर एवं मुहर अंकित की गयी।

द्वितीय :—नारायण रामचन्द्र, इस कागज पर आज, अप्रैल के ३०वें दिवस १८४१ को महाराजा पंत प्रधान ने मेरी उपस्थिति में अपने हस्ताक्षर एवं मुहर अंकित किये।

तृतीय :—इस प्रपत्र पर आज, अप्रैल के ३०वें दिवस, १८४१ को महाराजा पंत प्रधान ने हम लोगों की उपस्थिति में हस्ताक्षर एवं मुहर अंकित किये।

हस्ताक्षर :—बापू जी सुखाराम
" गुरबोले
" विनायक वल्लड गोकटे
" रामचन्द्र जेमनिश भेर्चे[1]

१. 'फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश'—खंड १, पृ० १३–१४।

परिशिष्ट—५

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माननीय निर्देशकों की सेवा में स्वर्गीय महाराजा बाजीराव पेशवा पंत प्रधान बहादुर के सुपुत्र महाराजा श्रीमन्त धोंडोपंत नाना साहब का प्रार्थना-पत्र :

निवेदन करता है,

कि आपके प्रार्थी के पिता का देहावसान २८ जनवरी १८५१ (ई०) को इस पूर्ण विश्वास के साथ हुआ था कि जो पेन्शन उन्हें भारतीय अंग्रेजी शासन तथा उनमें हुई १ जून, १८२८ (ई०) की सन्धि के अन्तर्गत उन्हें प्रदान की जाती थी, आपके प्रार्थी एवं उनके अन्य दत्तक पुत्रों को प्राप्त होती रहेगी। किन्तु इस दिवस तक उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के शासन द्वारा आपके प्रार्थी तथा पेशवा के शेष बड़े परिवार के हेतु किसी प्रकार का प्रबन्ध अस्वीकार किया जाता रहा है; तथा सर्वोच्च शासन ने उससे इस विषय पर अपील करने के उपरान्त भी, उसका कोई उत्तर नहीं दिया है तथा अपने कर्त्तव्य की इति, यह आदेश देने में ही समझी है कि विषय उनके समक्ष अधीनस्थ शासन द्वारा उपस्थित किया जाये। स्थानीय शासन द्वारा अपनाया गया मार्ग स्वर्गीय राजा के बहुसंख्यक परिवार, जो कि पूर्णतया ईस्ट इन्डिया कम्पनी के वचनों पर आश्रित हैं, के प्रति असहृदयता-पूर्ण ही नहीं वरन् दीर्घकाल से चले आये राजवंशों के प्रतिनिधियों के अधिकारों के प्रति असंगत भी है। अतः आपका प्रार्थी माननीय कोर्ट के सम्मुख न केवल संधियों के विश्वास ही के आधार पर वरन् उस लाभमात्र के आधार पर जिसे कि ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने मराठा साम्राज्य के अन्तिम सम्राट द्वारा प्राप्त किया था, तुरन्त आवेदन करना आवश्यक समझता है, तथा आपका प्रार्थी इस उद्देश्य हेतु उस प्रार्थना-पत्र की एक प्रतिलिपि संलग्न करता है जो अत्यधिक माननीय गवर्नर जनरल की सेवा में उत्तर पश्चिमी प्रान्त के शासन द्वारा भेजा गया था।

यह कि आपका प्रार्थी सहर्ष विश्वास कर लेगा कि एक पवित्र संधि द्वारा प्रदत्त पेन्शन पर प्रतिबन्ध लगाने का निश्चय कम्पनी द्वारा दिये गये आश्वासनों पर उचित विचार किये बिना ही लिया गया था। संधियों के नियमों में से एक धारा के विशेष अर्थ निकाल कर कार्यान्वित करना अब तक हुई सब संधियों के तात्पर्य के विरुद्ध

होगा। इस प्रकार १३ जून, १८१७ (ई०) की संधि की १४वीं धारा के अनुसार माननीय राव पंडित प्रधान बहादुर अपने तथा अपने उत्तराधिकारियों के मालवा में उन सब अधिकारों एवं भू-खंडों का जो उन्हें सन्धि की ११वीं धारा के अन्तर्गत प्राप्त हुए थे, तथा हर प्रकार के अधिकारों एवं महत्व जो उन्हें नर्मदा नदी के उत्तर के देश में प्राप्त हों, का माननीय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पक्ष में परित्याग करते हैं।[1] इस सन्धि द्वारा उन्होंने अंग्रेजी शासन के पक्ष में ३४ लाख रुपये वार्षिक की मालगुजारी वाले भू-खण्डों का परित्याग किया।[2] अब जैसा कि अंग्रेजी शासन माननीय स्वर्गीय बाजीराव तथा उनके उत्तराधिकारियों पर यह परित्याग एक बन्धन मानता है तथा इस परित्याग के उपलक्ष में उन्हें ८ लाख रुपये वार्षिक की पेन्शन स्वीकृत की, का यह तात्पर्य कदापि नहीं था कि वे अपने तथा अपने उत्तराधिकारियों के निमित्त ३४ लाख रुपये वार्षिक की नियमित आय, जिसमें समुचित मात्रा में वृद्धि की सम्भावना हो, उपर्युक्त के चतुर्थांश को केवल अपने जीवन भर लेना स्वीकार कर, परित्याग कर दें। और भी, माननीय स्वर्गीय बाजीराव को यह पेन्शन अंग्रेजी शासन द्वारा उपहार-स्वरूप नहीं वरन् तदनन्तर विधिवत की गयी तथा प्रमाणित संधि के अन्तर्गत दी गयी थी, जिसके अनुसार अंग्रेजी शासन को एक लम्बी वार्षिक आय प्राप्त हुई जिसका केवल एक लघु भाग ही माननीय (बाजीराव) को स्वयं एवं परिवार के पोषण हेतु दिया गया था। अतः आपका प्रार्थी यह निवेदन करता है कि चौंतीस लाख वार्षिक की नियमित आय का आठ लाख रुपये की पेंशन के उपलक्ष में परित्याग इस वास्तविक पूर्व निश्चय को प्रमाणित करता है कि एक का भुगतान दूसरे की प्राप्ति पर निर्भर है; अतः जब तक यह प्राप्तियाँ जारी रहेंगी पेन्शन का भुगतान भी होता रहेगा। पेशवा ने सभी अपेक्षित (शर्तों) का पालन किया, अपने राज्य का

१. तुलना कीजिए : एलफिन्सटन द्वारा गवर्नर-जनरल की अनुमति से प्रसारित घोषणा-पत्र : दिनांक ११ फरवरी १८१८, ५वीं रबीलखार—जिसके द्वारा पेशवा के समस्त सेवकों को उनका साथ छोड़ने के लिए आह्वान किया। ऐसा न करने वालों की सम्पत्ति, जागीर इत्यादि जब्त करने की घोषणा की।

२. सर देसाई—"न्यू हिस्ट्री आव मराठाज"—पृ० ५०९, १८१५ में कुल राजस्व आय ९७ लाख बतायी गयी थी, जिसमें से २३ लाख सतारा के राजा प्रतापसिंह छत्रपति को प्रदान की गयी।

कम्पनी के पक्ष में परित्याग कर दिया तथा स्वयं को एवं अपने परिवार को उनके हाथों में सौंप दिया। कम्पनी ने लार्ड हेस्टिंग्ज़ द्वारा निर्धारित वैध स्तर पर उनका जीवन-पर्यन्त पोषण कर अपने वचन का केवल आंशिक पालन ही किया, परन्तु उनके परिवार सम्बन्धी भाग की उपेक्षा की। परिवार की चर्चा से उनकी (बाजीराव की) मृत्यु उपरान्त उनके परिवार के पोषण से आशय है। अन्य किसी अवस्था में इस प्रकार की चर्चा अनावश्यक थी क्योंकि राजा के पोषण की व्यवस्था से अनिवार्य रूप में परिवार के पोषण से तात्पर्य होगा। यहाँ तक कि यदि पेशवा एवं कम्पनी के मध्य हुई सन्धि में परिवार की चर्चा तक न होती तब भी प्रपत्र की प्रकृति एवं शर्तों से यह कमी दूर हो जाती।

३. यह कि आपका प्रार्थी, कम्पनी का अन्य राजाओं के वंशजों के प्रति व्यवहार तथा पेशवा के परिवार जिसका वह (प्रार्थी) स्वयं है, द्वारा अनुभव किये गये व्यवहार के अन्तर को समझने में असमर्थ है। मैसूर के शासक ने कम्पनी के प्रति गहन शत्रुता दर्शायी तथा आपके प्रार्थी का पिता उन राजाओं में से एक था जिनकी सहायता की याचना कम्पनी ने उस निर्दय शत्रु को कुचलने के लिए की थी। जब उस नायक की मृत्यु हाथ में तलवार लिये ही हो गयी तो कम्पनी ने उसकी सन्तानों को उनके भाग्य पर छोड़ने की कौन कहे, उसके वंशजों को शरण एवं सहृदय सहायता एक से अधिक पुश्तों तक बिना वैध अथवा अवैध में अन्तर किये हुए दी।[1] उसके बराबर अथवा और अधिक ही सहृदयता से कम्पनी ने दिल्ली के पदच्युत सम्राट को कठोर कारावास से मुक्त कराया, राजसत्ता के चिह्नों से पुन: विभूषित किया एवम् पर्याप्त मालगुजारी वाला भू-खंड प्रदान किया जो कि आज तक उसके वंशजों के पास चला आता है।[2] आपके प्रार्थी की स्थिति में अन्तर कहाँ पर है? यह सत्य है कि पेशवा ने भारतीय अंग्रेजी शासन के साथ वर्षों की मित्रता के पश्चात् जिसके

१. मैसूर की चौथी लड़ाई में श्रीरंगपट्टन के घेरे में टीपू सुल्तान ४ मई १७९९ ई० को मारा गया। उसका अमूल्य कोष लूट लिया गया तथा परिवार को पेन्शन दे दी गयी।

२. देखिए परसीवल स्पीयर "ट्वाईलाइट आव दी मुगल्स"—१९५१ पृ० ३५–४३ : लार्ड वेलेज़ली का लार्ड लेक द्वारा शाह आलम को व्यक्तिगत पत्र दिनांक २७ जुलाई १८०३ ई०। ११ सितम्बर १८०३ के युद्ध में दिल्ली सिन्धिया के आधिपत्य से छुड़ा लिया गया। शाह आलम के लिए ६०,०००) प्रतिमास तथा कुल ११½ लाख प्रतिवर्ष स्वीकृत किया गया।

बीच उन्होंने (पेशवा ने) उनको (अंग्रेजों को) आधे करोड़ रुपये की आय वाला भूखण्ड दिया, (मुझे) दुःख है उनसे युद्ध किया था जिसके द्वारा उन्होंने अपना राज-सिंहासन संकट में डाल दिया। परन्तु चूंकि वे अत्यन्त दयनीय दशा तक नहीं पहुँचे थे अथवा यदि पहुँचे भी तो अंग्रेजी सेनाध्यक्ष की शर्तों को स्वीकार करके उन्होंने युद्ध समाप्त कर दिया था और स्वयं को एवं अपने परिवार को कम्पनी की दयापूर्ण छत्र-छाया में रखने हेतु अपने सम्पन्न राज्य-खंड का कम्पनी के पक्ष में परित्याग कर दिया था, तथा चूँकि कम्पनी अब भी उनकी पैतृक सम्पत्ति की आय से लाभ उठा रही है तो उनके वंशज किस सिद्धान्त के आधार पर उन शर्तों में सम्मिलित पेन्शन एवं राज-सत्ता के चिह्नों से वंचित किये जा रहे हैं? उनके परिवार का कम्पनी की कृपा-दृष्टि एवं आश्रय पर अधिकारी विजित मैसूर राज्य वालों अथवा बन्दी मुगल शासक से किन अंशों में कम है?

४. यह कि प्रार्थी उस राजा के प्रतिनिधि होने के नाते स्वयं तथा पेशवा के परिवार दोनों के लिए (संधि द्वारा) निर्देशित पेन्शन के चलते रहने की याचना करता है। माननीय कोर्ट को सम्भवतः ज्ञात है कि पेशवा एक परिवार छोड़ गये हैं। जो संधि की शर्तों के आधार पर कम्पनी से उचित पोषण का अधिकारी है, तथा यह कि उन्होंने (बाजीराव ने) हिन्दू विधि के अनुसार तीन पुत्रों को गोद लिया था जिसमें से आपका प्रार्थी ज्येष्ठ है, अतः इस प्रकार तथा साथ ही पेशवा के वसीयतनामा के अनुसार वह (प्रार्थी) उनकी (बाजीराव की) उपाधि एवं अधिकारों का उत्तरा-धिकारी है। आपका प्रार्थी यह अनुमान नहीं कर सकता है कि स्थानीय शासन अथवा माननीय कोर्ट इस बात से अनभिज्ञ है कि हिन्दू विधि के अनुसार दत्तक एवं आत्मज पुत्र में तनिक भी अन्तर नहीं होता है। परन्तु यदि (इस सम्बन्ध में) कोई संदेह है, तो आपका प्रार्थी मिस्टर सदरलैंड का प्रमाण प्रस्तुत करने की अनुमति चाहता है। (उनका कथन है) कि हिन्दुओं की धार्मिक मर्यादा के अनुसार किसी व्यक्ति की अन्त्येष्टि तथा अन्य क्रियाओं हेतु उसके एक पुत्र का होना नितान्त आवश्यक है। परिणामस्वरूप वैध पुत्र के अभाव में प्रमाणित नियमों के अनुसार किसी सम्बन्धी अथवा किसी अन्य को गोद लिया जाता है तथा इस प्रकार विधिवत गोद लिया हुआ पुत्र, आत्मज पुत्र के सब इहलौकिक अधिकारों का अधिकारी होता है। हिन्दू विधि के एक अन्य विशिष्ट ज्ञाता सर विलियम मैकनाटन के शब्दों में "दत्तक पुत्र सर्वथा गोद लेने वाले पिता के परिवार का सदस्य होता है, तथा वह उसकी गोद लेने वाले पिता की) सपिण्डक तथा पैतृक संपत्ति का उत्तराधिकारी होता है।"

५. यहकि वह संधि जो कम्पनी एवं स्वर्गीय पेशवा के दत्तक भ्राता इम्रत (अमृत) राव के मध्य हुई थी, के अनुसार, उनके तथा उनके पश्चात्

उनके दत्तक पुत्र के लिए पोषण का वचन दिया गया था, कम्पनी ने उस दत्तक पुत्र को आत्मज पुत्र के समान माना है। इस कथन की पुष्टि अनेक राजाओं के दत्तक पुत्रों को उपर्युक्त के उचित उत्तराधिकारी माने जाने से होती है जिनमें से कुछ जो कि कम्पनी की सहमति से अब तक शासन कर रहे हैं, यह है:—

हिन्दुस्तान (उत्तरी भारत में)

ग्वालियर के राजा जयाजी राव सिंधिया
इन्दौर के जसवन्त राव होलकर
धौलपुर के भगवन्त बहादुर सिंह
दतिया के राजा विजै (विजय) बहादुर सिंह
नागपुर के रग्घूजी भोंसले
भरतपुर के सवाई बलवन्त सिंह बहादुर

दक्षिण में

क्रौर के पंत पिरथी निधी
भोर के सुचीकू पंत
शलतन के नायक साहब नैनहालकर
जीत के दुफला
रावसाहब पटवर्धन जानाखण्डी

यही स्थिति समस्त भारतवर्ष में कम्पनी के न्यायालयों की दिनचर्या में दृष्टि-गोचर होती है जो कि राजाओं, भूमिपतियों तथा प्रत्येक श्रेणी के नागरिकों के दत्तक पुत्रों को उन लोगों के रक्त द्वारा सम्बन्धित उत्तराधिकारियों के विरुद्ध उनकी सम्पत्ति प्राप्त करने का आदेश देते हैं। वास्तव में जब तक अंग्रेज़ी भारतीय शासन पवित्र हिन्दू विधि की अवहेलना करने एवं हिन्दू धर्म की परम्परा का उल्लंघन करने की जिन दीनों का दत्तक पुत्र बनाना प्रमुख अंग है, तत्पर नहीं है, आपका प्रार्थी समझ सकने में असमर्थ है कि किस आधार पर स्वर्गीय पेशवा की पेन्शन से उसे केवल उनका दत्तक पुत्र होने के कारण ही वंचित रखा जा सकता है।

६. यह कि यद्यपि आपके प्रार्थी के पिता, स्वर्गीय बाजीराव अंग्रेज़ी शासन द्वारा शास्त्रों के विधान के पालन के प्रति दिखाये गये सम्मान से पूर्णतः परिचित थे तथा इससे भी पूर्ण रूप से भिज्ञ थे कि इन विचारों के अनुसार गोद लेने की प्रथा की सचाई एवं वैधता पर कभी संदेह नहीं प्रकट किया गया था, फिर भी स्वर्गीय

माननीय (बाजीराव) ने अंग्रेजी शासन के प्रति आदर के कारण अपनी इच्छा की सूचना देना अपना कर्त्तव्य समझा, एतदर्थ उन्होंने कमिश्नर के द्वारा कलकत्ते में सर्वोच्च शासन को १८४४ में इसकी सूचना भेज दी थी। यदि स्वर्गीय माननीय (बाजीराव) ने गोद लेने का निश्चय केवल अन्य राजाओं की रीति का अनुसरण करने-मात्र के लिए किया होता तो अंग्रेजी शासन को इसकी सूचना देने का किसी प्रकार का कोई कारण न होता क्योंकि अंग्रेजी साम्राज्य में शास्त्रों के विधान द्वारा प्रस्तावित धार्मिक एवं गृहस्थी सम्बन्धी रीतियों का पालन करने की प्रत्येक देशवासी (भारतीय) को पूर्ण स्वतन्त्रता है। अतः यह प्रकट है कि सर्वोच्च शासन को अपने विचार से भिज्ञ कराने में माननीय (बाजीराव) का ध्येय एक ऐसे पग के लिए सहमति प्राप्त करना था जो शास्त्रों के विधान एवं भारतीय शासन की स्वीकृति द्वारा उनके दत्तक पुत्र को उन सब पदवियों, विशेषाधिकारों तथा सुविधाओं का, जिनका भोग माननीय स्वर्गीय बाजीराव ने स्वयं मृत्यु-पर्यन्त किया, अधिकारी बना देगा। इस सूचना के उत्तर में सर्वोच्च शासन ने केवल यह कहा था कि वह इस प्रश्न पर उचित समय आने पर विचार करेगा, तथा यह कि माननीय कोर्ट ऑव डॉरेक्टर्स से प्रस्ताव को अपनी सहमति प्रदान कर दी थी, तदनन्तर इस विषय पर स्वर्गीय बाजीराव की मृत्यु तक कोई ध्यान नहीं दिया गया, जो दुःखद घटना २८ जनवरी, १८५१ (ई०) को घटित हुई, उस समय से पेन्शन जो कि तब तक नियमित रूप से दी गयी थी, सहसा रोक दी गयी तथा यहां तक कि बिठूर की जागीर भी अंग्रेजी शासन द्वारा रोक रक्खी गयी थी। अब आपका प्रार्थी यह निवेदन करता है कि १३ जून, १८१७ (ई०) की संधि द्वारा निर्देशित पेन्शन के चलते रहने, देने अथवा रोकने का अंग्रेजी शासन का निश्चय माननीय स्वर्गीय बाजी राव की मृत्यु से बहुत पहले लिया गया होगा अन्यथा यह कैसे सम्भव था कि उसी क्षण से ऐसा व्यवहार किया जाता जब से कि अंग्रेजी शासन को उनकी मृत्यु की सूचना दी गयी ?[1] अतः यदि अंग्रेजी शासन ने संधि द्वारा निश्चित भत्ते के माननीय बाजीराव के उत्तराधिकारी को मिलने से रोक देने का पूर्व निश्चय कर लिया था, तो वह

१. तुलना कीजिए : मैलकम द्वारा पेशवा को, आत्मसमर्पण के समय प्रेषित शर्तें—जिसके अन्तर्गत पेशवा तथा उनके परिवार के लिए उदार पेन्शन का आश्वासन दिया गया था। १ जून १८१८ ई० 'के' द्वारा लिखित "मैलकम की जीवनी" : खण्ड २, पृ० २३७–२५४।

स्वर्गीय राजा के प्रति न्यायपूर्ण कृत्य होता कि, उन्हें इसकी सामयिक चेतावनी दे दी जाती जिससे वे माननीय कोर्ट से पुर्नविचार की प्रार्थना कर सकते तथा यदि आवश्यक होता तो माननीया इंगलैंड की सम्राज्ञी के शासन को अपने मुकदमे के वास्तविक गुणों से परिचित करा सकते। इस प्रकार की किसी सूचना के अभाव में माननीय (बाजीराव) आवश्यक रूप से यह मानने पर विवश हो गये कि अंग्रेजी शासन ने उनके दत्तक पुत्र को उन सब विशेषाधिकारों के पाने की मौन स्वीकृति दे दी जो शास्त्रीय विधान द्वारा निर्देशित है। माननीय (बाजीराव) पर इस विश्वास का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने इस विषय पर अंग्रेजी शासन से पुनः कहने को तनिक भी आवश्यक नहीं समझा, तथा आपका प्रार्थी माननीय कोर्ट आव डायरेक्टर्स के सर्व-विदित न्याय पर यह निश्चय करना छोड़ता है कि इस महत्त्वपूर्ण विषय पर उनकी (बाजीराव की) सूचना के प्रथम उत्तर तथा शासन का तदनन्तर मौन रहना उनकी (बाजीराव की) धारणा को उचित ठहराता है अथवा नहीं।

७. यह कि यदि पेन्शन को इस विचार से रोका गया है कि स्वर्गीय पेशवा ने अपने परिवार के पोषण हेतु पर्याप्त सम्पत्ति छोड़ी है तो वह असंगत एवं अंग्रेजों के अधीन भारत के इतिहास में अभूतपूर्व होगा। आठ लाख रुपये वार्षिक की पेन्शन अंग्रेजी शासन की ओर से माननीय स्वर्गीय बाजीराव को अपने एवं अपने परिवार के पोषण हेतु स्वीकृत हुई थी; अंग्रेजी शासन को इससे कोई तात्पर्य नहीं कि स्वर्गीय राजा ने इस धन का कौन सा भाग वास्तव में व्यय किया, न ही इस प्रकार की कोई मान्यता हुई थी कि माननीय स्वर्गीय बाजीराव विशेष संधि द्वारा प्राप्त अपनी वार्षिक पेन्शन, जो कि अंग्रेजी शासन के पक्ष में चौंतीस लाख रुपये वार्षिक की नियमित मालगुजारी के भू-खंड का परित्याग करने के उपलक्ष में उन्हें प्रदान की गयी थी के प्रत्येक अंश को व्यय कर देने को बाध्य थे। इस धरती पर किसी को भी इस पेन्शन के व्यय पर नियंत्रण करने का अधिकार नहीं था तथा यदि माननीय स्वर्गीय बाजीराव उसके प्रत्येक अंश को संचित कर लेते तब भी वे पूर्ण रूप से न्यायोचित कार्य किये होते। आपका प्रार्थी यह पूछने की धृष्टता करता है कि क्या अंग्रेजी शासन ने कभी यह भी पता लगाने का प्रयत्न किया है कि उनके बहुसंख्यक अवकाश-प्राप्त सेवकों की पेन्शन किस प्रकार व्यय होती है। अथवा उनमें से कोई भी अपनी पेन्शन का कोई भाग संचित करता है तथा कितना भाग संचित करता है, तथा और भी, यदि यह प्रमाणित भी हो जाये कि पेन्शन के प्राप्त करने वाले ने उसके एक बड़े भाग का संचय किया है तो यह उसका (शासन का) अपने सेवक के साथ हुए समझौते में स्वीकृत पेन्शन का निश्चित अनुपात उसके (सेवक के) बच्चों से छीन लेने का पर्याप्त कारण होगा ? तथा क्या एक देशी राजा जो कि एक प्राचीन राजपरिवार की एक शाखा का वंशज

है तथा जो अंग्रेजी शासन के न्याय एवं सहृदयता पर विश्वास रखता है, उसके एक समझौता-बद्ध सेवक से अल्प पारितोषिक पाने के योग्य है ! यदि अंग्रेजी शासन में कोई भ्रमात्मक विचार प्रचलित हों तो उन्हें छिन्न-भिन्न करने हेतु आपका प्रार्थी सविनय निवेदन करता है कि १८१७ (ई०) की संधि के अनुसार स्वीकृत ८ लाख रुपये की पेन्शन केवल माननीय स्वर्गीय बाजीराव एवं उनके परिवार के ही पोषण हेतु न थी वरन् उन स्वामिभक्त अनुचरों के विशाल दल के लिए भी थी जिसने कि भूतपूर्व पेशवा के ऐच्छिक निर्वास में उनका अनुगमन करना ही पसन्द किया था। उनकी विशाल संख्या, जो कि अंग्रेजी शासन को ज्ञात है माननीय (पेशवा) के अल्प साधनों पर कुछ कम भार न थी, तथा और भी यदि इस पर विचार किया जाये कि देशी राजाओं को, जो यद्यपि शक्तिहीन कर दिये गये हैं। अब भी आदर-सम्मान प्राप्त करने हेतु आडम्बर करना पड़ता है, इससे सुगमतापूर्वक कल्पना की जा सकती है कि ३४ लाख रुपये वार्षिक की मालगुजारी में से केवल ८ लाख रुपये की स्वीकृत पेन्शन में से अधिक संचय करना सम्भव न था। किन्तु स्वर्गीय पेशवा के सीमित साधनों पर इस बड़े भार के होते हुए माननीय (पेशवा) ने अपने साधनों की इस प्रकार उचित व्यवस्था की कि अपनी वार्षिक आय के एक भाग को 'पब्लिक सिक्योरिटीज' में लगाया, जिससे उनकी मृत्यु के समय ८० सहस्र रुपये की आय थी। तो क्या माननीय स्वर्गीय बाजीराव की दूरदर्शिता एवं मितव्ययिता को एक अपराध माना जायेगा तथा वह (बाजीराव) ऐसे दण्ड के भागी होंगे कि जिससे उनके परिवार के पोषण हेतु एक पूर्व संधि द्वारा स्वीकृत पेन्शन को ही बन्द कर दिया जाय।

८. यह कि आपके प्रार्थी ने २४ जून १८५१ (ई०) को कमिश्नर द्वारा उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर की सेवा में एक स्मृतिपत्र अपनी दशा तथा अन्य अनेक स्थितियों को स्पष्ट करते हुए भेजा था जिसके उत्तर में उसे केवल यह सूचना दी गयी थी कि माननीय (लेफ्टिनेन्ट गवर्नर) पिछले ३ अक्टूबर को इस बात पर दृढ़ थे कि पेन्शन पुनः आरम्भ नहीं कि जा सकती थी, परन्तु आपका प्रार्थी जागीर का, बिना कर दिये, जीवन-पर्यन्त भोग कर सकता था। यहाँ आपका प्रार्थी सविनय यह कहने की धृष्टता करता है कि क्योंकि उसे सीधे लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के आदेशों के अधीन नहीं रक्खा जा सकता, उसे अनुमान कर लेना चाहिए कि यह छूट भारत के सर्वोच्च शासन की आज्ञा पर दी गयी होगी, (तथा) यदि ऐसा ही है तो, सर्वोच्च शासन की ओर से यह छूट अंग्रेजी शासन द्वारा आपके प्रार्थी के दावे को उचित मानने की स्वीकारोक्ति मानी जानी चाहिए। यदि आपके प्रार्थी के दावे विचारणीय नहीं थे, तो उसे जीवन-पर्यन्त बिना कर दिये जागीर के भोग करते रहने देने की आज्ञा

देने का कोई कारण नहीं था, परन्तु यदि उसके दावे सिद्धान्तों एवं वास्तविकताओं पर आधारित थे, जो कि कानून की दृष्टि में कम से कम उसके पक्ष में प्रत्यक्ष प्रमाण माने जायेंगे, केवल जागीर का भोग करते रहने देना पेन्शन की हानि के बराबर करना नहीं माना जा सकता।

९. यह कि आपका प्रार्थी अब अपने दावे के स्वरूप तथा आधारों को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देने के पश्चात् माननीय कोर्ट की उदारता एवं सहृदयता पर पूर्ण रूप से आश्रित है, जिसका कि उसे विश्वास है कि उसके दावे पर पूर्ण विचार करने के पश्चात् आपके प्रार्थी को मिलना शेष न रहेगी, जो कि समुचित भत्ते के अभाव में अपने परिवार की प्रतिष्ठा तथा उन लोगों का जो पूर्ण रूप से उस पर आश्रित हैं, पोषण करने में पूर्णतया असमर्थ है।

१०. यह कि आपका प्रार्थी अपने वर्तमान सीमित साधनों को दृष्टि में रखते हुए, शीघ्र व्यवस्था करने हेतु अंग्रेजी शासन से अपने दावों के सम्बन्ध में किसी भी न्यायपूर्ण निर्णय का इच्छुक है तथा आपका प्रार्थी स्वयं को तथा अपने आश्रितों को अपनी हीन दशा के अनुरूप किसी भी अंश तक विनीत रखने को प्रस्तुत है।

आपका प्रार्थी स्थानीय शासन द्वारा उसके प्रति अपनायी गयी नीति के कारण उत्पन्न आर्थिक दुश्चिन्ताओं से विवश होकर अपने दीवान को उसके (प्रार्थी के) निमित्त माननीय कोर्ट की सेवा में यह प्रार्थना-पत्र भेजने का अधिकार देता है तथा इस उद्देश्य से शीघ्र विचार करने की प्रार्थना करता है कि प्रथम तो इस देश (के शासन) को आज्ञा दी जाये कि उसे (प्रार्थी को) तथा उसके उत्तराधिकारियों को पेन्शन अनवरत रूप से दी जाये तथा द्वितीय वर्त्तमान बिठूर की जागीर प्रदान की जाये।[1]

(हस्ताक्षर) धोंडोपन्त नाना साहब

१. प्रार्थना-पत्र का स्थानापन्न आयुक्त ई० एच० मोरलैण्ड—अंग्रेजी में किया हुआ अनुवाद—देखिए—फ्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश, खण्ड १, पृ० १६ से २४ तक। तथा फारेन पोलिटिकल कन्सल्टेशन्स। १६ दिसम्बर, १८५३, सं० १०६ नेशनल आरकाईव्ज, नई दिल्ली।

परिशिष्ट—६

व्यक्तिगत परीक्षण के उपरान्त निम्नांकित तुलनात्मक अध्ययन का फल

नाम	नाना राव धोंडोपन्त	बन्दी अप्पाराम
वर्ण और जाति	दक्षिणी ब्राह्मण	दक्षिणी ब्राह्मण
अवस्था	३६ वर्ष (१८५८ ई० में)	५५ वर्ष
रंग	गोरा	काला
कद तथा व्यक्तिगत	५ फुट ८ इंच	५ फुट ४$\frac{3}{4}$ इं० ऊंचाई
बनावट	शक्तिशाली बनावट तथा बलिष्ठ	पतला
चेहरे की बनावट	चपटा तथा गोल	चेहरे पर झुर्रियां तथा गढ़े पड़े हुए।
नाक की बनावट	सीधी तथा सुडौल	नाक लम्बी तथा उभरी हुई
आँखों की बनावट	बड़ी तथा गोल आँखें	बड़ी तथा गढ़े में धँसी हुई परन्तु पुतलियां उभरी हुई।
दांत	सब हैं	दो टूटे हैं तथा अन्य हिलते हैं।
वक्षस्थल पर चिह्न	बालों से ढँका हुआ	बालों से भरा हुआ तथा चिह्न छोड़ जाने वाली बीमारी के १-२ काले चिह्न
चेहरे पर चिह्न		चेहरे पर भी वक्षस्थल के समान काले चिह्न
बालों का रंग	काला	भूरा
कानों में बाली के चिह्न	हाँ	हाँ

टिप्पणी	चेहरे की बनावट में मराठा होने के चिन्ह पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। उनके एक पैर के अँगूठे में सूजे के आघात का चिन्ह है। इस समय दाढ़ी बढ़ाये हैं। देखने से बिल्कुल मुसलमानी बनावट प्रतीत होती है। कटे हुए कान वाला एक नौकर सदैव उनके साथ रहता है।	वक्षस्थल पर, पीठ पर तथा दाहिने बाजू पर कुछ कोढ़ के चिन्ह हैं; पीठ पर तीन चिन्ह हैं; दो सुडौल नहीं हैं जैसे फोड़े फुन्सियों के कारण हों तथा एक ऐसा सीधा है जैसे सूजे के आघात से हो।

स्रोत : उत्तर-पश्चिमी प्रान्तीय प्रोसीडिंग्स, पोलिटिकल विभाग—जनवरी से जून १८६४ ई० तक; भाग १, जनवरी १८६४, पोलिटिकल विभाग-ए, पृष्ठ ३७, संख्या १५, सितम्बर ५, १८६३।

मजिस्ट्रेट कानपुर द्वारा सचिव उत्तर-पश्चिमी प्रांतीय सरकार को प्रेषित नैनीताल (नं० ४३५) दिनांक कानपुर २७ अगस्त १८६३।

तथा वही : बी० सितम्बर १८६३, क्रम संख्या, मिस्टर कोर्ट ने जाँच करके शासन को बताया कि इलाहाबाद के कमिश्नर का मन्तव्य है कि नानासाहब के बारे में शासन को दुविधा में डालने के लिए राजपूताना तथा दक्षिण में कुछ फकीर नानासाहब के भेस में छोड़ दिये गये थे।

परिशिष्ट—७

गोपालजी का कथन

"......बीकानेर में दस अश्वारोहियों के सहित तात्या राव, जो वहां एक बाग में रहता है, था। नाना ने बीकानेर के राजा से तात्या राव की देखरेख करने को कहा जिसे करने की उसने (बीकानेर के राजा ने) प्रतिज्ञा की। तात्या राव अब वहां है।......

......सलूम्बा में तात्या टोपे, राव साहिब, एवं लखनऊ की बेगम रहती हैं। तात्या टोपे को फाँसी नहीं दी गयी वरन् दूसरे मनुष्य को (दी गयी थी) जो तात्या कहलाता था।"[१]

१. तथाकथित नानासाहब, फाइल संख्या ७३८, म्यूटिनी बस्ता, कानपुर कलेक्ट्री।

सहायक ग्रन्थों एवम् प्रपत्रों की सूची

मूल सामग्री

(सचिवालय अभिलेख-कक्ष, लखनऊ)

१ अवध

क्रम	उपलब्ध अभिलेख	मास तथा वर्ष	भाग विशेष
१.	फारेन डिपार्टमेण्ट अवध ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स (एजेन्सी डिपार्टमेण्ट)	२ मार्च से ८ मई, १८५७ तक	१
२.	फारेन डिपार्टमेण्ट	(१) २३ फरवरी से दिसम्बर १८५६ तक	५ हस्तलिखित
	अवध ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स (जनरल डिपार्टमेण्ट)	(२) जनवरी से २३ मई १८५७ तक	"
		(३) १८५८–१८५९	"
		(४) १८५९	"
		(५) १८६०	"
३.	फारेन डिपार्टमेण्ट	(१) २३ फरवरी से दिम्सबर १८५६ तक	५ हस्तलिखित
	अवध ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स (जुडी-शियल)	(२) १८५७	"
		(३) २१ मार्च से ३१ दिसम्बर १८५७ तक	"
		(४) १८५९	"
		(५) १८६०	"
४.	अवध ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स (मिलिट्री)	(१) ३ मई से दिसम्बर १८५८ तक	"
		(२) १८५९	"

५. फारेन डिपार्टमेण्ट अवध ऐब्स्ट्रैक्ट प्रोसीडिंग्स — (१) १० जनवरी से ९ मई १८५७ तक ३ हस्तलिखित
(२) १ अप्रैल से ३१ दिसम्बर १८५८ तक ”

२. आगरा

१. फारेन डिपार्टमेण्ट आगरा नैरेटिव—१८३६
२. फारेन डिपार्टमेण्ट आगरा नैरेटिव—१८४१ से १८४४
३. फारेन डिपार्टमेण्ट आगरा नैरेटिव—१८४५ से १८५२
४. फारेन डिपार्टमेण्ट आगरा नैरेटिव—१८५३ से १८६०
(स्टेट आरकाइव्ज़, इलाहाबाद में भी उपलब्ध हैं।)

३. एन० डब्लू० पी० और प्रोसीडिंग्स

१. फारेन डिपार्टमेण्ट आगरा नैरेटिव—दिसम्बर से अप्रैल १८३४ से १८३५
२. फारेन डिपार्टमेण्ट आगरा नैरेटिव—१८३६
३. फारेन डिपार्टमेण्ट आगरा नैरेटिव—१८४१ से १८४४

४. एन० डब्लू० प्रोसीडिंग्स—(पोलिटिकल)

१. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—१८३८ हस्तलिखित
२. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—१८४२ से १८४३ हस्तलिखित
३. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—१८४५ हस्तलिखित
४. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—१८४६ से १८५९ हस्तलिखित
५. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—(होम डिपार्टमेण्ट)—१८६० छपी हुई।
६. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—(होम डिपार्टमेण्ट)—१८६८ छपी हुई।

५. एन० डब्लू० प्रोसीडिंग्स—(फारेन)

१. फारेन डिपार्टमेण्ट एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—१८४५ हस्तलिखित
२. फारेन डिपार्टमेण्ट एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—१८४६
३. फारेन डिपार्टमेण्ट एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—१८४७–४८
४. फारेन डिपार्टमेण्ट एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—१८४९ जनवरी से अक्तूबर

५. फारेन डिपार्टमेण्ट एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—१८५०–५१
६. फारेन डिपार्टमेण्ट एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स—१८५८ जनवरी से अप्रैल

६. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स

१. एन० डब्लू० पी० जुडीशियल ऐब्स्ट्रैक्ट होम डिपार्टमेण्ट (हस्तलिखित)—१८५९
२. एन० डब्लू० पी० जुडीशियल ऐब्स्ट्रैक्ट सिविल (हस्तलिखित)—१८६० जनवरी से अगस्त
३. एन० डब्लू० पी० जुडीशियल ऐब्स्ट्रैक्ट सिविल (छपी हुई)—१८६० मई
४. एन० डब्लू० पी० जुडीशियल ऐब्स्ट्रैक्ट सिविल (छपी हुई)—१८६० अक्तूबर
५. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट—१८६३–६४ भाग—१, जनवरी से जुलाई तक की। (छपी हुई)।
६. एन० डब्लू० पी० प्रोसीडिंग्स पोलिटिकल डिपार्टमेण्ट—१८७४–७५

७. म्यूटिनी बस्ते

(क) सन सत्तावन की क्रान्ति से सम्बन्धित तारों की मूल प्रतियां–(हस्तलिखित)

(i) सन् १८५८ ई० में मिस्टर ई० ए० रीड, आगरा के पास भेजे गये तार।
(ii) सन् १८५९ ई० में मिस्टर ई० ए० रीड, आगरा के पास भेजे गये तार।

(ख) तारों की नकल की प्रतिलिपियां (हस्तलिखित)

(i) ११ मई १८५८ से जनवरी १८५९ तक मिस्टर ई० ए० रीड द्वारा भेजे गये तार
(ii) २४ मार्च १८५८ से अप्रैल १८५९ तक मिस्टर ई० ए० रीड द्वारा भेजे गये तार

(ग) बुलेटिन

(i) मार्च से जुलाई १८५८ तक मिस्टर ई० ए० रीड द्वारा प्रेषित दिन-प्रति-दिन के मूल बुलेटिन।
(ii) मई से जुलाई १८५८ तक मिस्टर ई० ए० रीड द्वारा प्रेषित दिन-प्रति-दिन के छपे हुए बुलेटिन।

८. नेशनल आरकाइव्ज, नई दिल्ली :

१. फारेन सीक्रेट कमसल्टेशन्स
२. फारेन पोलिटिकल कनसल्टेशन्स
३. होम डिपार्टमेण्ट—फारेन प्रोसीडिंग्स

९. समकालीन समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएँ

१. बंगाल हरकारू तथा इंडिया गजट, कलकत्ता—नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता
२. हिन्दू पैट्रियट, कलकत्ता—नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता
३. इंग्लिशमैन, कलकत्ता—नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता
४. फ्रेण्ड आव इण्डिया, सीरामपुर—नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता
५. हिन्दू इण्टेलिजेन्सर, कलकत्ता—नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता
६. दि स्टार, कलकत्ता—नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता
७. दि पायनियर, इलाहाबाद—पायनियर प्रेस लाइब्रेरी, लखनऊ

१०. पार्लियामेन्ट्री पेपर्स अथवा पार्लियामेन्ट्री प्रपत्रों का संकलन

१. ईस्ट इण्डिया अफ़ेयर्स—१८४५; १८५७; १८५८;
२. ईस्ट इण्डीज़—नेटिव प्रिन्सेज़ आव इण्डिया—१८६०
३. बाँदा एण्ड कर्बी बूटी : १८६३ व १८६४

११.

१. स्टेट पेपर्स—खण्ड १ से ४ तक—१८५७–५८
दि इण्डियन म्यूटिनी—(फारेस्ट द्वारा संपादित)
२. इण्टैलिजेन्स रिकार्ड्स—खण्ड १ व २
३. म्यूटिनी नैरेटिव्ज़—उत्तर पश्चिमी प्रान्त—१८५७–५८

१२.

१. आगरा गजट—१८५५ से १८५९ ई० तक
२. कलकत्ता गजट—१८५७–५८

(उत्तर प्रदेश सचिवालय पुस्तकालय में उपलब्ध हैं)

प्रकाशित पुस्तकें

१. एडये, जनरल सर जे०; "दी डिफेन्स आव कानपुर"—लन्दन, १८५९।

२. अरगाइल, ड्यक आव; "इण्डिया अन्डर डलहौज़ी एण्ड केनिंग"—लन्दन, १८६५
३. आरनल्ड, एडविन; "दी मारक्विस आव डलहौजीज़ एडमिनिस्ट्रेशन आव ब्रिटिश इण्डिया"।
४. बाल, चार्ल्स; "हिस्ट्री आव दी इण्डियन म्युटिनी"—२ खण्ड (लन्दन और न्यूयार्क से प्रकाशित)।
५. बूरशियर, कर्नल जी०; "एट मन्थ्स कैम्पेन अगेन्स्ट दी बंगाल सीपाय आर्मी ड्यूरिंग दी म्युटिनी आव १८५७"—लन्दन १८५८।
६. ब्राक, डब्लू०; "ए बायग्राफिकल स्कैच आव सर हैनरी हैवलाक"—(लन्दन १८५८)
७. ब्राउन, जे०; "कानपुर एण्ड दि नाना आव बिठूर"—(कानपुर १८९०)
८. कैम्पबल, जी०; "मेम्वायर्स आव माई इण्डियन केरियर"—खण्ड २, (लन्दन १८९३)।
९. केरी, डब्लू० एच०; "दि मुहमेडन रिबेलियन"—(रुड़की १८५७)।
१०. क्रम्प्स, लेफ्टीनेण्ट जी० डब्लू०; "ए पिक्टोरियल रिकार्ड आव दि कानपुर मैसेकर"—(लन्दन, कलकत्ता—१८५८)।
११. दत्त, के० के०; जीवनी : "कुँवरसिंह तथा अमरसिंह"—(पटना १९५७)।
१२. डफ, डा० ए०; "दि इण्डियन रिबैलियन : इट्स काज़ेज़ एण्ड रिज़ल्ट्स"—(लन्दन, १८५८)।
१३. एडवर्ड्स, माईकेल; "दि नेसेस्री हेल"।
१४. एवर्डस, माईकेल; "दि अवध आरचिड"।
१५. फार्ब्ज, आरचीबाल्ड; "हैवलाक"—(लन्दन, १८९०)।
१६. फारजेट, जी०; "आवर रियल डैन्जर इन इण्डिया"—(लन्दन, १८७७)।
१७. फारेस्ट, जी० डब्लू०; (i) "ए हिस्ट्री आव दि इण्डियन म्युटिनी"—(लन्दन १९०४)।
(ii) "स्टेट पेपर्स : सिलेक्शन्स फ़्राम दि लेटर्स, डिस्पेचेज़ एण्ड अदर स्टेट पेपर्स"—१८५७–५८, (लन्दन, १८९३)।
१८. गोल्डस्मिड्ट, सर एफ० जे०; "जेम्स आउट्रम", खण्ड २—(लन्दन, १८८१)।
१९. गवर्नमेण्ट आव बाम्बे; "सोर्स मैटीरियल फार ए हिस्ट्री आव दी फ़्रीडम मूवमेण्ट इन इण्डिया"—खण्ड १, (बम्बई, १९५७)।
२०. गवर्नमेण्ट आव मध्यप्रदेश; "दि हिस्ट्री आव फ़्रीडम मूवमेण्ट इन मध्यप्रदेश" (१९५६)।

२१. गवर्नमेण्ट आव बिहार; "दि हिस्ट्री आव फ़्रीडम मूवमेण्ट इन बिहार"— खण्ड १, १९५७।

२२. गवर्नमेण्ट आव उत्तरप्रदेश; "फ़्रीडम स्ट्रगिल इन उत्तर प्रदेश"—खण्ड १ से ५ तक—१९५७—१९५९।

२३. ग्रान्ट, सर होप; (i) "इन्सीडेन्ट्स इन दि सिपाय वार"—१८५७–५८ (लन्दन, १८७३)।

(ii) "लाइफ़ विद सिलेक्शन्स फ़ाम हिज़ करेसपाण्डेन्स"—(१८९४)।

२४. ग्रूम, डब्लू० टी०; "विद हैवलाक फाम इलाहाबाद टू लखनऊ"—१८९४।

२५. हिदायत अली; "ए फ्यू वर्डस रिलेटिव टू दि लेट म्यूटिनी आव दि बंगाल आर्मी एण्ड रिबेलियन इन दी बंगाल प्रेसीडेन्सी"—(कलकत्ता, १८५८)।

२६. होल्मस, टी० राईस; "हिस्ट्री आव दि इण्डियन म्युटिनी"—(लन्दन, १९०४)

२७. होप; "दि स्टोरी आव दि इण्डियन म्युटिनी"—(१८९६)।

२८. जोन्स, कैप्टेन ओ० जे०; "रिकलेक्शन्स आव ए विन्टर केम्पेन इन इंडिया"— (लन्दन, १८५९)।

२९. के, सर जान डब्लू०; "ए हिस्ट्री आव दि सिपाय वार इन इण्डिया"—३ खण्ड

३०. के, सर जान डब्लू०, एण्ड मैलेसन, जी० बी०; "हिस्ट्री आव दि इण्डियन म्युटिनी"—४ खण्ड, १८५९।

३१. लैंग, जान; "वान्डरिंग्स इन इण्डिया"—(लन्दन, १८५९)।

३२. मजेण्डी, मेजर बी० डी०; "अप अमंग दि पैण्डीज़, आर एयिर्स सरविस इन इण्डिया"—(लन्दन १८५९)।

३३. मजूमदार, आर० सी०; "दि सिपाय म्युटिनी एण्ड दि रिवोल्ट आव १८५७" (१९५७, कलकत्ता)।

३४. मैलेसन; (i) "केयज़ एण्ड मैलेसन्स हिस्ट्री आव दि इण्डियन म्युटिनी आव १८५७–५८"—(लन्दन, १८८९)।

(ii) "रेड पेम्फलेट आर दि म्युटिनी आव दि बंगाल आर्मी"—(लन्दन, १८५७)।

(iii) "दि इण्डियन म्युटिनी आव १८५७"—(लन्दन, १८९४)।

३५. मार्शमेन, जे० सी०; "मेम्व्यार्स आव मेजर जनरल सर हेनरी हेवलाक"— (लन्दन, १८६०)।

३६. मार्टिन, आर० माण्टगोमरी; "दि इण्डियन एम्पायर"—३ खण्ड, (लन्दन, १८५८–६१)।

३७. माड, एफ० सी० एण्ड जे० डब्लू० शेरेर; "मेमोरीज़ आव दि म्युटिनी विद दि पर्सनल नैरेटिव आव जान वाल्टर शेरेर"—२ खण्ड, (लन्दन, १८९४)।
३८. माब्रे थाम्सन; "दि स्टोरी आव कानपुर"—(१८५९)।
३९. पोलोक, जे० सी०; "वे टू ग्लोरी"—(लन्दन, १९५७)।
४०. रसेल, विलियम हावर्ड; "माई डायरी इन इण्डिया इन दि इयर १८५८–५९"—२ खण्ड, (लन्दन, १८६० और कलकत्ता १९०६), भारतीय खण्ड दोबारा प्रकाशित।
४१. सावरकर, बी० डी०; "दि इण्डियन वार आव इण्डिपेन्डेन्स"—१८५७, (बम्बई, १९४७)।
४२. सेन, एस० एन०; "एट्टीन फिफ्टी सेवेन"—१९५७।
४३. शैडवेल, जनरल; "लाइफ आव कालिन कैम्पबैल—लार्ड क्लाईड"—२ खण्ड, (लन्दन, १८८१)।
४४. शेफर्ड-डब्लु० जे०; "ए पर्सनल नैरेटिव आव दि आउटब्रेक एण्ड मेसेकर एट कानपुर" (१८७९)
४५. शेरेर, जी० डब्लू०; "डेली लाइफ ड्यूरिंग दि इण्डियन म्युटिनी"—पर्सनल एक्सपीरीयन्सेज़ आव १८५७—(लन्दन, १९१०)।
४६. थाम्पसन, एम०; "दि स्टोरी आव कानपुर"—(लन्दन, १८५९)।
४७. ट्रैविलयन, जी० ओ०; "कानपुर"—(लन्दन, १८९९)।
४८. वाकर, टी० एम०; "थ्रू दि म्युटिनी"—(लन्दन, १९०७)।
४९. हर्डिकर, बालाजी; "अठारह सौ सत्तावन"—(हिन्दी में)।
५०. सेन, एस० एन०; "सन सत्तावन"—(हिन्दी में)।

पत्रिकाएँ तथा आख्याएँ

१. ब्लैकवुड मैगेज़ीन—नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता।
२. कलकत्ता रिव्यू—नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता तथा अमीरउद्दौला पब्लिक लाइब्रेरी, लखनऊ।
३. इण्डियन हिस्टारिकल रिकार्डस कमीशन-प्रोसीडिंग्स—बैनर्जी, बी० एन०; दि लास्ट डेज़ आव नाना साहब—खण्ड १२—१९२९।
टू अनपब्लिश्ड प्रोक्लेमेशन्स आव नाना साहब—खण्ड २५—१९४८।

गैज़ेटियर्स

(१) डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर्स।
(२) इम्पीरियल गज़ेटियर।

अनुक्रमणिका

आ

इ

ख

ग

घ

च

ठ

ड

ढ

त

थ

द

फ

ब

भ

म

य

र

स

ह